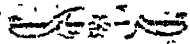
विषय-सूचि।



(हिन्दी लेख विभाग)

बृहट्टिप्पनिका नाम प्राचीन जैनग्रन्थसूची।

अवश्य पढिए

जैन साहित्य संशोधक समाजकी तरफसे शीघ्र ही एक जैन प्राकृत-संस्कृत ग्रन्थमाला निकलनेवाली है जिसमें जैन साहित्यके उत्तमोत्तम, प्राचीन और अलभ्य-दुर्लभ्य ग्रन्थ प्रकट किये जायेंगे। इन ग्रन्थोंमें जैन आगम, सूत्र, निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, वृत्ति, न्याय, व्याकरण, काव्य, कोष, साहित्य, अलंकार, चरित्र, पुराण, प्रबन्ध इत्यादि सब प्रकारके ग्रंथ रहेंगे। ये सब ग्रन्थ नई पद्धतिसे, जैन और अजैन विद्वानोंके द्वारा संपादित हो कर छपेंगे। जैन साहित्यके देखनेकी अभिरुचि लोकोंमें दिन पर दिन बढती जा रही है परंतु एक तो अभी तक उत्तम प्रकारसे जैन ग्रन्थ छपे ही नहीं हैं, और जो जैसे वैसे छपे हैं उनकी प्राप्ति भी सर्व साधारणके लिये दुःसाध्य ही नहीं परंतु असाध्य हो रही है। इस लिये अनेक विद्वानोंके आग्रहसे इस संस्थाने यह काम करनेका विचार किया है।

जो सज्जन इस ग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहक बनना चाहेंगे उन्हें सब ग्रन्थ पौनी किंमतसे याने ३ मूल्यमें दिये जायेंगे। स्थायी ग्राहक बननेके लिये १ रुपया प्रथम प्रवेश फीके लिये भेजना चाहिए। ग्रंथ ज्यों ज्यों छपते जायेंगे त्यों त्यों वी. पी. करके भेजे जायेंगे।

कागज, साइज, छपाई, सफाई इत्यादि सब काम उत्तम प्रकारका होगा। विशेष हाल जाननेके लिये जवाबी पत्रद्वारा पूछिए।

पत्रव्यवहार करनेका पता—

व्यवस्थापक

जैन साहित्य संशोधक कार्यालय,

C/o भारत-जैन विद्यालय,

पूना-सीटी.

आभार-प्रदर्शन.



आ निबन्धसंग्रहात्मक पत्रनो प्रथम अंक गया ज्येष्ठ मासमां प्रकट थयो हतो. ४ महिना पछी आजे आ बीजो अंक वाचकोना हाथमां समर्पवामां आवे छे.

आ प्रयास फक्त आ संस्थाना स्थापक अने पत्रना संपादक मुनिश्रीना एक मात्र साहित्यप्रेम जनित अध्यवसायना फळ स्वरूप ज छे. जैन समाजमां आवा प्रकारना उच्च कोटिना साहित्यने समजनार के तेमां रस लेनार गण्या गांठ्या पुरुषो ज होवाथी, आ कार्यमां समाज तरफथी सहजे पण् मोटुं उत्तेजन मळी जशे एवी आशा थी तो, आ (कार्यनो) प्रारंभ करवामां आव्यो ज न हतो. परंतु, जे बे चार स्नेही सज्जनोए, आ कार्यमाटे प्रारंभिक मदद आपवानुं विश्वस्त वचन पूज्य मुनिराज श्रीजिनविजयजीने आप्युं हतुं तेमनाज विश्वास उपर आधार राखीने आनी शरुआत करवामां आवी हती. परंतु प्रथम अंकना मुद्रणकाल दरम्यान ज ते स्नेही सज्जनो तरफथी सविशेष उदासीन वृत्तिनो अनुभव थयो अने तेथी मुनिश्रीए आदिम तेज अंतिम एवा रूपमां गत अंकने प्रकट करावानी व्यवस्था करी. पण, जैन साहित्यना सद्भाग्ये, तेज अरसामां, मुंबई निवासी उदारचित्त साहित्यप्रिय श्रीयुत भाई श्रीहरगोविंददास रामजीए, अमुक वर्षो पर्यंत, निरपेक्षभावे आ कार्यमां सोल्लास संपूर्ण आर्थिक सहायता आपवानी असाधारण इच्छा प्रकट करी, आ कार्यने व्यवस्थित रूपे चालु राखवा माटे उक्त मुनिश्रीने सादर आग्रह कर्यो. ए भाईश्रीनी आवी अचिन्त्य सहायता-निरपेक्ष उदारताना योग्ये ज आजे आ बीजो अंक अमे वाचकोने अर्पण करीए छीए. अने भविष्यमा पण हवे यथासमय करता रहीशुं.

श्रीयुत भाई श्रीहरगोविंददासजी पोतानी आवी मोटी प्रशंसनीय उदारताना कारणे आ समाज अने पत्रना एक मोटा "संरक्षक" बन्या छे, एटलुंज नहीं, परंतु तेमनी आ उदारताए जैन साहित्यना अभ्यासी अने रसिक जनो उपर अनुपम उपकार कर्यो छे. अमे अमारी आ संस्था तरफथी तेमज जैन साहित्य संशोधकना सकल सुज्ञ वाचको तरफथी भाई श्री हरगोविंददास रामजीने ए बाबतमाटे अंतःकरण पूर्वक अनेकानेक धन्यवाद आपीए छीए अने तेमना हाथे आवां अनेकानेक सुकृत्यो थाओ एम सदा इच्छीए छीए. तथास्तु.

वळी, जे जे सद्गृहस्थोए आ संस्थाना पेट्रन, वाईस पेट्रन. सहायक के लाईफ मेंबर विगेरे थई प्रस्तुत कार्यमां जे उदार आर्थिक सहायता आपी छे अथवा आप्या करे छे, तेमने पण हार्दिक धन्यवाद आपवामां आवे छे अने आ नीचे तेमनां शुभ नामो आदरपूर्वक प्रकट करवामां आवे छे.

पेट्रन.

श्रीयुत हीरालाल अमृतलाल शाह. बी. ए. मुंबई.

वाईस पेट्रन.

श्रीयुत केशवलाल प्रेमचंद मोदी. बी. ए. एल्. एल्. बी. वकील-अमदावाद.

सहायक.

श्रीयुत मनसुखलाल रवजीभाई मेहता. मुंबई.
शेठ कांतिलाल वगलभाई हाथीभाई, पूना.
शेठ केशवलाल मणीलाल शाह, पूना.
शेठ बाबूलाल नानचंद भगवानदास झवेरी, पूना.

लाईफमेंबर.

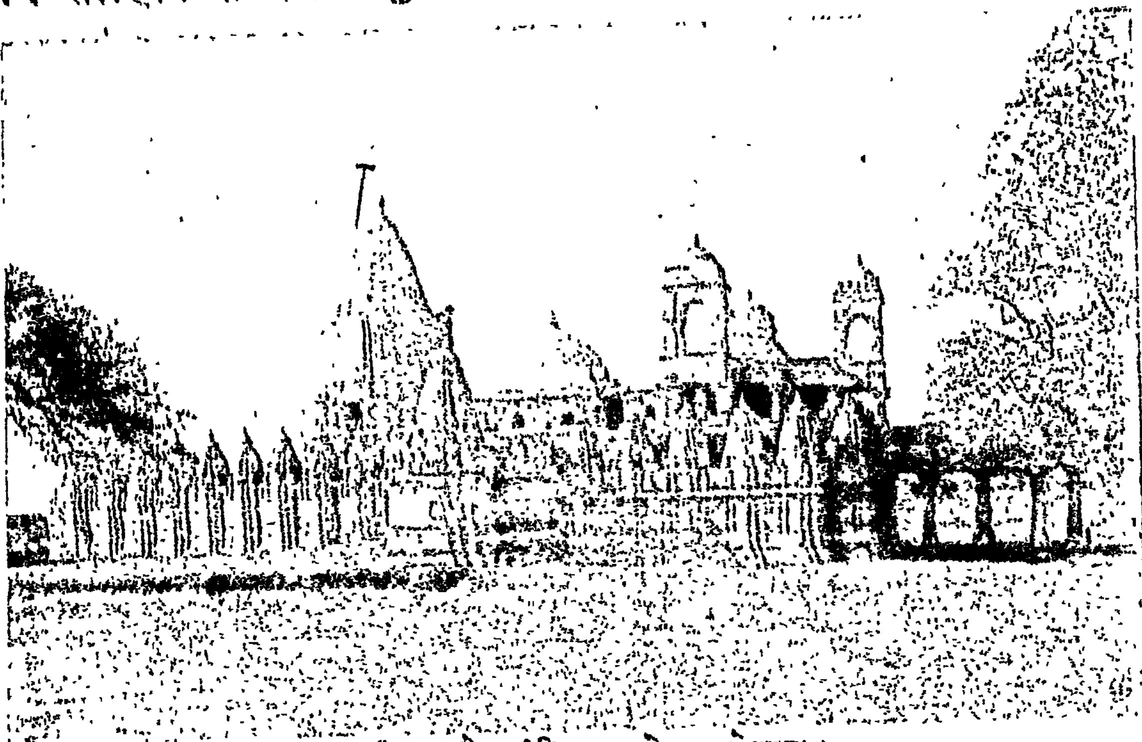
श्रीयुत बाबू राजकुमार सिंहजी बद्रीदासजी. कलकत्ता.
श्रीयुत बाबू पूरण चंदजी नाहार. एम्. ए. एल् एल् बी. कलकत्ता.
शेठ लालभाई कल्याणभाई झवेरी, वडोदरा (मुंबई).
शेठ नरोत्तमदास भाणजी, मुंबई.
शेठ दामोदरदास, त्रिभुवनदास भाणजी, मुंबई.
शेठ त्रिभुवनदास भाणजी जैन कन्याशाला, भावनगर.
शेठ केशवजीभाई माणेकचंद, मुंबई.
शेठ देवकरणभाई मूळजीभाई, मुंबई.
शेठ गुलाबचंद देवचंद, मुंबई.
श्रीयुत मोतीचंद गिरधरलाल कापडिया बी. ए. एल् एल्. बी. सोलीसीटर, मुंबई.
श्रीयुत केशरी चंदजी भंडारी, इंदौर.
शाह अमृतलाल एण्ड भगवानदास कुं. मुंबई.
शाह चंदुलाल वीरचंद कृष्णाजी, पूना.
शाह धनजीभाई वखतचंद साणंदवाळा, हाल पूना.
शाह वाळुभाई शामचंद, तळेगाम (ढमढेरे).
शाह चुनिलाल झवेरचंद, मुंबई.
शाह भोगीलाल चुनिलाल, सोलापूरबजार, पूना कॅप.

तथा दानवीर उदारात्मा शेठ परमानंददास रतनजी (निवासस्थान घाटकोपर, मुंबई.) तरफथी मुनिराज श्रीजिनविजयजी म. नी साहित्यसेवास्वरूप सत्प्रवृत्तिमां प्रारंभथीज जे उदार सहायता मळ्या करे छे, ते माटे, तेओ शेठश्रीनुं पण आ स्थळे अन्तःकरणपूर्वक अभिनन्दन करवामां आवे छे.

आशा छे के आवीज रीते बीजा पण सद्गृहस्थो यथाशक्ति पोतानी उदारता बतावी जैन धर्मना आ गौरव प्रकाशक पुण्य कार्यमां सहायक थशे. एज विनंती.

निवेदक-
जैन सा. सं. समाजना कार्यवाहको.

व्यवस्थापकनुं निवेदनः--प्रेस विगेरेनी हाडमारीओने लीधे वाचकोने जो नियमित समय उपर जैन साहित्य संशोधक न मळे तो ते विषयमां धैर्य रखवानी जरूर छे. आजकाल छपामणीनुं काम केटलुं बधुं त्रासदायक थई पडयुं छे, ते, जेने एबाबतनो थोडो घणो अनुभव थयो होय तेज समजी शके तेम छे. नियत समय उपर प्रकट करवानी बनती कोशीस अमारा तरफथी करवामां आवे छेज. किंबहुना ?



पार्श्वनाथ जैन मंदिर, करहेड़ा, मेवाड़।

॥ अर्हम् ॥

नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ।

जैन साहित्य संशोधक

' पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि । सच्चस्साणाए उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ ।'

' जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ; जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ।'

' दिट्ठं, सुयं, मयं, विण्णायं जं एत्थ परिकहिज्जइ ।'

—निर्ग्रन्थप्रवचन–आचारांगसूत्र ।

भाग १] हिन्दी लेख विभाग [अंक २

जैनेन्द्र व्याकरण और आचार्य देवनन्दी ।

[लेखक—श्रीयुत पं. नाथूरामजी प्रेमी, सम्पादक जैनहितैषी ।]

जैनेन्द्र ।

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशलीशाकटायनाः ।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टौ च शाब्दिकाः ॥

—धातुपाठ ।

मुग्धबोधकर्ता पं० वोपदेवने उक्त श्लोकमें जिन आठ वैयाकरणोंके नामोंका उल्लेख किया है, उनमें एक 'जैनेन्द्र' भी हैं । ये जैनेन्द्र अथवा जैनेन्द्र व्याकरणके कर्त्ता कौन थे इस विषयमें इतिहासज्ञोंमें कुछ समय तक बड़ा विवाद चला था । डॉ० किलहार्नने इसे जिनदेव अथवा भगवान् महावीरद्वारा इन्द्रके लिए कहा गया सिद्ध करनेका प्रयत्न किया था और इसके सुबूतमें उन्होंने कल्पसूत्रकी समयसुन्दरकृत टीका, और लक्ष्मीवल्लभकृत उपदेशमालाकरणिकाका यह उल्लेख पेश किया था कि जिनदेव महावीर जिस समय ८ वर्ष के थे उस समय इन्द्रने उनसे शब्दलक्षणसंबंधी कुछ प्रश्न किये और उनके उत्तररूप यह व्याकरण बतलाया गया, इसलिये इसका नाम जैनेन्द्र पड़ा ।[1]—

यदिन्द्राय जिनेन्द्रेण कौमारेपि निरूपितम् ।
ऐन्द्रं जैनेन्द्रमिति तत्प्राहुः शब्दानुशासनम् ॥

श्वेताम्बरसम्प्रदायके और भी कई ग्रन्थोंमें इस

१ इंडियन एण्टिक्वेरी जिल्द १०, पृ० २५ ।

प्रकारके उल्लेख मिलते हैं। कल्पसूत्रकी विनयविजय कृत सुबोधिकाटीकामें लिखा हैः—

“ [शक्रः] यत्र भगवान् तिष्ठति तत्र पण्डितगेहं समाजगाम । आगत्य च पण्डितयोग्ये आसने भगवन्तं उपवेश्य पण्डितमनोगतान् सन्देहान् पप्रच्छ, श्रीवीरोऽपि बालोऽयं किं वक्ष्यतीत्युत्कर्णेषु सकललोकेषु सर्वाणि उत्तराणि ददौ, ततो ‘ जैनेन्द्रव्याकरणं ’ जज्ञे । यतः—

सक्को य तस्समक्खं भगवंतं आसणे निवेसित्ता ।
सद्दस्स लक्खणं पुच्छे वागरणं अवयवा इंदं ॥ ”

अर्थात् भगवानको मातापिताने पाठशालामें गुरुके पास पढनेके लिए भेजा है, यह जानकर इन्द्र स्वर्गसे आया और पण्डितके घर, जहां भगवान थे वहां, गया। उसने भगवानको पण्डितके आसनपर बिठा दिया और पण्डितके मनमें जो जो सन्देह थे, उन सबको पूछा। जब सब लोक यह सुननेके लिए उत्कर्ण हो रहे थे कि देखें यह बालक क्या उत्तर देता है; भगवान वीरने सब प्रश्नोंके उत्तर दे दिये, तब ‘ जैनेंद्र व्याकरण ’ बना।

परंतु इस प्रसंगके ये सब उल्लेख अपेक्षाकृत अर्वाचीन ही हैं जिनमें भगवानके उत्तररूप इस व्याकरणका नाम ‘ जैनेन्द्र ’ बतलाया है। प्राचीन उल्लेखोंमें इसका नाम जैनेन्द्रकी जगह ‘ ऐन्द्र ’ प्रकट किया गया है। जैसा कि आवश्यकसूत्रकी हारिभद्रीयवृत्तिके पृष्ठ १८२ में—

“ शक्रश्च तत्समक्षं लेखाचार्यसमक्षं भगवन्तं तीर्थकरं आसने निवेश्य शब्दस्य लक्षणं पृच्छति। भगवता च व्याकरणं अभ्यधायि । व्याक्रियन्ते लौकिकसामयिकाः शब्दाः अनेन इति व्याकरणं शब्दशास्त्रम् । तदवयवाः केचन उपाध्यायेन गृहीताः, ततश्च ऐन्द्रं व्याकरणं संजातम् । ”

इसी प्रकार सुप्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र अपने योगशास्त्रके प्रथम प्रकाशमें लिखते हैंः—

“ मातापितृभ्यामन्येद्युः प्रारब्धेऽध्यापनोत्सवे ।
ध्याः सर्वज्ञस्य शिष्यत्वमितीन्द्रस्तमुपास्थित ॥५६॥
उपाध्यायासने तस्मिन्नासयेनोपवेशितः ।
प्रणम्य प्रार्थितः स्वामी शब्दपारायणं जगौ ॥५७॥
इदं भगवतेन्द्राय प्रोक्तं शब्दानुशासनम् ।
उपाध्यायेन संश्रुत्य लोकेऽैन्द्रमितीरितम् ॥ ५८ ॥

इसके अनुसार भगवानने इन्द्रके लिये जो शब्दानुशासन कहा, उपाध्यायने उसे सुनकर लोकमें ‘ ऐन्द्र ’ नामसे प्रकट किया। अर्थात् इन्द्रके लिये जो व्याकरण कहा गया, उसका नाम ‘ऐन्द्र’ हुआ।

प्राचीन कालमें इन्द्रनामक आचार्यका बनाया हुआ एक संस्कृत व्याकरण था। इसका उल्लेख अनेक ग्रन्थोंमें मिलता है। ऊपर दियेहुए बोपदेव के श्लोकमें भी उसका नाम दर्ज है। हरिवंशपुराणके कर्त्ताने देवनन्दिको ‘ इन्द्रचंद्रार्कजैनेंद्रव्यापिव्याकरणेक्षिणः’ विशेषण दिया है। शब्दार्णवचंद्रिकाकी ताडपत्रवाली प्रतिमें, जो १३ वीं शताब्दिके लगभगकी लिखी हुई मालूम होती है, “ इन्द्रश्चन्द्रः शकटतनयः ” आदि श्लोकमें इन्द्रके व्याकरणका उल्लेख है। बहुत समय हुआ यह नष्ट होगया है[2]। जब यह उपलब्ध ही नहीं है तब इसके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। यद्यपि आजकलके समयमें इस बातपर कोई भी विद्वान् विश्वास नहीं कर सकता है कि भगवान् महावीरने भी कोई व्याकरण बनाया होगा और वह भी मागधी या प्राकृतका नहीं, किन्तु ब्राह्मणोंकी खास भाषा संस्कृतका—तो भी यह निस्सन्देह है कि वह व्याकरण ‘ जैनेन्द्र ’ तो नहीं था। यदि बनाया भी होगा तो वह ‘ ऐन्द्र ’ ही होगा। क्यों कि हरिभद्रसूरि और हेमचंद्रसूरि उसीका उल्लेख करते हैं जैनेन्द्रका नहीं। जान पड़ता है, विनयविजय और लक्ष्मीवल्लभने पीछेसे ‘ ऐन्द्र ’ को ही ‘ जैनेन्द्र ’ बना डाला है। उनके समयमें भी ‘ ऐन्द्र ’ अप्राप्य था, इसलिए उन्होंने प्राप्य ‘जैनेन्द्र’ को ही भगवान महावीरकी कृति बतलाना विशेष सुखकर और लाभप्रद सोचा होगा।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हरिभद्रसूरि विक्रमकी आठवीं शताब्दिके और हेमचन्द्रसूरि तेरवीं शताब्दिके विद्वान् हैं जिन्होंने ‘ ऐन्द्र ’ को भगवानका व्याकरण बतलाया है; परंतु ‘ जैनेन्द्र ’

---

१ डॉ० ए० सी० बर्नेलने इन्द्रव्याकरणके विषयमें चीनी, तिब्बतीय और भारतीय साहित्यमें जो जो उल्लेख मिलते हैं उनको संग्रह करके ‘ओन दि ऐन्द्रस्कूल ऑफ संस्कृत ग्रामेरियन्स’ नामकी एक बडी पुस्तक लिखी है।

२ “ तेन प्रणष्टमैन्द्रं तदस्मद्व्याकरणं भुवि ”
—कथासरित्सागर, तरंग ४।

को भगवत्प्रणीत बतलानेवाले विनयविजय और लक्ष्मीवल्लभ विक्रमकी अठारहवीं शताब्दिमें हुए हैं।

विनयविजयजीके इस उल्लेखने बड़ा काम किया कि भगवत्प्रणीत व्याकरणका नाम 'जैनेन्द्र' है। यह निश्चय है कि भगवत्प्रणीत व्याकरणको 'जैनेन्द्र' लिखते समय उनका लक्ष्य इस देवनन्दि या पूज्यपादकृत 'जैनेन्द्र' पर ही रहा होगा; परन्तु जान पड़ता है कि वे इस विषयमें उक्त उल्लेखके सिवाय और कुछ प्रयत्न नहीं कर सके। यह काम बाकी ही पड़ा रहा कि वह जैनेन्द्र व्याकरण लोगोंके समक्ष उपस्थित कर दिया जाय और भक्तजन अपने भगवानकी व्याकरणज्ञता देखकर गद्गद हो जायँ। खुशीकी बात है कि उनके कुछ ही समय बाद वि० सं० १७९७ में एक श्वेताम्बर विद्वान्ने इस कार्यको पूरा कर डाला—साक्षात् महावीर देवका बनाया हुआ व्याकरण तैयार कर दिया और उसका दूसरा नाम 'भगवद्वाग्वादिनी' रक्खा!

इस भगवद्वाग्वादिनी की सबसे पहली प्रतिके दर्शन करनेका सौभाग्य हमें पूनेके भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें प्राप्त हुआ। यह तक्षक नगरमें रत्नर्षि नामक लेखकद्वारा वि० सं० १७९७ में लिखी गई थी। इसकी पत्रसंख्या ३०, और श्लोकसंख्या ८०० है। प्रत्येक पत्रमें ११ पंक्तियां, और प्रत्येक पंक्तिमें ४० अक्षर हैं। प्रति बहुत शुद्ध है। जैनेन्द्रका सूत्रपाठ मात्र है—और वह सूत्रपाठ है जिसपर शब्दार्णवचन्द्रिका टीका लिखी गई है। इस वाग्वादिनीके आविष्कारक अच्छे वैय्याकरण दिखते हैं उन्होंने शक्तिभर इस बातको सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि इसके कर्त्ता साक्षात् महा वीर भगवान हैं। दिगम्बरी देवनन्दीका बनाया हुआ यह कभी नहीं हो सकता। उनकी सब युक्तियाँ हमने इस ग्रन्थके परिचयमें-जो परिशिष्टमें दिया गया है-उद्धृत करदी हैं। उन सब पर विचार करनेकी यहाँ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इस लेखको पूरा पढलेने पर पाठकोंको वे सब युक्तियाँ स्वयं ही सारहीन प्रतीत होने लगेंगी।

हमारा अनुमान है कि डॉ० कीलहार्नके हाथमें यह 'भगवद्वाग्वादिनी' की प्रति अवश्य पड़ी होगी और इसीकी कृपासे प्रेरित होकर उन्होंने अपना पूर्वोक्त लेख लिखा होगा। उनके लेखमें जो श्लोकादि प्रमाणस्वरूप दिये गये हैं वे सब इसीपरसे लिये गये जान पड़ते हैं। अस्तु।

डॉ० कीलहार्नके इस भ्रमको सबसे पहले प्रो० पाठकने दूर किया था और अब तो जैनेन्द्र व्याकरणकी बहुत प्रसिद्धि हो चुकी है। उसकी या उसके परिशोधित-परिवर्तित संस्करणकी कई टीकायें भी छप चुकी हैं। इस लिए अब सभी विद्वान् इस विषयमें सहमत हो गये हैं कि जैनेन्द्र व्याकरण किसी तीर्थंकर या भगवानका नहीं किन्तु अन्य वैयाकरणोंके समान ही एक विद्वानका बनाया हुआ है और उनका नाम देवनन्दि या पूज्यपाद था।

देवनन्दि अथवा पूज्यपाद।

श्रीगृद्धपिच्छमुनिपस्य बलाकपिच्छः
शिष्योऽजनिष्ट भुवनत्रयवर्तिकीर्तिः।
चारित्रचञ्चुरखिलावनिपालमौलि-
मालाशिलीमुखविराजितपादपद्मः ॥ १ ॥
एवं महाचार्यपरम्परायां
स्यात्कारमुद्राङ्कितततत्त्वदीपः।
भद्रः समन्ताद्गुणतो गणीशः
समन्तभद्रोऽजनि वादिसिंहः ॥ २ ॥

ततः—

यो देवनन्दिप्रथमाभिधानो
बुद्ध्या महत्या स जिनेंद्रबुद्धिः।
श्रीपूज्यपादोऽजनि देवताभि-
र्यत्पूजितं पादयुगं यदीयम् ॥ ३ ॥
जैनेन्द्रं निजशब्दभागमतुलं सर्वार्थसिद्धिः परा
सिद्धान्ते निपुणत्वमुद्धकवितां जैनाभिषेकः स्वकः।
छन्दः सूक्ष्मधियं समाधिशतकं स्वास्थ्यं यदीयं विदा-
माख्यातीह स पूज्यपादमुनिपः पूज्यो मुनीनां गणैः॥४॥*

इस अवतरणके तीसरे श्लोकका अभिप्राय यह है कि उनका पहला नाम देवनन्दि था, बुद्धिकी

---

* ये श्लोक श्रीयुक्त पं० कलापा भरमापा निटवेने सर्वार्थसिद्धिकी भूमिकामें उध्दृत किये हैं; पर यह नहीं सूचित किया है कि ये कहाँके हैं।

महत्ताके कारण वे जिनेन्द्रबुद्धि कहलाये और देवोंने उनके चरणोंकी पूजा की इस कराण उनका नाम पूज्यपाद हुआ।

श्रवणबेलगोल के नं० १०८ के मंगराज कविकृत शिलालेखमें जो शकसंवत् १३६५ [वि० सं० १५००] का लिखा हुआ है, नीचे लिखे श्लोक उपलब्ध होते हैं:—

श्रीपूज्यपादोद्धृतधर्मराज्य-
स्ततः सुराधीश्वरपूज्यपादः।
यदीयवैदुष्यगुणानिदानीं
वदन्ति शास्त्राणि तदुध्दृतानि ॥ १५ ॥
धृतविश्वबुद्धिरयमत्रयोगिभिः
कृतकृत्यभावमनुबिभ्रदुच्चकैः।
जिनवद्बभूव यदनङ्गचापहृत्स
जिनेन्द्रबुद्धिरिति साधुवर्णितः ॥ १६ ॥
श्रीपूज्यपादमुनिरप्रतिमौषधर्द्धि-
र्जीयाद्विदेहजिनदर्शनपूतगात्रः।
यत्पादधौतजलसंस्पर्शनप्रभावात्
कालायसं किल तदा कनकीचकार ॥ १७ ॥

इन श्लोकोंसे भी उनके पूज्यपाद और जिनेंद्रबुद्धि नाम प्रकट होते हैं।

नन्दिसंघकी पट्टावलीके नीचे लिखे हुए श्लोकसे भी देवनन्दिका दूसरा नाम पूज्यपाद था, यह स्पष्ट होता है।

यशःकीर्तिर्यशोनन्दी देवनन्दी महामतिः।
श्रीपूज्यपादापराख्यो गुणनन्दी गुणाकरः ॥

इनका संक्षिप्त नाम 'देव' भी था। आचार्य जिनसेन, वादिराजसूरि, और पुन्नाटसंघीय जिनसेनने इन्हें इसी संक्षिप्त नामसे स्मरण किया है—

कवीनां तीर्थकृद्देवः किंतरां तत्र वर्ण्यते।
विदुषां वाङ्मलध्वंसि तीर्थं यस्य वचोमयम् ॥ ५२ ॥
—आदिपुराण प्रथम पर्व।

अचिन्त्यमहिमा देवः सोऽभिवंद्यो हितैषिणा।
शब्दाश्च येन सिद्ध्यन्ति साधुत्वं प्रतिलंभिताः ॥ १८
—पार्श्वनाथचरित प्रथम सर्ग।

इन्द्रश्चन्द्रार्कजैनेन्द्रव्यापि(डि)व्याकरणेक्षिणः।
देवस्य देववन्द्यस्य न वंदते गिरः कथम् ॥ ३१
—हरिवंशपुराण।

अनेक लेखकोंने उन्हें केवल देवनन्दि नामसे और केवल पूज्यपाद नामसे स्मरण किया है और दोनों नामोंसे उन्हें वैयाकरण माना हैं। आचार्य शुभचन्द्र पाण्डवपुराणमें लिखते हैं—

पूज्यपादः सदापूज्यपादः पूज्यैः पुनातु माम्।
व्याकरणार्णवो येन तीर्णो विस्तीर्णसद्गुणः ॥

महाकवि धनंजय अपनी नाममालामें पूज्यपादको लक्षणग्रन्थ (व्याकरण) का कर्त्ता मानते हैं:—

प्रमाणमकलंकस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।
धनंजयकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम् ॥२०॥

श्रवणबेलगोल के ४७ नंबरके शिलालेखमें श्रीमेघचन्द्र त्रैविद्यदेवकी स्तुतिमें नीचे लिखा हुआ श्लोक दिया है:—

सिद्धान्ते जिनवीरसेनसदृशः शास्त्राब्जिनीभास्करः,
षट्तर्केष्वकलंकदेवविबुधः साक्षादयं भूतले।
सर्वव्याकरणे विपश्चिदधिपः श्रीपूज्यपादः स्वयं,
त्रैविद्योत्तममेघचन्द्रमुनिपो वादीभपञ्चाननः ॥

इसमें मेघचन्द्रको पूज्यपादके समान व्याकरणका ज्ञाता बतलाया है। इससे पूज्यपादका वैयाकरण होना सिद्ध है। ये मेघचन्द्र आचारसारके कर्ता वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तीके गुरु थे और इनका स्वर्गवास शक संवत् १०३७ (वि० सं० ११७२) में हुआ था।

अनगारधर्मामृतटीकाकी प्रशस्तिमें—जो वि० सं० १३०० में लिखी गई है—पण्डित आशाधरजीने लिखा है कि मैंने जैन न्याय और जैनेन्द्र व्याकरण शास्त्र पण्डित महावीरसे धारा नगरीमें पढे—"धारायामपठज्जिनप्रमिति-वाक्शास्त्रे महावीरतः।" और 'जिनप्रमितिवाक्शास्त्रे' की टीका में लिखा है—"जैनेन्द्रं प्रमाणशास्त्रं जैनेन्द्रव्याकरणं च।" इससे यह निश्चय होता है कि आशाधरके समयमें जैनेन्द्र व्याकरणका पठन-पाठन होता था। सागार और अनगार धर्मामृतटीकामें कई जगह प्रमाणरूपमें व्याकरणके सूत्र दिये हैं और वे इसी देवनन्दिकृत जैनेन्द्रव्याकरणके हैं।

कर्नाटक देशमें वृत्तविलास नामके एक जैन

कवि हो गये हैं। उन्होंने अमितगतिकृत धर्मपरीक्षाके आधारसे वि० सं० १२१७ के लगभग 'धर्मपरीक्षा' नामका ग्रन्थ कनडी भाषामें लिखा है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें पूज्यपाद आचार्यकी बड़ी प्रशंसा लिखी है और वे जैनेन्द्रव्याकरण के रचयिता थे, इस बातका स्पष्ट उल्लेख किया है। साथ ही उनकी अन्यान्य रचनाओंका भी परिचय दिया है:--

मरादिं जैनेन्द्रं भासुरं=एनलु ओरेदं पाणिनीयक्के टीकुं बरेदं तत्त्वार्थमं टिप्पणदिन् आरिपिदं यंत्र-मंत्रादिशास्त्रोत्करमं।
भूरक्षणार्थं विरचिसि जसमुं तालिददं विश्वविद्याभरणं भव्यालियाराधितपदकमलं पूज्यपादं व्रतीन्द्रम्॥

इसका अभिप्राय यह है कि व्रतीन्द्र पूज्यपादने-जिनके चरणकमलोंकी अनेक भव्य आराधना करते थे और जो विश्वभरकी विद्याओंके शृंगार थे--प्रकाशमान जैनेन्द्र व्याकरणकी रचना की, पाणिनि व्याकरणकी टीका लिखी, टिप्पणद्वारा (सर्वार्थसिद्धि नामक तत्त्वार्थसूत्रटीका) तत्त्वार्थका अर्थावबोधन किया और पृथ्वीकी रक्षाके लिए यंत्रमंत्रादि शास्त्रकी रचना की।

आचार्य शुभचन्द्रने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ ज्ञानार्णवके प्रारंभमें देवनन्दिकी प्रशंसा करते हुए लिखा है:

अपाकुर्वन्ति यद्वाचः कायवाक्चित्तसंभवम्।
कलङ्कमङ्गिनां सोऽयं देवनन्दी नमस्यते॥

अर्थात् जिनकी वाणी देह धारियोंके शरीर, वचन और मन सम्बन्धी मैलको मिटा देती है, उन देवनन्दीको मैं नमस्कार करता हूं। इस श्लोकमें देवनन्दिकी वाणीकी जो विशेषता बतलाई है, वह विचार योग्य है। हमारी समझमें देवनन्दिके तीन ग्रन्थोंको लक्ष्य करके यह प्रशंसा की गई है। शरीरके मैलको नाश करनेके लिए उनका वैद्यकशास्त्र, वचनका मैल (दोष) मिटानेके लिए जैनेन्द्र व्याकरण और मनका मैल दूर करनेके लिए समाधितंत्र है। अतएव इससे भी मालूम होता है कि वचनदोषको दूर करनेवाली उनकी कोई रचना अवश्य है और वह जैनेन्द्र व्याकरण ही हो सकती है।

इनके सिवाय विक्रमकी आठवीं शताब्दिके बाद कनडी भाषामें जितने काव्य ग्रन्थ लिखे गये हैं, प्रायः उन सभीके प्रारंभिक श्लोकोंमें पूज्यपादकी प्रशंसा की गई है[1]।

इन सब उल्लेखोंसे यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि पूज्यपाद एक बहुत ही प्रसिद्ध ग्रंथकार हो गये हैं और देवनन्दि उनका ही दूसरा नाम था। साथ ही वे सुप्रसिद्ध जैनेन्द्र व्याकरणके कर्ता थे। इस बातको इतना विस्तारसे लिखनेकी आवश्यकता इसी कारण हुई कि बहुत लोग पूज्यपाद और देवनन्दि को जुदा जुदा मानते थे और कोई कोई पूज्यपादको देवनन्दिका विशेषण ही समझ बैठे थे।

जैनेन्द्रकी प्रत्येक हस्तलिखित प्रतिके प्रारंभमें नीचे लिखा श्लोक मिलता है:—

लक्ष्मीरात्यन्तिकी यस्य निरवद्याऽवभासते।
देवनन्दितपूजेशं नमस्तस्मै स्वयंभुवे॥

इसमें ग्रन्थकर्ताने 'देवनन्दितपूजेशं' पदमें जो कि भगवानका विशेषण है, अपना नाम भी प्रगट कर दिया है। संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंके मंगलाचरणोंमें यह पद्धति अनेक विद्वानोंने स्वीकार की है*। इससे स्वयं ग्रन्थकर्ताके वचनोंसे भी जैनेन्द्रके कर्ता 'देवनन्दि' ठहरते हैं।

※ गणरत्न महोदधिके कर्ता वर्धमान (श्वेताम्ब-

---

१ देखो हिस्ट्री आफ दि कनडी लिटरेचर।

*१ देखिए नीतिवाक्यामृतके मंगलाचरणमें सोमदेव कहते हैं:—

"सोमं सोमसमाकारं सोमाभं सोमसंभवम्।
सोमदेवं मुनिं नत्वा नीतिवाक्यामृतं ब्रुवे॥"

२ आचार्य अनन्तवीर्य लघीयस्त्रयकी वृत्तिके प्रारंभमें कहते हैं—

"जिनाधीशं मुनिं चन्द्रमकलंकं पुनः पुनः।
अनन्तवीर्यमानौमि स्याद्वादन्यायनायकम्॥"

३ भावसंग्रहमें देवसेनसूरि मंगलाचरण करते हैं:—

पणमिय सुरसेणणुयं मुणिगणहरवंदियं महावीरं।
वोच्छामि भावसंगहमिणमो भव्वपवोहट्ठं॥

※ शालातुरीयशकटाङ्गजचन्द्रगोमि-
दिग्वस्त्रभर्तृहरिवामनभोजमुख्याः।

र) और हैम शब्दानुशासनके लघुन्यास बनानेवाले कनकप्रभ भी जैनेन्द्र व्याकरणके कर्ताका नाम देवनन्दि ही बतलाते हैं। अतः हम समझते हैं कि अब इस विषयमें किसी प्रकारका कोई सन्देह बाकी नहीं रह जाता है कि यह व्याकरण देवनन्दि या पूज्यपादका बनाया हुआ है।

प्रथम जैन व्याकरण।

जहाँ तक हम जानते हैं, जैनोंका सबसे पहला संस्कृत व्याकरण यही है। अभी तक इसके पहलेका कोई भी व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है। शाकटायन, सिद्धहेमशब्दानुशासन आदि सब व्याकरण इससे पीछेके बने हुए हैं। इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके सूत्र बहुत ही संक्षिप्त हैं। 'अर्धमात्रालाघवं पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः।' इस प्रवादकी सच्चाई इसके सूत्रोंपर दृष्टि डालनेसे बहुत अच्छी तरह स्पष्ट होती है। संज्ञाकृत लाघवको भी इसमें स्वीकार किया है। जब कि पाणिनीयमें संज्ञाकृत लाघव ग्रहण नहीं किया है। इसकी प्रशंसामें जैनेंद्रप्रक्रियामें लिखा है:—

> नमः श्रीपूज्यपादाय लक्षणं यदुपक्रम्।
> यदेवात्र तदन्यत्र यन्नात्रास्ति न तत् क्वचित्॥

संस्करण भेद।

जैनेंद्र व्याकरणका मूल सूत्रपाठ दो प्रकारका उपलब्ध है—एक तो वह जिसपर आचार्य अभयनन्दिकी 'महावृत्ति' तथा श्रुतकीर्तिकृत 'पंचवस्तु' नाम की प्रक्रिया है; और दूसरा वह जिसपर सोमदेव सूरिकृत ' शब्दार्णवचन्द्रिका ' और गुणनन्दिकृत ' जैनेन्द्रप्रक्रिया ' है। पहले प्रकारके पाठमें लगभग ३००० और दूसरेमें लगभग ३७०० सूत्र हैं, अर्थात् एकसे दूसरेमें कोई ७०० सूत्र अधिक हैं। और जो ३०८० सूत्र हैं वे भी दोनोंमें एकसे नहीं हैं। अर्थात् दूसरे सूत्रपाठमें पहले सूत्रपाठके सैकड़ों सूत्र परिवर्तित और परिवर्धित भी किये गये हैं। पहले प्रकारका सूत्रपाठ पाणिनीय सूत्रपाठके ढंग का है, वर्तमानदृष्टिसे यह कुछ अपूर्णसा जान पड़ता है और इसी लिए महावृत्तिमें बहुतसे वार्तिक तथा उपसंख्यान आदि बना कर उसकी पूर्णता की गई दिखलाई देती है, जब कि दूसरा पाठ प्रायः पूर्णसा जान पड़ता है और इसी कारण उसकी टीकाओंमें वार्तिक आदि नहीं दिखलाई देते। दोनों पाठोंमें बहुतसी संज्ञायें भी भिन्न प्रकार की हैं।

इन भिन्नताओंके होते हुए भी दोनों पाठोंमें समानता भी कम नहीं है। दोनोंके अधिकांश सूत्र समान हैं, दोनोंके प्रारंभका मंगलाचरण बिलकुल एक ही है और दोनोंके कर्ताओंका नाम भी देवनन्दि या पूज्यपाद लिखा हुआ मिलता है।

असली सूत्रपाठ।

अब प्रश्न यह है कि इन दोनोंमेंसे स्वयं देवनन्दि या पूज्यपादका बनाया हुआ असली सूत्रपाठ कौनसा है। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो० के० बी० पाठकका कथन है कि दूसरा पाठ जिसपर सोमदेवकी शब्दार्णवचन्द्रिका लिखी गई है—वास्तविक पाठ है। हमारे दिगम्बर सम्प्रदायके विद्वानोंमें श्रीयुक्त पं० पन्नालालजी वाकलीवाल और उनके अनुयायी पं० श्रीलालजी व्याकरणशास्त्री भी इसी मतको माननेवाले हैं। इसके विरुद्ध न्यायतीर्थ और न्यायशास्त्री पं० वंशीधरजी दूसरे पाठको वास्तविक मानते हैं, जिसपर कि अभयनन्दिकी वृत्ति लिखी गई है। यद्यपि इन दोनोंही पक्षके विद्वानोंकी ओरसे अभीतक कोई ऐसे पुष्ट प्रमाण उपस्थित नहीं किये गये हैं जिनसे इस प्रश्नका अच्छी तरह निर्णय हो जाय; परन्तु हमको पं० वंशीधरजीका मत ठीक मालूम होता है और पाठक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि हमें इस मतको करीब करीब निर्भ्रान्त मान लेनेके अनेक पुष्ट प्रमाण मिल गये हैं।

इन प्रमाणोंके आधारसे हम इस सिद्धान्तपर पहुंचे हैं कि आचार्य देवनन्दि या पूज्यपादका बनाया हुआ सूत्रपाठ वही है जिसपर अभयनन्दिने अपनी महावृत्ति लिखी है। यह सूत्रपाठ उस समयतक तो ठीक समझा जाता रहा जब तक पाल्यकीर्तिका शाकटायन व्याकरण नहीं बना था। शाय-

१ यह जैनेन्द्रप्रक्रिया गुणनन्दिकृत है या नहीं, इसमें हमें बहुत कुछ सन्देह है। आगे चलकर इस विषयका खुलासा किया गया है।

द शाकटायनको भी जैनेन्द्रके होते हुए एक जुदा व्याकरण बनानेकी आवश्यकता इसी लिए मालूम पड़ी होगी कि जैनेन्द्र अपूर्ण था, और बिना वार्तिकों और उपसंख्यानों आदिके काम नहीं चल सकता था। परन्तु जब शाकटायन जैसा सर्वांगपूर्ण व्याकरण बन चुका, तब जैनेन्द्रव्याकरणके भक्तोंको उसकी त्रुटियां विशेष खटकने लगीं और उनमेंसे आचार्य गुणनन्दिने उसे सर्वांगपूर्ण बनानेका प्रयत्न किया। इस प्रयत्नका फल ही यह दूसरा सूत्रपाठ है जिसपर सोमदेवकी शब्दार्णवचन्द्रिका रची गयी है। इस सूत्रपाठको बारीकीके साथ देखनेसे मालूम पड़ता है कि गुणनन्दिके समय तक व्याकरणसिद्ध जितने प्रयोग होने लगे थे उन सबके सूत्र उसमें मौजूद हैं और इसलिए उसके टीकाकारोंको वार्तिक आदि बनानेके झंझटोंमें नहीं पड़ना पड़ा है। अभयनन्दिकी महावृत्तिके ऐसे बीसों वार्तिक हैं जिनके इस पाठमें सूत्रही बना दिये गये हैं। नीचे लिखे प्रमाणोंसे हमारे इन सब विचारोंकी पुष्टि होती हैः—

१—शब्दार्णवचन्द्रिकाके अन्तमें नीचे लिखा हुआ श्लोक देखिए—

> श्रीसोमदेवयतिनिर्मितिमादधाति
> या नौः प्रतीतगुणनन्दितशब्दवार्धौ।
> सेऽयं सतामलमनेतसि विस्फुरन्ती
> वृत्तिः सदानतपदा परिवर्तिपीष्ट ॥

इसमें सुप्रसिद्ध गुणनन्दि आचार्यके शब्दवार्धि या शब्दार्णवमें प्रवेश करनेके लिए सोमदेवकृत वृत्तिको नौका के समान बतलाया है। इससे यह जान पडता है कि आचार्य गुणनन्दिके बनाये हुए व्याकरण ग्रन्थकी यह टीका है और उसका नाम शब्दार्णव है। इस टीकाका 'शब्दार्णवचन्द्रिका' नाम भी तभी अन्वर्थक होता है, जब मूल सूत्र ग्रन्थका नाम शब्दार्णव हो। हमारे इस अनुमानकी पुष्टि जैनेन्द्रप्रक्रियाके नीचे लिखे अन्तिम श्लोकसे और भी अच्छी तरहसे होती हैः—

> सत्संधिं दधते समासमभितः ख्यातार्थनामोन्नतं,
> निर्धातं बहुतद्धितं कम [कृत]मिहाख्यातं यशःशालिना(न)म्।
> सैषा श्रीगुणनन्दितानितवपुः शब्दार्णवं निर्णयं,
> नावत्याश्रयतां विविक्षुमनसां साक्षात्स्वयं प्रक्रिया ॥

इसका आशय यह है कि गुणनन्दिने जिसके शरीरको विस्तृत किया है, उस शब्दार्णवको जाननेकी इच्छा रखनेवालोंके लिए तथा आश्रय लेनेवालोंके लिए यह प्रक्रिया साक्षात् नावके समान काम देगी। इसमें 'शब्दार्णव' को 'गुणनन्दितानितवपुः' विशेषण दिया है, वह विशेष ध्यान देने योग्य है। इससे साफ समझमें आता है कि गुणनन्दिके जिस व्याकरणपर ये दोनों टीकायें—शब्दार्णव चन्द्रिका और जैनेन्द्रप्रक्रिया—लिखी गई हैं उसका नाम 'शब्दार्णव' है और वह मूल (असली) जैनेन्द्र व्याकरणके संक्षिप्त शरीरको तानित या विस्तृत करके बनाया गया है।

शब्दार्णवचन्द्रिकाके प्रारंभका मंगलाचरण भी इस विषयमें ध्यान देने योग्य हैः—

> श्रीपूज्यपादममलं गुणनन्दिदेवं
> सोमामरव्रतिपपूजितपादयुग्मम्।
> सिद्धं समुन्नतपदं वृषभं जिनेन्द्र
> तच्छब्दलक्षणमहं विनमामि वीरम् ॥

इसमें ग्रन्थकर्ताने भगवान् महावीरके विशेषणरूपमें क्रमसे पूज्यपादका, गुणनन्दिका और आपका (सोमामर या सोमदेवका) उल्लेख किया है और इसमें वे निस्सन्देह यही ध्वनित करते हैं कि मुख्य व्याकरणके कर्ता पूज्यपाद हैं, उसको विस्तृत करनेवाले गुणनन्दि हैं और फिर उसकी टीका करनेवाले सोमदेव (स्वयं) हैं। यदि यह चन्द्रिका टीका पूज्यपादकृत ग्रन्थकी ही होती, तो मंगलाचरणमें गुणनन्दिका नाम लानेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। गुणनन्दि उनकी गुरुपरम्परामें भी नहीं हैं, जो उनका उल्लेख करना आवश्यक ही होता। अतः यह सिद्ध है कि चन्द्रिका और प्रक्रिया दोनोंके ही कर्ता यह समझते थे कि हमारी टीकायें असली जैनेन्द्रपर नहीं किन्तु उसके 'गुणनन्दितानितवपु' शब्दार्णवपर बनी हैं।

२—शब्दार्णव चन्द्रिका और जैनेन्द्रप्रक्रिया इन दोनों ही टीकाओंमें 'एकशेष' प्रकरण है; परन्तु अभयनन्दिकृत 'महावृत्ति' वाले सूत्रपाठमें एक

---

१ हमारा अनुमान है कि इस प्रक्रियाका भी नाम 'शब्दार्णव प्रक्रिया' होगा, जैनेन्द्र-प्रक्रिया नहीं।

शेपको अनावश्यक बतलाया है—" स्वाभाविकत्वादभिधानस्यैकशेपानारम्भः । " (१-१-९९) और इसी लिए देवनन्दि या पूज्यपादका व्याकरण 'अनेकशेष' कहलाता है। चन्द्रिका टीकाके कर्ता स्वयं ही " आद्यावुपज्ञोपक्रमम् " (१-४-११४) सूत्रकी टीकामें उदाहरण देते हैं कि " देवोपज्ञमनेकशेपव्याकरणम् " यह उदाहरण अभयनन्दिकृत महावृत्तिमें भी दिया गया है। इससे सिद्ध है कि शब्दार्णवचन्द्रिकाके कर्ता भी उस व्याकरणको देवोपज्ञ या देवनन्दिकृत मानते हैं, जो अनेकशेप है, अर्थात् जिसमें 'एकशेप' प्रकरण नहीं है। और ऐसा व्याकरण वही है जिसकी टीका अभयनन्दिने की है।

आचार्य विद्यानन्दि अपने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (पृष्ठ २६५) में 'नैगमसंग्रह-' आदि सूत्रकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं—"नयश्च नयौ च नयाश्च नया इत्येकशेपस्य स्वाभाविकस्याभिधाने दर्शनात् केषांचित्तथा वचनोपलम्भाच्च न विरुद्ध्यते।" इसमें स्वाभाविकताके कारण एकशेप की अनावश्यकता प्रतिपादित है और यह अनावश्यकता जैनेन्द्रके वास्तविक सूत्रपाठमें ही उपलब्ध होती है। " स्वाभाविकत्वादभिधानस्यैकशेपानारम्भः " (१-१-९९) यह सूत्र शब्दार्णववाले पाठमें नहीं है, अतः विद्यानन्द भी इसी सूत्रवाले जैनेन्द्रपाठको माननेवाले थे। पाठकोंको यह स्मरण रखना चाहिए कि उपलब्ध व्याकरणोंमें अनेकशेप व्याकरण केवल देवनन्दिकृत ही है, दूसरा नहीं।

३—'सर्वार्थसिद्धि' तत्त्वार्थ सूत्रकी सुप्रसिद्ध टीका है। इसके कर्ता स्वयं पूज्यपाद या देवनन्दि हैं जिनका कि बनाया हुआ प्रस्तुत जैनेन्द्र व्याकरण है। इस टीकामें अध्याय ५ सूत्र २४ की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं—" 'अन्यतोऽपि' इति तसि कृते सर्वतः। " इसी सूत्रकी व्याख्या करते हुए राजवार्तिककार लिखते हैं—" 'दृश्यतेऽन्यतोपीति' तसि कृते सर्वेषु भवेषु सर्वत इति भवति।" जान पडता है या तो सर्वार्थसिद्धिकारने इस सूत्रको संक्षेप करके लिखा होगा, या लेखकों तथा छपानेवालोंने प्रारंभका 'दृश्यते' शब्द छोड दिया होगा; कुछ भी हो, पर यह पूरा सूत्र 'दृश्यतेऽन्यतोपि' ही है और यह अभयनन्दिवाले सूत्रपाठके अ० ४ पा०७ का ७१ वाँ सूत्र है। परन्तु शब्दार्णववाले पाठमें न तो यह सूत्र ही है और न इसके प्रतिपाद्यका विधानकर्ता कोई और ही सूत्र है। अतः यह सिद्ध है कि पूज्यपादका असली सूत्रपाठ वही है जिसमें उक्त सूत्र मौजूद है।

४—भट्टाकलंकदेवने तत्त्वार्थराजवार्तिकमें 'आद्ये परोक्षं (अ० १ सू० ११)' की व्याख्यामें " सर्वादि सर्वनाम। " (१--१--३५) सूत्रका उल्लेख किया है, इसी तरह पण्डित आशाधरने अनगारधर्मामृतटीका (अ० ७ श्लो० २४) में " स्तोके प्रतिना " (१--३--३७) और " भार्थे " (१--४--१४) इन दो सूत्रोंको उद्धृत किया है और ये तीनों ही सूत्र जैनेन्द्रके अभयनन्दिवृत्तिवाले सूत्रपाठमें ही मिलते हैं। शब्दार्णववाले पाठमें इनका अस्तित्व ही नहीं है। अतः अकलंकदेव और पं० आशाधर इसी अभयनन्दिवाले पाठको ही माननेवाले थे। अकलंकदेव वि० की नौवीं शताब्दिके और आशाधर १३ वीं शताब्दिके विद्वान् हैं।

५—पं० श्रीलालजी शास्त्रीने शब्दार्णवचन्द्रिकाकी भूमिकामें लिखा है कि आचार्य पूज्यपादने स्वनिर्मित 'सर्वार्थसिद्धि' में 'प्रमाणनयैरधिगमः' (अ० १ सू० ६) की टीकामें यह वाक्य दिया है—" नयशब्दस्यालपाच्तरत्वात्पूर्वनिपातः प्राप्नोति नैष दोषः। अभ्यर्हितत्वात्प्रमाणस्य तत्पूर्वनिपातः। " और अभयनन्दिवाले पाठमें इस विषयका प्रतिपादन करनेवाला कोई सूत्र नहीं है। केवल अभयनन्दिका 'अभ्यर्हितं पूर्वं निपतति' वार्तिक है। यदि अभयनन्दिवाला सूत्रपाठ ठीक होता तो उसमें इस विषयका प्रतिपादक सूत्र अवश्य होता जो कि नहीं है। पर शब्दार्णववाले पाठमें "अर्च्यं" (१--३--११५) ऐसा सूत्र है जो इसी विषयको प्रतिपादित करता है। इसलिए यही सूत्रपाठ देवनन्दिकृत है। बस, पं० श्रीलालजीकी सबसे बडी दलील यही है जिससे वे शब्दार्णववाले पाठको असली सिद्ध करना चाहते हैं। इसके सिवाय वे और कोई उल्लेख योग्य प्रमाण अपने

पक्षमें नहीं दे सके हैं। अब इसपर हमारा निवेदन सुन लीजिए—

"अल्पाच्तरम्" [२-२-३४] यह सूत्र पाणिनिका है और इसके ऊपर कात्यायनका "अभ्यर्हितं च" वार्तिक तथा पतंजलिका "अभ्यर्हितं पूर्वं निपतति" भाष्य है। इससे मालूम होता है कि पूज्यपादने अपनी सर्वार्थसिद्धिटीकाके इस स्थलमें पाणिनि और पतंजलिके ही सूत्र तथा भाष्यको लक्ष्यकर उक्त विधान किया है। अब इस पर यह प्रश्न होगा कि जब सर्वार्थसिद्धिकार स्वयं एक व्याकरणके कर्ता हैं, तब उन्होंने पाणिनिके[1] और उसके भाष्यका आश्रय क्यों लिया? हमारी समझमें इसका उत्तर यह है कि पूज्यपाद स्वामी यद्यपि सर्वार्थसिद्धिकी रचनाके समय अपना व्याकरण तो बना चुके होंगे परन्तु उस समय उनके व्याकरणने विशेष प्रसिद्धि लाभ नहीं की होगी और इस कारण स्वयं उनके ही हृदयमें उसकी इतनी प्रमाणता नहीं होगी कि वे अन्य प्रसिद्ध व्याकरणों तथा उनके वार्तिकों और भाष्योंको सर्वथा भुला देवें—या उनका आश्रय नहीं लेवें। कुछ भी हो परंतु यह तो निश्चय है कि उन्होंने अपनी सर्वार्थसिद्धिमें अन्य वैयाकरणोंके भी मत दिये हैं। इस विषयमें हम एक और प्रमाण उपस्थित करते हैं जो बहुत ही पुष्ट और स्पष्ट है—

सर्वार्थसिद्धि अ० ४ सूत्र २२ की व्याख्यामें लिखा है—"यथाहुः द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति।" इसकी अन्य पुरुषकी 'आहुः' क्रिया ही कह रही है कि ग्रन्थकर्ता यहां किसी अन्य पुरुषका वचन दे रहे हैं। अब पतंजलिका महाभाष्य देखिए। उसमें १-२-१ के ५ वें वार्तिकके भाष्यमें बिलकुल यही वाक्य दिया हुआ है—एक अक्षरका भी हेरफेर नहीं है। इससे स्पष्ट है कि सर्वार्थसिद्धिके कर्त्ता अन्य व्याकरण ग्रन्थोंके भी प्रमाण देते हैं। और भी एक प्रमाण लीजिए—

सर्वार्थसिद्धि अ० ७ सूत्र १६ की व्याख्यामें लिखा है—"शास्त्रेऽपि 'अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायामि' त्येवमादिषु तदेव गृह्यते।" यह पाणिनिके ७-१-५१ सूत्रपर कात्यायनका पहला वार्तिक है। यहां "अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायाम्" इतने शब्द हैं और इन्हींको सर्वार्थसिद्धिकारने लिया है। यहां कात्यायनके वार्तिकको उन्होंने 'शास्त्र' शब्दसे व्यक्त किया है।

सर्वार्थसिद्धि अ० ५ सूत्र ४ की व्याख्यामें 'नित्य' शब्दको सिद्ध करनेके लिए पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं:—"नेः ध्रुवे त्यः इति निष्पादितत्वात्।" परन्तु जैनेन्द्रमें 'नित्य' शब्दको सिद्ध करनेवाला कोई मूल सूत्र नहीं है, इस लिए अभयनन्दिने अपनी वृत्तिमें "त्यकेस्तुट्" (३-२-८१) सूत्रकी व्याख्यामें "नेर्ध्रुवः इति वक्तव्यम्"। यह वार्तिक बनाया है और 'नियतं सर्वकालं भवं नित्यं' इस तरह स्पष्ट किया है। जैनेन्द्रमें 'त्य' प्रत्यय ही नहीं है, इसके बदले 'य' प्रत्यय है। इससे मालूम होता है कि सर्वार्थसिद्धिकारने स्वनिर्मित व्याकरणको लक्ष्यमें रखकर पूर्वोक्त बात नहीं कही है। अन्य व्याकरणोंके प्रमाण भी वे देते थे और यह प्रमाण भी उसी तरहका है।

परन्तु इससे पाठकोंको यह न समझ लेना चाहिए कि सर्वार्थसिद्धिमें ग्रन्थकर्ताने अपने जैनेन्द्रसूत्रोंका कहीं उपयोग ही नहीं किया है। नहीं, कुछ स्थानोंमें उन्होंने अपने निजके सूत्र भी दिये हैं। जैसे पांचवे अध्यायके पहले सूत्रके व्याख्यानमें लिखा है "'विशेषणं विशेष्येण' इति वृत्तिः।" यह जैनेन्द्रका १-३-५२ वां सूत्र है। यह सूत्र शब्दार्णवचन्द्रिका (१-३-४८) वाले पाठमें भी है।

इन सब प्रमाणोंसे यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि जैनेन्द्रका असली सूत्रपाठ वही है जिसपर अभयनन्दिकृत वृत्ति है; शब्दार्णवचन्द्रि-

---

१ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें इसी 'प्रमाणनयैरधिगमः' सूत्रकी व्याख्यामें पतंजलिका यह भाष्य ज्यों का त्यों अक्षरशः दिया है। अभयनन्दिका भी यही वार्तिक है।

२ राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकमें भी यह वाक्य उद्धृत किया गया है।

१ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें भी है-"शास्त्रेऽपि अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायामित्येवमादौ तदेव कर्माख्यायते।"

कावाला पाठ असली सूत्रपाठको संशोधित और परिवर्धित करके बनाया गया है और उसका यह संस्करण संभवतः गुणनन्दि आचार्यकृत है।

अब एक प्रश्न यह रह जाता है कि जब गुणनन्दि ने मूल ग्रंथमें इतना परिवर्तन और संशोधन किया था, तब उस परिवर्तित ग्रन्थका नाम जैनेन्द्र ही क्यों रक्खा ? इसके उत्तरमें निवेदन है कि एक तो शब्दार्णवचन्द्रिका और जैनेन्द्रप्रक्रियाके पूर्वोल्लिखित श्लोकोंसे गुणनन्दिके व्याकरणका नाम 'जैनेन्द्र' नहीं किन्तु 'शब्दार्णव' मालूम होता है। संभव है कि लेखकोंके भ्रमसे इन टीकाग्रंथोंमें 'जैनेन्द्र' नाम शामिल हो गया हो। दूसरा यदि 'जैनेन्द्र' नाम भी हो, तो ऐसा कुछ अनुचित भी नहीं है। क्यों कि गुणनन्दिने जो प्रयत्न किया है, वह अपना एक स्वतंत्र ग्रंथ बनानेकी इच्छासे नहीं किन्तु पूर्वनिर्मित 'जैनेन्द्र' को सर्वांगपूर्ण बनानेकी सदिच्छासे किया है और इसी लिए उन्होंने जैनेन्द्रके आधेसे अधिक सूत्र ज्यों के त्यों रहने दिये हैं तथा मंगलाचरण आदि भी उसका ज्यों का त्यों रक्खा है। हमारा विश्वास है कि गुणनन्दि इस संशोधित और परिवर्तित सूत्रपाठको ही तैयार करके न रहे गये होंगे, उन्होंने इसपर कोई वृत्ति या टीका ग्रंथ भी अवश्य लिखा होगा, जो अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। सनातन जैन ग्रंथमालामें जो जैनेन्द्र-प्रक्रिया छपी है, वह जैसा कि हम आगे सिद्ध करेंगे गुणनन्दिकी बनाई हुई नहीं है।

जैनेन्द्रकी टीकायें।

पूज्यपादस्वामीकृत असली जैनेन्द्रकी इस समय तक केवल तीन ही टीकायें उपलब्ध हैं—१ अभयनन्दिकृत 'महावृत्ति,' २ आर्यश्रुतकीर्तिकी 'पंचवस्तु-प्रक्रिया,' और ३ बुधमहाचन्द्रकृत 'लघु जैनेन्द्र'। परन्तु इनके सिवाय इसकी और भी कई टीकायें होनी चाहिएं। पंचवस्तुके अन्तमें नीचे लिखा हुआ एक श्लोक है:—

सूत्रस्तम्भसमुद्धृतं प्रविलसन्न्यासोरुरत्नक्षिति,
श्रीमद्वृत्तिकपाटसंपुटयुतं भाष्यौघशय्यातलम्।
टीकामालमिहारुरुक्षुरचितं जैनेन्द्रशब्दागमं,
प्रासादं पृथुपंचवस्तुकमिदं सोपानमारोहतात्॥

- इसमें जैनेन्द्र शब्दागम या जैनेन्द्र व्याकरणको महलकी उपमा दी गई है। वह मूलसूत्ररूप स्तम्भोंपर खड़ा किया गया है, न्यासरूप उसकी रत्नमय भूमि है, वृत्तिरूप उसके किवाड़ हैं, भाष्यरूप शय्यातल है, और टीकारूप उसके माल या मंजिल हैं। यह पंचवस्तु टीका उसकी सोपान श्रेणी है। इसके द्वारा उक्त महल पर आरोहण किया जासकता है। इससे मालूम होता है कि पंचवस्तुके कर्ताके समयमें इस व्याकरणपर १ न्यास, २ वृत्ति, ३ भाष्य और ४ टीका, इतने व्याख्या ग्रन्थ मौजूद थे। इनमेंसे श्रीमद्वृत्ति या वृत्ति तो यह अभयनन्दिकी महावृत्ति ही होगी, ऐसा जान पड़ता है। शेष तीन टीकायें अभी तक उपलब्ध नहीं हुई हैं। हमारा अनुमान है कि इनमेंसे एक टीकाग्रन्थ चाहे वह न्यास हो या भाष्य हो, स्वयं पूज्यपादस्वामीका बनाया हुआ होगा। क्यों कि वे केवल सूत्रग्रन्थ ही बनाकर रह गये होंगे, यह बात समझमें नहीं आती। अपनी मानी हुई अतिशय सूक्ष्म संज्ञाओं और परिभाषाओंका स्पष्टीकरण करनेके लिए उन्हें कोई टीका, वृत्ति या न्यास अवश्य बनाना पड़ा होगा, जिस तरह शाकटायनने अपने व्याकरणपर अमोघवृत्ति नामकी स्वोपज्ञ टीका बनाई है।

आचार्य विद्यानन्दने अष्टसहस्री (पृष्ठ १३२) में 'ण्यन्ते कर्मण्युपसंख्यानात् का' यह वचन उद्धृत किया है। यह किसी व्याकरण ग्रन्थका वार्तिक है; परन्तु पाणिनिके किसी भी वार्तिकमें यह नहीं मिलता। अभयनन्दिकी महावृत्तिमें अवश्य ही "ण्यन्ते कर्मणि का वक्तव्या" [४-१-२८] इस प्रकारका वार्तिक है; परन्तु हमारा खयाल है कि अभयनन्दिकी वृत्ति विद्यानन्दसे पीछेकी बनी हुई है, इस लिए विद्यानन्दने यह वार्तिक अभयनन्दिकी वृत्तिसे नहीं किन्तु अन्य ही किसी ग्रन्थसे लिया होगा और आश्चर्य नहीं जो वह स्वयं पूज्यपादकृत टीकाग्रन्थ हो। सुनते हैं, जैनेन्द्रका न्यास कर्नाटक प्रान्तके जैन पुस्तक भण्डारोंमें है। उसके प्राप्त करनेकी बहुत आवश्यकता है। उससे इस व्याकरणसम्बन्धी अनेक संशयोंका निराकरण हो जायगा।

आगे हम उपलब्ध टीका ग्रन्थोंका परिचय देते हैं:—

१-महावृत्ति। इसकी एक प्रति पूनेके भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें मौजूद है। इसकी श्लोकसंख्या १२००० के लगभग है। इसके प्रारंभके ३१४ पत्र एक लेखकके लिखे हुए और शेष ७४ पत्र, चैत्र सुदी २ सं० १९३३ को किसी दूसरे लेखकके लिखे हुए हैं। प्रतिके दोनों ही भाग जयपुरके लिखे हुए मालूम होते हैं। कई स्थानों में कुछ पंक्तियाँ छूटी हुई हैं। इसका प्रारंभ इसतरह हुआ है:—

ओं नमः। श्रीमत्सर्वज्ञवीतरागतद्वचनतदनुसारिगुरुभ्यो नमः।

देवदेवं जिनं नत्वा सर्वसत्त्वाभयप्रदम्।
शब्दशास्त्रस्य सूत्राणां महावृत्तिर्विरच्यते॥ १॥
यच्छब्दलक्षणमसुव्रजपारमन्यै-
रव्यक्तमुक्तमभिधानविधौ दरिद्रैः।
तत्सर्वलोकहृदयप्रियचारुवाक्यै-
र्व्यक्तीकरोत्यभयनन्दिमुनिः समस्तम्॥ २॥

शिष्टाचारपरिपालनार्थमादाविष्टदेवतानमस्कारलक्षणं मंगलमिदमाहाचार्यः।

और अन्तमें कोई प्रशस्ति आदि न देकर सिर्फ इतना ही लिखा है—

"इत्यभयनन्दिविरचितायां जैनेन्द्रव्याकरणमहावृत्तौ पंचमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः। समाप्तश्चायं पंचमोऽध्यायः।"

इससे मालूम होता है कि इस महावृत्तिके कर्ता अभयनन्दि मुनि हैं। उन्होंने न तो अपनी गुरुपरम्पराका ही परिचय दिया है और न ग्रन्थरचनाका समय ही दिया है, इससे निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि वे कब हुए हैं। परन्तु उन्होंने सूत्र ३-२-५५ की टीकामें एक जगह उदाहरण दिया है—"तत्त्वार्थवार्तिकमधीयते।" इससे मालूम होता है कि भट्टाकलंकदेवसे बाद अर्थात् वि० की नौवीं शताब्दिके बाद—और पंचवस्तुके पूर्वोल्लिखित श्लोकमें इसी वृत्तिका उल्लेख जान पड़ता है, इस लिए आर्य श्रुतकीर्तिके अर्थात् विक्रमकी बारहवीं शताब्दिके पहले—किसी समयमें वे हुए हैं। हमारा अनुमान है कि चन्द्रप्रभकाव्यके कर्ता महाकवि वीरनन्दिने जिन अभयनन्दिको अपना गुरु बतलाया है, ये वे ही अभयनन्दि होंगे*। आचार्य नेमिचन्द्रने भी गोम्मटसार-कर्मकाण्डकी ४३६ वीं गाथामें इनका उल्लेख किया है। अतएव इनका समय विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दिके पूर्वार्धके लगभग निश्चित होता है। जैनेन्द्रकी उपलब्ध टीकाओंमें यही टीका सबसे प्राचीन मालूम होती है। प्रो० एस्० के० बेलवलकरने अभयनन्दिका समय ई० सन् १३००—१३५० के लगभग मालूम नहीं किन प्रमाणोंसे निश्चित किया है।

२-पंचवस्तु। भांडारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें इसकी दो प्रतियाँ मौजूद हैं, जिनमें एक ३००-४०० वर्ष पहलेकी लिखी हुई है और बहुत शुद्ध है। पत्रसंख्या ९१ है। इस पर लेखकका नाम और प्रति लिखनेका समय आदि नहीं है। इसके अन्तमें केवल इतना लिखा हुआ है—

"कृतिरियं देवनंद्याचार्यस्य परवादिमथनस्य॥ छ॥ शुभं भवतु लेखकपाठकयोः॥ श्रीसंघस्य॥"

दूसरी[2] प्रति रत्नकरण्डश्रावकाचारवचनिका आदि अनेक भाषाग्रन्थोंके रचयिता सुप्रसिद्ध पण्डित सदासुखजीके हाथकी लिखी हुई है और संवत् १९१० की लिखी हुई है[3]। इसके अन्तमें प्रतिलेखकने आपना परिचय इसतरह दिया है:—

अब्दे नमश्चन्द्रनिधिध्दिरांके शुद्धे सहस्यंम(?) युक्चतुर्थ्याम्।
सत्प्रक्रियावन्धनिवन्धनेयं सद्वस्तुवृत्तीरदनात्समाप्ता (?)॥
श्रीमन्नराणामधिपेशराशि श्रीरामसिंहे विलसत्यलेखि।
श्रीमद्दुधेनेह सदासुखेन श्रीयुक्तकृतेलालनिजात्मबुद्ध्यै॥
शाब्दीयशास्त्रं पठितं न यैस्तैः स्वदेहसंपालनभारवद्भिः।
किं दर्शनीयं कथनीयमेतद् वृथांगसंधावपलापवद्भिः॥

यह प्रति भी प्रायः शुद्ध है।

यह टीका प्रक्रियाबद्ध टीका है और बड़े अच्छे

---

[1] नं. ५९० A और B सन १८७५-७६ की रिपोर्ट।

* वीरनन्दि और अभयनन्दिका समय जाननेके लिए देखो त्रिलोकसार ग्रन्थकी मेरी लिखी भूमिका।

[1] नं० १०५९ सन १८८७-९१ की रिपोर्ट। [2] नं० ५९० सन १८७५-७६ की रिपोर्ट। [3] इस ग्रन्थकी एक प्रति परतापगढ (मालवा) के पुराने दि० जैनमन्दिरके भंडारमें भी है। देखो जैनमित्र ता०२६ अगस्त १९१५।

ढंगसे लिखी गई है। इसकी श्लोकसंख्या ३३०० के लगभग है। प्रारंभके विद्यार्थियोंके लिए बडी उपयोगी है। इसका प्रारंभ इसप्रकार किया है–

ओं नमः श्रीशान्तिनाथाय ।

जगत्त्रितयनाथाय नमो जन्मप्रमाथिने ।
नयप्रमाणवाग्रश्मिध्वस्तध्वान्ताय शान्तये ॥ १ ॥

प्रत्याहारस्यादाविष्टदेवतास्तुतिवचनं मंगलार्थमुपात्तम् ।

आगे चलकर पांचवें पत्रमें इस प्रकार लिखा है–

ग्राम-वैर-वर्ण-कर-चरणादीनां संधीनां बहूनां संभवत्वात् संशयानः शिष्यः संपृच्छति स्म–कस्सन्धिरिति ।

संज्ञास्वरप्रकृतिहल्जविसर्गजन्मा
संधिस्तु पंचक इतीत्थमिहाहुरन्ये ।
तत्र स्वरप्रकृतिहल्जविकल्पतोऽस्मि–
न्संधिं त्रिधा कथयति श्रुतकीर्तिरार्यः ॥

इस ग्रन्थके आदि-अन्तमें कहीं भी इसके कर्त्ताका नाम नहीं है। केवल इसी जगह यह नाम आया है और इससे मालूम होता है कि पंचवस्तुके रचयिता आर्य श्रुतकीर्ति हैं।

कनडी भाषाके चन्द्रप्रभचरित नामक ग्रन्थके कर्त्ता अग्गल कविने श्रुतकीर्तिको अपना गुरु बतलाया है–" इति परमपुरुनाथकुलभूभृत्समुद्भूतप्रवचनसरित्सरिन्नाथ–श्रुतकीर्तित्रैविद्यचक्रवर्तिपदप–द्मनिधानदीपवर्तिश्रीमदग्गलदेवविरचिते चन्द्रप्रभ–चरिते–" इत्यादि। और यह चरित शक संवत् १०११ (वि० सं० ११४६) में बनकर समाप्त हुआ है। अतएव पंचवस्तुको भी अभयनन्दि महावृत्तिके कुछ ही पीछे की–विक्रमकी बारहवीं शताब्दिके प्रारंभ की–रचना समझना चाहिये। नन्दिसंघकी गुर्वावलीमें श्रुतकीर्तिको वैयाकरण भास्कर लिखा है:–

" त्रैविद्यः श्रुतकीर्त्याख्यो वैयाकरणभास्करः। "

ये नन्दिसंघ, देशीयगण और पुस्तकगच्छके आचार्य थे। श्रुतकीर्ति नामके और भी कई आचार्य हो गये हैं।

३—लघुजैनेन्द्र। इसकी एक प्रति अंकलेश्वर (भरौंच) के दिगम्बर जैनमन्दिरमें है और दूसरी अधूरी प्रति परतापगढ़ (मालवा) के पुराने दि० जैनमन्दिरमें है। उसमें इस तरह प्रारंभ किया गया है—

महावृत्तिं शुंभत्सकलबुधपूज्यां सुखकरीं,
विलोक्योद्यद्ज्ञानप्रभुविभयनन्दीप्रवहिताम्।
अनेकैः सच्छब्दैर्भ्रमविगतकैः संदृब्धभूतां (?)
प्रकुर्वेऽहं तनुमतिमहाचन्द्रविबुधः (?) ॥

इससे मालूम होता है कि यह अभयनन्दी वृत्तिके आधारसे लिखी गई है। पण्डित महाचन्द्रजी विक्रमकी इसी बीसवीं शताब्दिके ग्रन्थकर्ता हैं। इन्होंने संस्कृत, प्राकृत और भाषामें कई ग्रन्थ लिखे हैं।

४—जैनेन्द्रप्रक्रिया। इसे न्यायतीर्थ न्यायशास्त्री पं० वंशीधरजीने अभी हाल ही लिखी है। इसका अभी केवल पूर्वार्ध ही छपकर प्रकाशित हुआ है।

शब्दार्णवकी टीकायें।

जैनेन्द्र सूत्रपाठके संशोधित परिवर्धित संस्करणका नाम–जैसा कि पहले लिखा जा चुका है—शब्दार्णव है। इसके कर्ता आचार्य गुणनन्दि हैं। यह बहुत संभव है कि सूत्रपाठके सिवाय उन्होंने उसकी कोई टीका या वृत्ति भी बनाई होगी जो कि अभीतक उपलब्ध नहीं हुई है।

गुणनन्दि नामके कई आचार्य हो गये हैं। उनमेंसे एक शक संवत् ३८८ (वि० सं० ५२३) में पूज्यपादसे भी पहलेके हैं[२]। दूसरे गुणनन्दि का उल्लेख श्रवणबेल्गोलके ४२, ४३ और ४७ वें नम्बरके शिलालेखोंमें मिलता है। ये बलाकपिच्छके शिष्य और गृध्रपिच्छके प्रशिष्य थे। तर्क, व्याकरण और साहित्य शास्त्रके बहुत बड़े विद्वान् थे। इनके ३०० शास्त्रपारंगत शिष्य थे और उनमें ७२ शिष्य सिद्धान्तशास्त्री थे। आदि पंपके गुरु देवेन्द्र भी इन्हीं के शिष्य थे। अनेक ग्रन्थकारोंने इन्हें कई काव्योंका कर्त्ता बतलाया है; परन्तु अभी·

१ देखो प्रो० पिटर्सनकी दूसरी रिपोर्ट सन १८८४, पृष्ठ १६४।

१ देखो जैनमित्र ता० २६ अगस्त १९१५।

२ मर्कराका ताम्रपत्र, इंडियन एण्टिक्वेरी, जिल्द १, पृष्ठ ३६३–६५। तथा एपिग्राफिका कर्नाटिका—जिल्द १, का पहला लेख।

तक इनका कोई काव्य नहीं मिला है। कर्नाटक कविचरितके कर्त्ताने इनका समय वि० संवत् ९५७ निश्चय किया है। क्यों कि इनके शिष्य देवेन्द्रके शिष्य आदि पंपका जन्म वि० सं० ९५९ में हुआ था और उसने ३९ वर्षकी अवस्थामें अपने सुप्रसिद्ध कनडी काव्य भारतचम्पू और आदिपुराण निर्माण किये हैं। हमारा अनुमान है कि येही गुणनन्दि शब्दार्णवके कर्त्ता होंगे। श्रवण बेलगोलके ४७ वें शिलालेखमें इनके सम्बन्धमें नीचे लिखे श्लोक मिलते हैं:—

श्रीगृद्ध्रपिच्छमुनिपस्य बलाकपिच्छः
शिष्योऽजनिष्ट रत्नत्रयवर्तिकीर्तिः ।
चारित्रचञ्चुरखिलावनिपालमौलि-
मालाशिलीमुखविराजितपादपद्मः ॥ ६ ॥
तच्छिष्यो गुणनन्दिपण्डितयतिः चारित्रचक्रेश्वरः ।
तर्कव्यारणादिशास्त्रनिपुणः साहित्यविद्यापतिः ॥ ७
मिथ्यात्वादिमदान्धसिन्धुरघटासंघातकण्ठीरवो ।
भव्याम्भोजदिवाकरो विजयतां कन्दर्पदर्पापहः ॥ ८
तच्छिष्यास्त्रिशतं विवेकनिधयः शास्त्राब्धिपारंगताः
तेषूत्कृष्टतमा द्विसप्ततिमिताः सिद्धान्तशास्त्रार्थकाः ॥ ९
व्याख्याने पटवो विचित्रचरिताः तेषु प्रसिद्धो मुनिः ।
नानानूननयप्रमाणनिपुणो देवेन्द्रसैद्धान्तिकः ॥ १०

चन्द्रप्रभचरित महाकाव्यके कर्त्ता वीरनन्दिका समय शक संवत ९०० के लगभग निश्चित होता है। क्यों कि वादिराजसूरिने अपने पार्श्वनाथकाव्यमें उनका स्मरण किया है। और वीरनन्दीकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है—१ श्रीगुणनन्दि, २ विबुधगुणनन्दि, ३ अभयनन्दि और वीरनन्दि। यदि पहले गुणनन्दि और वीरनन्दिके बीचमें हम ७८ वर्षका अन्तर मान लें, तो पहले गुणनन्दिका समय वही शक संवत् ८२२ या वि० सं० ९५७ के लगभग आ जायगा। इससे यह निश्चय होता है कि वीरनन्दिकी गुरुपरम्पराके प्रथम गुणनन्दि और आदिपंपके गुरु देवेन्द्रके गुरु गुणनन्दि एक ही होंगे और जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं येही शब्दार्णवके कर्त्ता होंगे।

गुणनन्दि नामके एक और आचार्य शक संवत् १०३७ [वि० सं० ११७२] में हुए हैं जो मेघचन्द्र त्रैविद्यके गुरु थे। संभव है कि शब्दार्णवके कर्त्ता ये ही हों।

शब्दार्णवकी इस समय दो टीकायें उपलब्ध हैं और दोनों ही सनातन जैन ग्रन्थमालामें छप चुकी हैं—१ शब्दार्णवचन्द्रिका, और २ शब्दार्णवप्रक्रिया।

१—शब्दार्णवचन्द्रिका। इसकी एक बहुत ही प्राचीन और अतिशय जीर्ण प्रति भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें मौजूद है। यह ताडपत्रपर नागरी लिपिमें है। इसके आदि-अन्तके पत्र प्रायः नष्ट हो गये हैं। इसमें छपी हुई प्रतिमें जो गद्य प्रशस्ति है, वह नहीं है। और अन्तमें एक श्लोक है जो आधा पढ़ा जाता है—"मंगलमस्तु।.......इन्द्रश्चन्द्रशकटतनयः पाणिनिः पूज्यपादो यत्प्रोवाचापिशलिरमरः काशकृत्स्नि.......शब्दपारायणस्येति।"

इसके कर्त्ता श्रीसोमदेव मुनि हैं। ये शिलाहार वंशके राजा भोजदेव [द्वितीय] के समयमें हुए हैं और अर्जुरिका नामक ग्रामके त्रिभुवनतिलक नामक जैनमन्दिरमें—जो कि महामण्डलेश्वर गंडरादित्यदेवका बनवाया हुआ था—उन्होंने इसे शक संवत् ११२७ [वि० सं० १२६२] में बनाया है। यह ग्राम इस समय आजरे नामसे प्रसिद्ध है और कोल्हापुर राज्यमें है। वादीभवज्रांकुश श्रीविशालकीर्ति पण्डितदेवके वैयावृत्यसे इस ग्रन्थकी रचना हुई है:—

"श्रीसोमदेवयतिनिर्मितिमादधाति
या नौः प्रतीतगुणनंदितशब्दवार्धौ।

---

१ नं० २५ सन १८८०-८८ की रिपोर्ट।

२ ये विशालकीर्ति वे ही मालूम होते हैं जिनका उल्लेख पं० आशाधरने अपने अनगारधर्मामृतकी प्रशस्तिकी टीकामें 'वादीन्द्रविशालकीर्ति' के नामसे किया है और जिनको उन्होंने न्यायशास्त्रमें पारंगत किया था। पं० आशाधर वि० सं० १२४९ के लगभग धारामें आये थे और वि० सं० १३०० तक उनके अस्तित्वका पता लगता है। (देखो माणिकचंद्र विद्वद्रत्नमालामें 'पण्डित प्रवर आशाधर' शीर्षक लेख) अतः सोमदेवका वैयावृत्य करनेवाले विशालकीर्ति दूसरे नहीं हो सकते। पं० आशाधरके पाससे पढ़कर ही वे दक्षिणकी ओर चले आये होंगे।

सेयं सतामलमचेतसि विस्फुरंती
वृत्तिः सदा नुतपदा परिवर्तिषीष्ट ॥

स्वस्ति श्रीकोल्हापूरदेशांतर्वर्त्यार्जुरिकामहास्थानयुधिष्ठिरावतारमहामण्डलेश्वरगंडरादित्यदेवनिर्मापितत्रिभुवनतिलक-जिनालये श्रीमत्परमपरमेष्ठिश्रीनेमिनाथश्रीपादपद्माराधनबलेन वादीभवज्रांकुशश्रीविशालकीर्तिपंडितदेववैयावृत्यतःश्रीमच्छिलाहारकुलकमलमार्तंडतेजःपुंजराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकपश्चिमचक्रवर्तिश्रीवीरभोजदेवविजयराज्ये शकवर्षैकसहस्रैकशतसप्तविंशति ११२७ तमक्रोधनसंवत्सरे स्वस्ति समस्तानवद्यविद्याचक्रचक्रवर्तिश्रीपूज्यपादानुरक्तचेतसा श्रीमत्सोमदेवमुनीश्वरेण विरचितेयं शब्दार्णवचन्द्रिका नाम वृत्तिरिति । इति श्रीपूज्यपादकृतजैनेन्द्रमहाव्याकरणं सम्पूर्णम् । ”

यशस्तिलकचम्पूके कर्त्ता सुप्रसिद्ध सोमदेवसूरि इनसे पहले हुए हैं। क्यों कि उनका उक्त चम्पू शक संवत् ८८१ [वि० १०१६] में समाप्त हुआ था। अतएव उनसे और इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है, यह स्पष्ट है।

इस ग्रन्थके मंगलाचरणमें नीचे लिखे दो श्लोक दिये हैं:—

श्रीपूज्यपादममलं गुणनन्दिदेवं
सोमामरव्रतिपपूजितपादयुग्मम् ।
सिद्धं समुन्नतपदं वृषभं जिनेन्द्रं
सच्छब्दलक्षणमहं विनमामि वीरम् ॥ १ ॥

श्रीमूलसंघजलजप्रतिबोधभानो-
र्मेघेन्दुदीक्षितभुजंगसुधाकरस्य ।
राद्धान्ततोयनिधिवृद्धिकरस्य वृत्तिं
रेभे हरींदुयतये वरदीक्षिताय ॥ २ ॥

इनमेंसे पहले श्लोकमें पूज्यपाद, गुणनन्दि और सोमदेव ये विशेषण वीर भगवानको दिये हैं। दूसरे श्लोकमें कहा है कि यह टीका मूलसंघीय मेघचन्द्रके शिष्य नागचन्द्र (भुजंगसुधाकर)और उनके शिष्य हरिचन्द्र यतिके लिए बनाई जाती है।

गुणनन्दिकी प्रशंसा चुरादि धातुपाठके अन्तमें भी एक पद्यमें की गई है जिसका अन्तिम चरण यह है:—

शब्दब्रह्मा स जीयाद् गुणनिधिगुणनंदिव्रतीशस्सुसौख्यः ।

अर्थात् इसमें शब्दब्रह्मा विशेषण देकर गुणनन्दिको शब्दार्णव व्याकरणका कर्ता ही प्रकट किया गया है।

अब देखना चाहिए कि ये मेघचन्द्र और नागचन्द्र आदि कौन थे और कब हुए हैं:—

ये मेघचन्द्र आचारसारके कर्ता वीरनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्तीके गुरु ही मालूम होते हैं। ये बड़े भारी विद्वान् थे। इन्हें सिद्धान्तज्ञतामें जिनसेन और वीरसेनके सदृश, न्यायमें अकलंकके समान और व्याकरणमें साक्षात् पूज्यपाद सदृश बतलाया है। श्रवणबेलगोलके नं० ४७, ५० और ५२ नम्बरके शिलालेखोंसे मालूम होता है कि इनका स्वर्गवास शक संवत् १०३७ (वि० सं० ११७२) में और उनके शुभचन्द्रदेव नामक शिष्यका स्वर्गवास शक संवत् १०६८ (वि० सं० १२०३)में हुआ था। तथा उनके दूसरे शिष्य प्रभाचन्द्रदेवने शक सं० १०४१ (वि० सं० ११७६) में एक महापूजाप्रतिष्ठा कराई थी। जब सोमदेवने शब्दार्णवचन्द्रिका मेघचन्द्रके प्रशिष्य हरिचन्द्रके लिए शक सं० ११२७ (वि० सं० १२६२) में बनाई थी, तब मेघचन्द्रका समय वि० सं० ११७२ के लगभग माना जा सकता है।

नागचन्द्र नामके दो विद्वान् हो गये हैं, एक पपरामायणके कर्ता नागचन्द्र जिनका दूसरा नाम अभिनव पंप था, और दूसरे लब्धिसारटीकाके कर्ता नागचन्द्र। पहले गृहस्थ थे और दूसरे मुनि। अभिनव पंपके गुरुका नाम बालचन्द्र था जो मेघचन्द्रके सहाध्यायी थे, और दूसरे स्वयं बालचन्द्रके शिष्य थे। इन दूसरे नागचन्द्रके शिष्य हरिचन्द्रके लिए यह वृत्ति बनाई गई है। इन्हें जो 'राद्धान्त तोयनिधिवृद्धिकर ' विशेषण दिया है उससे मालूम होता है, कि ये सिद्धान्तचक्रवर्ती या सिद्धान्त शास्त्रोंके ज्ञाता या टीकाकार होंगे।

२—शब्दार्णवप्रक्रिया। यह जैनेन्द्र प्रक्रियाके नामसे छपी है; परन्तु हमारा अनुमान है कि इस-

१ मेघचन्द्रके विषयमें विशेष जाननेके लिए देखो माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके ' आचारसार ' की भूमिका।

२ देखो, ' इन्स्क्रिप्शन्स एट श्रवणबेल्गोल ' का ४७ वाँ शिलालेख।

का नाम शब्दार्णव-प्रक्रिया ही होगा। हमें इसकी कोई हस्तलिखित प्रति नहीं मिल सकी। जिस तरह अभयनन्दिकी वृत्तिके बाद उसीके आधारसे प्रक्रियारूप पंचवस्तु टीका बनी है, उसी प्रकार सोमदेवकी शब्दार्णव-चन्द्रिकाके बाद उसीके आधारसे यह प्रक्रिया बनी है। प्रकाशकोंने इसके कर्ताका नाम गुणनन्दि प्रकट किया है; परन्तु जान पडता है इसके अन्तिम श्लोकोंमें गुणनन्दिका नाम देखकर ही भ्रमवश इसके कर्त्ताका नाम गुणनन्दि समझ लिया गया है। वे श्लोक नीचे दिये जाते हैं:—

सत्संधिं दधते समासमभितः ख्यातार्थनामोन्नतं
निर्धातं बहुतद्धितं क्रमिहाख्यातं यशःशालिनम्।
सैषा श्रीगुणनन्दितानितवपुः शब्दार्णवं निर्णयं
नावत्याश्रयतां विविक्षुमनसां साक्षात्स्वयं प्रक्रिया॥ १॥
दुरितमदेभनिशुंभकुम्भस्थलभेदनक्षमोग्रनखैः।
राजन्मृगाधिराजो गुणनन्दी भुवि चिरं जीयात्॥ २
सन्मार्गे सकलसुखप्रियकरे संज्ञापिते सद्गुने
प्रा(दि)ग्वासरसुचरित्रवानमलकः कांतो विवेकी प्रियः।
सोयं यः श्रुतकीर्तिदेवयतिपो भट्टारकोत्तंसको
रंरम्यान्मम मानसे कविपतिः सद्राजहंसश्चिरम्॥ ३

इनमेंसे पहले पद्यका आशय पहले लिखा जा चुका है। उससे यह स्पष्ट होता है कि गुणनन्दिके शब्दार्णवके लिए यह प्रक्रिया नावके समान है। और दूसरे पद्यमें कहा है कि सिंहके समान गुणनन्दि पृथ्वीपर सदा जयवन्त रहें। मालूम नहीं, इन पद्योंसे इस प्रक्रियाका कर्तृत्व गुणनन्दिको कैसे प्राप्त होता है। यदि इसके कर्ता स्वयं गुणनन्दी होते तो वे स्वयं ही अपने लिए यह कैसे कहते कि वे गुणनन्दि सदा जयवन्त रहें। इनसे तो साफ प्रकट होता है कि गुणनन्दि ग्रन्थकर्तासे कोई पृथक् ही व्यक्ति है जिसे वह श्रद्धास्पद समझता है। अर्थात् यह निस्संदेह है कि इसके कर्ता गुणनन्दिके अतिरिक्त कोई दूसरे ही हैं।

तीसरे पद्यमें भट्टारकशिरोमणि श्रुतकीर्ति देवकी प्रशंसा करता हुआ कवि कहता है कि वे मेरे मनरूप मानससरोवरमें राजहंसके समान चिरकाल तक विराजमान रहें। इसमें भी ग्रन्थकर्ता अपना नाम प्रकट नहीं करते हैं; परन्तु अनुमानसे ऐसा जान पडता है कि वे श्रुतकीर्तिदेवके कोई शिष्य होंगे और संभवतः उन श्रुतकीर्तिके नहीं जो पंचवस्तुके कर्ता हैं। ये श्रुतकीर्ति पंचवस्तुके कर्तासे पृथक् जान पड़ते हैं। क्योंकि इन्हें प्रक्रियाके कर्ताने 'कविपति' बतलाया है, व्याकरणज्ञ नहीं। ये वे ही श्रुतकीर्ति मालूम होते हैं जिनका समय प्रो० पाठकने शक संवत् १०४५ या वि० सं० ११८० बतलाया है[1]। श्रवणबेल्गोलके जैनगुरुओंने 'चारुकीर्ति पंडिताचार्य' का पद शक संवत् १०५९ के बाद धारण किया है और पहले 'चारुकीर्ति इन्हीं श्रुतकीर्तिके पुत्र थे[2]। श्रवणबेल्गोलके १०८ वें शिलालेखमें इनका जिकर है और इनकी बहुत ही प्रशंसा की गई है। लिखा है–

तत्र सर्वशरीरिरक्षाकृतमतिर्विजितेन्द्रियः।
सिद्धशासनवर्द्धनप्रतिलब्धकीर्तिकलापकः॥ २२॥
विश्रुतश्रुतकीर्तिभट्टारकयतिस्समजायत।
प्रस्फुरद्वचनामृतांशुविनाशिताखिलहृत्तमाः॥२३॥

प्रक्रियाके कर्ताने इन्हें भट्टारकोत्तंस और श्रुतकीर्तिदेवयतिप लिखा है और इस लेखमें भी भट्टारकयति लिखा है। अतः ये दोनों एक मालूम होते हैं। आश्चर्य नहीं जो इनके पुत्र और शिष्य चारुकीर्ति पण्डिताचार्य ही इस प्रक्रियाके कर्त्ता हों।

समय-निर्णय।

१) शाकटायन व्याकरण और उसकी अमोघवृत्ति नामकी टीका दोनों ही के कर्ता शाकटायन नामके आचार्य हैं, इस बातको प्रो० के० बी० पाठकने अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है[3] और उन्होंने यह भी बतलाया है कि अमोघवृत्ति राष्ट्रकूट राजा

---

१ छपी हुई प्रतिके अन्तमें "इति प्रक्रियावतारे कृद्विधिः पष्ठः समाप्तः। समाप्तेयं प्रक्रिया।" इस तरह छपा है। इससे भी इसका नाम जैनेन्द्र प्रक्रिया नहीं जान पड़ता।

१ देखो 'सिस्टम्स आफ संस्कृत ग्रामर' पृष्ठ ६७।
२ देखो, मेरा लिखा 'कर्नाटक जैन कवि' पृष्ठ २०। ३ देखो, जैनसिद्धान्तभास्कर, किरण २-३, पृष्ठ ११८।
४ देखो, इंडियन एण्टिक्वेरी, जिल्द ४३, पृष्ठ २०५-१२ में प्रो० पाठकका लेख।

अमोघवर्षके समयमें उसीके नामसे बनाई गई है। इससे यह सिद्ध होता है कि शाकटायन व्याकरण (सूत्र) अमोघवर्षके समयमें अथवा उससे कुछ पहले बनाया गया होगा। अमोघवर्षने शक संवत् ७३७ से ८०० तक (वि० सं० ८७२ से ९३५ तक) राज्य किया है। अतः यदि हम शाकटायन सूत्रोंके बननेका समय वि० सं० ८५० के लगभग मान लें, तो वह वास्तविकता के निकट ही रहेगा।

शाकटायन व्याकरणको बारीकीके साथ देखनेसे मालूम होता है कि वह जैनेन्द्रसे पीछे बना हुआ है। क्यों कि उसके अनेक सूत्र जैनेन्द्रका अनुकरण करके रचे गये हैं। उदाहरणके लिए जैनेन्द्रके "वस्तेर्ढञ्" (४-१-१५४), "शिलाया ढः, (४-१-१५५) "ढच" (४ १-२०९) आदि सूत्रोंको शाकटायनने थोडा बहुत फेरफार करके अथवा ज्योंका त्यों ले लिया है। जैनेन्द्रका एक सूत्र है-"टिदादिः" (१-१-५२) शाकटायनने इसे ज्यों का त्यों रख कर अपना पहले अध्याय, पहले पादका ५२ वां सूत्र बना लिया है। इस सूत्रको लक्ष्य करके भट्टाकलंकदेव अपने राजवार्तिक (१-५-१, पृष्ठ ३७) में लिखते हैं—"क्वचिदवयवे टिदादिरिति।" और भट्टाकलंकदेव शाकटायन तथा अमोघवर्षसे पहले राष्ट्रकूट राजा साहसतुंगके समयमें हुए हैं, अत एव यह निश्चय है कि अकलंकदेवने जो 'टिदादि' सूत्रका प्रमाण दिया है, वह जैनेन्द्रके सूत्रको ही लक्ष्य करके दिया है, शाकटायनके सूत्रको लक्ष्य करके नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि शाकटायन जैनेन्द्रसे पीछेका बना हुआ है। अर्थात् जैनेन्द्र वि० सं० ८५० से भी पहले बन चुका था।

२) वामनप्रणीत लिङ्गानुशासन नामका एक ग्रन्थ अभी हाल ही गायकवाड ओरियंटल सीरीजमें प्रकाशित हुआ है। इसका कर्ता पं० वामन राष्ट्रकूट राजा जगत्तुंग या गोविन्द तृतीयके समयमें हुआ है और इस राजाने शक ७१६ से ७३६ (वि० ८५१—८७१) तक राज्य किया है। यह ग्रन्थकर्ता नीचे लिखे पद्यमें जैनेन्द्रका उल्लेख करता है-

> व्याडिप्रणीतमथ वाररुचं सचान्द्रं
> जैनेन्द्रलक्षणगतं विविधं तथान्यत्।
> लिङ्गस्य लक्ष्म हि समस्य विशेषयुक्तमुक्तं मया परिमितं त्रिदशा इहार्याः ॥ ३१ ॥

इससे भी सिद्ध होता है कि वि० सं० ८५० के लगभग जैनेन्द्र प्रख्यात व्याकरणोंमें गिना जाता था। अतएव यह इस समयसे भी पहलेका बना हुआ होना चाहिए।

३) हरिवंशपुराण शक संवत् ७०५ (वि० सं० ८४०)-का बना हुआ है। इस समय यह समाप्त हुआ है। उस समय दक्षिणमें राष्ट्रकूट राजा कृष्ण (शुभतुंग या साहसतुंग) का पुत्र श्रीवल्लभ (गोविन्दराज द्वितीय) राज्य करता था। इस राजाने शक ६९७ से ७०५ तक [वि० ८३२ से ८४०] तक राज्य किया है। इस हरिवंशपुराणमें पूज्यपाद या देवनन्दिकी प्रशंसा इस प्रकार की गई है: -

> इं(इं)द्रचन्द्रार्कजैनेन्द्रव्यापि (डि)व्याकरणेक्षिणः।
> देवस्य देववन्द्यस्य न वदते गिरः कथम् ॥ ३१ ॥

यह बात निस्सन्देह होकर कही जा सकती है कि जैनेन्द्रव्याकरणके कर्ता देवनन्दि वि० से ८०० से भी पहलेके हैं।

४) उपर बतलाया चुका है कि तत्त्वार्थराजवार्तिकमें जैनेन्द्र व्याकरणके एक सूत्रका हवाला दिया गया है। इसी तरह "सर्वादिः सर्वनाम" [१-१-३५] सूत्र भी जैनेन्द्रका है, और उसका उल्लेख राजवार्तिक अध्याय १ सूत्र ११ की व्याख्यामें किया गया है। इससे सिद्ध है कि जैनेन्द्र व्याकरण राजवार्तिकसे पहलेका बना हुआ है। राजवार्तिकके कर्ता अकलंकदेव राष्ट्रकूट राजा साहसतुंग—जिसका दूसरा नाम शुभतुंग और कृष्ण भी है—की सभामें गये थे, इसका उल्लेख श्रवणबेलगोलकी मल्लिषेणप्रशस्तिमें किया गया है; और साहसतुंगने शक संवत् ६७५ से ६९७ [वि० सं० ८१० से ८३२] तक राज्य किया है। यदि राजवार्तिकको हम इस राजाके ही समयका बना हुआ मानें, तो भी जैनेन्द्र वि० स० ८०० से पहलेका बना हुआ सिद्ध होता है।

---

१ देव देवनन्दिका ही संक्षिप्त नाम है। शब्दार्णवचन्द्रिकामें १-४-११४ सूत्रकी व्याख्यामें लिखा है—"देवोपज्ञमनेकशेषव्याकरणम्।"

उक्त प्रमाणोंसे यह तो निश्चय हो गया कि जैनेन्द्रके कर्ता विक्रम सं० ८०० से पहले हुए हैं। परंतु यह निश्चय नहीं हुआ कि कितने पहले हुए हैं। इसके लिए आगेके प्रमाण देखिए।

५—मर्करा (कुर्ग) में एक बहुत ही प्राचीन ताम्रपत्र[1] मिला है। यह शक संवत् ३८८ (वि०सं०५२३) का लिखा हुआ है। उस समय गंगवंशीय राजा अविनीत राज्य करता था। अविनीत राजाका नाम भी इस लेखमें है। इसमें कुन्दकुन्दान्वय और देशीयगणके मुनियोंकी परम्परा इस प्रकार दी हुई है:—गुणचन्द्र—अभयनन्दि-शीलभद्र-ज्ञाननन्दि-गुणनन्दि और वदनननन्दि। पूर्वोक्त अविनीत राजाके बाद उसका पुत्र दुर्विनीत राजा हुआ है। हिस्ट्री आफ कनडी लिटरेचर नामक अंगरेजी ग्रन्थ और 'कर्नाटककविचरित्र'[2] नामक कनडी ग्रन्थके अनुसार इस राजाका राज्यकाल ई० सन ४८२ से ५१२ (वि० ५३९—६९) तक है। यह कनडी भाषाका कवि था। भारविके किरातार्जुनीय काव्यके १५ वें सर्गकी कनडी टीका इसने लिखी है। कर्नाटककविचरित्रके कर्ता लिखते हैं कि यह राजा पूज्यपाद यतीन्द्रका शिष्य था। अतः पूज्यपादको हमें विक्रमकी छठी शताब्दिके प्रारंभका ग्रन्थकर्ता मानना चाहिए। मर्कराके उक्त ताम्रपत्रसे भी यह बात पुष्ट होती है। वि० संवत् ५२३ में अविनीत राजा था। इसके १६ वर्ष बाद वि० सं० ५३९ में उसका पुत्र दुर्विनीत राजा हुआ होगा, अतएव उसका जो राज्यकाल बतलाया गया है, वह अवश्य ठीक होगा। और जिन वदनननन्दिके समय उक्त ताम्रपत्र लिखा गया है, संभवतः उन्हींकी शिष्य परम्परामें बल्कि उन्हींके शिष्य या प्रशिष्य जैनेन्द्रके कर्ता देवनन्दि या पूज्यपाद होंगे। क्यों कि ताम्रपत्रकी मुनिपरम्परामें नन्द्यन्त नाम ही अधिक हैं, और इनका भी नाम नन्द्यन्त है। इतना ही नहीं बल्कि इनके शिष्य वज्रनन्दिका नाम भी नन्द्यन्त है। अतः जबतक कोई प्रमाण इसका विरोधी न मिले, तबतक हमें देवनन्दिको कुन्दकुन्दाम्नाय और देशीयगणके आचार्य वदनननन्दिका शिष्य या प्रशिष्य माननेमें कोई दोष नहीं दिखता। उनका समय विक्रमकी छठी शताब्दिका प्रारंभ भी प्रायः निश्चित समझना चाहिए।

६—इस समयकी पुष्टिमें एक और भी अच्छा प्रमाण मिलता है। वि० सं० ९९० में बने हुए 'दर्शनसार' नामक प्राकृत ग्रन्थमें लिखा है कि पूज्यपादके शिष्य वज्रनन्दिने वि० सं० ५२६ में दक्षिण मथुरा या मदुरामें द्राविडसंघकी स्थापना की:—

> सिरिपुज्जपादसीसो दाविडसंघस्स कारगो दुट्ठो।
> णामेण वज्जणंदी पाहुडवेदी महासत्थो॥
> पंचसए छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
> दक्खिणमहुराजादो दाविडसंघो महामोहो॥

इससे भी पूज्यपादका समय वही छठी शताब्दिका प्रारंभ निश्चित होता है।

प्रो० पाठकके प्रमाण।

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० काशीनाथ बापूजी पाठकने अपने शाकटायन व्याकरणसम्बन्धी लेख[1]में कुछ प्रमाण ऐसे दिये हैं जिनसे ऐसा भास होता है कि जैनेन्द्रके समयका मानो अन्तिम निर्णय हो गया। इन प्रमाणोंको भी हम अपने पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करदेना चाहते हैं; परन्तु साथ ही यह भी कह देना चाहते हैं कि ये प्रमाण जिस नींवपर खड़े किये गये हैं, उसमें कुछ भी दम नहीं है। जैसा कि हम पहले सिद्ध कर चुके हैं जैनेन्द्रका असली सूत्रपाठ वही है जिसपर अभयनन्दिकी महावृत्ति रची गई है; परन्तु पाठक महोदयने जितने प्रमाण दिये हैं, वे सब शब्दार्णवचन्द्रिकाके सूत्रपाठको असली जैनेन्द्रसूत्र मानकर दिये हैं; इस कारण वे तबतक ग्राह्य नहीं हो सकते जबतक कि पुष्ट प्रमाणोंसे यह सिद्ध नहीं कर दिया जाय कि शब्दार्णवचन्द्रिकाका पाठ ही ठीक है और इसके विरुद्धमें दिये हुए हमारे प्रमाणोंका पूरा पूरा खण्डन न कर दिया जाय।

---

१ इंडियन एण्टिक्वेरी, जिल्द १, पृष्ठ ३६३–६५ और एपिग्राफिका कर्नाटिका, जिल्द १ का पहला लेख। २ आर. नरसिंहाचार्य, एम० ए० कृत।

१ देखो इंडियन एण्टिक्वेरी जिल्द ४३, पृष्ठ २०५–१२।

१—जैनेन्द्रका एक सूत्र है—" हस्तादेयेनुदस्तेये चेः " [२-३-३८]। इस सूत्रके अनुसार 'चि' का 'चाय' हो जाता है, उस अवस्थामें जब कि हाथसे ग्रहण करने योग्य हो, उत् उपसर्गके बाद न हो और चोरी करके न लिया गया हो। जैसे 'पुष्पप्रचायः'। हस्तादेय न होनेसे पुष्पप्रचय, उत् उपसर्ग होनेसे 'पुष्पोच्चय' और चोरी होनेसे 'पुष्पप्रचय' होता है*। इस सूत्रमें उत् उपसर्गके बाद जो 'चाय' होनेका निषेध किया गया है, वह पाणिनिमें,+ उसके वार्तिकमें और भाष्यमें भी नहीं है। परन्तु पाणिनिकी काशिकावृत्तिमें ३-३-४० सूत्रके व्याख्यानमें है—" उच्चयस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः।" इससे सिद्ध होता है कि काशिकाके कर्त्ता वामन और जयादित्यने इसे जैनेन्द्रपरसे ही लिया है और जयादित्यकी मृत्यु वि॰ सं॰ ७१७ में हो चुकी थी ऐसा चिनी यात्री इत्सिंगने अपने 'यात्राविवरण' में लिखा है। अतः जैनेन्द्रव्याकरण वि॰ सं॰ ७१७ से भी पहलेका बना हुआ होना चाहिए।

२—पाणिनि व्याकरणमें नीचे लिखा हुआ एक सूत्र है:—

" शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्साग्रायणेषु। "
४-१-१०२।

इसके स्थानमें जैनेन्द्रका सूत्र इस प्रकार है—

" शरद्वच्छुनकदर्भाग्निशर्मकृष्णरणात् भृगुवत्साग्रायणवृषगणब्राह्मणवासिष्ठे।" ३-१-१३४।

इसीका अनुकरणकारी सूत्र शाकटायनमें इस तरह का है:—

"शरद्वच्छुनकरणाग्निशर्मकृष्णदर्भाद् भृगुवत्सवसिष्ठवृषगणब्राह्मणाग्रायणे" २-४-३६।

इस सूत्रकी अमोघवृत्तीमें

" आग्निशर्मायणो वार्षगण्यः। आग्निशर्मिरन्यः। "

इस तरह व्याख्या की है।

इन सूत्रोंसे यह बात मालूम होती है कि पाणिनिमें 'वार्षगण्य' शब्द सिद्ध नहीं किया गया है जब कि जैनेन्द्रमें किया गया है। 'वार्षगण्य' सांख्य कारिकाके कर्त्ता ईश्वरकृष्णका दूसरा नाम है और सुप्रसिद्ध चीनी विद्वान् डा॰ टक्कुसुके मतानुसार ईश्वरकृष्ण वि॰ सं॰ ५०७ के लगभग विद्यमान थे। इससे निश्चय हुआ कि जैनेन्द्रव्याकरण ईश्वरकृष्णके बाद—वि॰ सं॰ ५०७ के बाद और काशिकासे पहले—वि॰ सं॰ ७१७ से पहले—किसी समय बना है।

३—जैनेन्द्रका और एक सूत्र है—" गुरूदयाद् भाद्युक्तेऽब्दे " (३-२-२५)। शाकटायनने भी इसे अपना २-४-२२४ वां सूत्र बना लिया है। हेमचन्द्रने थोडासा परिवर्तन करके " उदितगुरोर्भाद्युक्तेऽब्दे" (६-२-२५) बनाया है। इस सूत्रमें द्वादशवर्षात्मक बार्हस्पत्य संवत्सरपद्धतिका उल्लेख किया

---

१ इन प्रमाणोंमे जहाँ जहाँ जैनेन्द्रका उल्लेख हो, वहाँ वहाँ शब्दार्णव-चन्द्रिकाका सूत्रपाठ समझना चाहिए। सूत्रोंके नम्बर भी उसीके अनुसार दिये गये हैं।

* 'हस्तादेये' हस्तेनादानेऽनुदि वाचि चिञो घञ् भवत्यस्तेये। पुष्पप्रचायः। हस्तादेय इति किं? पुष्पप्रचयं करोति तरुशिखरे। अनुदीति किं? फलोच्चयः। अस्तेय इति किं? फलप्रचयं करोति चौर्येण (शब्दार्णव-चन्द्रिका पृ॰ ५९)

+ पाणिनिका सूत्र इस प्रकार है—"हस्तादाने चेरस्तेये" (३-३-४०)

१ इस संवत्सरकी उत्पत्ति बृहस्पतिकी गति परसे हुई है, इस कारण इसे बार्हस्पत्य संवत्सर कहते हैं। जिस समय यह मालूम हुआ कि नक्षत्रमण्डलमेंसे बृहस्पतिकी एक प्रदक्षिणा लगभग १२ वर्षमें होती है, उसी समय इस संवत्सरकी उत्पत्ति हुई होगी, ऐसा जान पडता है। जिस तरह सूर्यकी एक प्रदक्षिणाके कालको एक सौर वर्ष और उसके १२ वें भागको मास कहते हैं, उसी तरह इस पद्धतिमें गुरुके प्रदक्षिणा कालको एक गुरुवर्ष और उसके लगभग १२ वें भागको गुरुमास कहते थे। सूर्यसान्निध्यके कारण गुरु वर्षमें कुछ दिन अस्त रहकर जिस नक्षत्रमें उदय होता है, उसी नक्षत्रके नाम गुरुवर्षके मासोंके नाम रक्खे जाते थे। ये गुरुके मास वस्तुतः सौर वर्षोंके नाम हैं, इस कारण इन्हें चैत्र संवत्सर, वैशाख संवत्सर आदि कहते थे। इस पद्धतिको अच्छी तरह समझनेके लिए स्वर्गीय पं॰ शंकर बालकृष्ण दीक्षितका " भारतीय ज्योतिःशास्त्राचा इतिहास " और डॉ॰ फ्लीटके 'गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स' में इन्हीं दीक्षित महाशयका अँगरेजी निबन्ध पढना चाहिए।

गया है। यह पद्धति प्राचीन गुप्त और कदम्बवंशी राजाओंके समय तक प्रचलित थी, इसके कई प्रमाण पाये गये हैं। प्राचीन गुप्तोंके शक संवत् ३०७ से ४५० [वि० सं० ४५५ से ५८५] तक तक के पाँच ताम्रपत्र पाये गये हैं। उनमें चैत्रादि संवत्सरोंका उपयोग किया गया है और इन्हीं गुप्तोंके समकालीन कदम्बवंशी राजा मृगेशवर्माके ताम्रपत्रमें भी पौष संवत्सरका उल्लेख है। इससे मालूम होता है कि इस बृहस्पति संवत्सरका सबसे पहले उल्लेख करनेवाले जैनेन्द्रव्याकरणके कर्त्ता हैं और इसलिए जैनेन्द्रकी रचना का समय ईस्वी सनकी पाँचवीं शताब्दिके उत्तरार्ध (विक्रमकी छठी शताब्दीका पूर्वार्ध) के लगभग होना चाहिए। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि जैनेन्द्रकी रचना ईश्वरकृष्णके पहले अर्थात् वि० सं० ५०७ के पहले नहीं हो सकती, क्यों कि उसमें वार्षगण्यका उल्लेख है।

पाठक महाशयने इन प्रमाणोंमें 'हस्तादेयेनुयस्तेये चेः', 'शरद्वच्छुनकदर्भाग्निशर्मकृष्णरणात् भृगुवत्साग्रायणवृषगणब्राह्मणवसिष्ठे' और 'गुरूदयाद् भाद्युक्तेव्दे' सूत्र दिये हैं, परन्तु ये तीनों ही जैनेन्द्रके असली सूत्रपाठमें इन रूपोंमें नहीं हैं, अतएव इनसे जैनेन्द्रका समय किसी तरह भी निश्चित नहीं हो सकता है।

हाँ, यदि जैनेन्द्रकी कोई स्वयं देवनन्दिकृत वृत्ति उपलब्ध हो जाय, जिसके कि होनेका हमने अनुमान किया है, और उसमें इन सूत्रोंके विषयको प्रतिपादन करनेवाले वार्तिक आदि मिल जायं—मिल जानेकी संभावना भी बहुत है—तो अवश्य ही पाठक महाशयके ये प्रमाण बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगे।

पाठक महाशयके इन प्रमाणोंके ठीक न होने पर भी दर्शनसारके और मर्कराके ताम्रपत्रके प्रमाणसे यह बात लगभग निश्चित ही है कि जैनेन्द्र विक्रमकी छठी शताब्दीके प्रारंभ की रचना है।

जैनेन्द्रोक्त अन्य आचार्य।

पाणिनि आदि वैयाकरणोंने जिस तरह अपनेसे पहलेके वैयाकरणोंके नामोंका उल्लेख किया है उसी तरह जैनेन्द्रसूत्रोंमें भी नीचे लिखे आचार्योंका उल्लेख मिलता है:—

१–राद् भूतबलेः। ३-४-८३।
२–गुणे श्रीदत्तस्यास्त्रियाम। १–४–३४।
३–कृषिमृजां यशोभद्रस्य। २–१–९९।
४–रात्रेः कृतिप्रभाचन्द्रस्य। ४–३–१८०।
५–वेत्तेः सिद्धसेनस्य। ५–१–७।
६–चतुष्टयं समन्तभद्रस्य। ५–४–१४०।

जहां तक हम जानते हैं, उक्त छहों आचार्य ग्रन्थकर्त्ता तो हो गये हैं, परन्तु उन्होंने कोई व्याकरण ग्रन्थ भी बनाये होंगे, ऐसा विश्वास नहीं होता। जान पड़ता है, पूर्वोक्त आचार्योंके ग्रन्थोंमें जो जुदा जुदा प्रकारके शब्दप्रयोग पाये जाते होंगे उन्हीं को व्याकरणसिद्ध करनेके लिए ये सब सूत्र रचे गये हैं। इन आचार्योंमेंसे जिन जिनके ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनके शब्दप्रयोगोंकी बारीकीके साथ जांच करनेसे इस बातका निर्णय हो सकता है। आशा है कि जैन समाजके पण्डितगण इस विषयमें परिश्रम करनेकी कृपा करेंगे।

१ भूतबलि। इनका परिचय इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार कथामें दिया गया है। भगवान् महावीरके निर्वाणके ६८३ वर्ष बाद तक अंगज्ञानकी प्रवृत्ति रही। इसके बाद विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त, और अर्हद्दत्त नामके चार आरातीय मुनि हुए जिन्हें अंग और पूर्वके अंशोंका ज्ञान था। इनके बाद अर्हद्बलि और माघनन्दि आचार्य हुए। इन्हें उन अंशोंके भी कुछ अंश ज्ञान रहा। इनके बाद धरसेन आचार्य हुए। इन्होंने भूतबलि और पुष्पदन्त नामक दो मुनियोंको विधिपूर्वक अध्ययन कराया और इन दोनोंने महाकर्मप्रकृतिप्राभृत या षट्खण्ड नामक शास्त्रकी रचना की। यह ग्रन्थ[1] ३६ हजार श्लोक प्रमाण है। इसके प्रारंभका कुछ भाग पुष्प-

---

१ संभवतः यह ग्रन्थ मूडविद्री (मंगलोर) के जैनभण्डारमें मौजूद है।

न्त आचार्यका और शेष भूतबलिका बनाया हुआ है। वीरनिर्वाणसंवत् ६८३ के बाद पूर्वोक्त सब आचार्य क्रमसे हुए, या अक्रमसे; और उनके बीचमें कितना कितना समय लगा, यह जाननेका कोई भी साधन नहीं है। यदि हम इनके बीचका समय २५० वर्ष मान लें तो भूतबलिका समय वीरनिर्वाण संवत् ९३३ (शक संवत् ३२८ वि० सं० ४६३) के लगभग निश्चित होता है। और इस हिसाबसे वे पूज्यपाद स्वामीसे कुछ ही पहले हुए हैं, ऐसा अनुमान होता है।

२ श्रीदत्त। विक्रमकी ९ वीं शताब्दिके सुप्रसिद्ध लेखक विद्यानन्दने अपने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें श्रीदत्तके 'जल्पनिर्णय' नामक ग्रन्थका उल्लेख किया है:—

द्विप्रकारं जगौ जल्पं तत्त्व-प्रातिभगोचरम्।
त्रिषष्टेर्वादिनां जेता श्रीदत्तो जल्पनिर्णये॥

इससे मालूम होता है कि ये ६३ वादियोंके जीतनेवाले बड़े भारी तार्किक थे। आदिपुराणके कर्ता जिनसेनसूरिने भी इनका स्मरण किया है और इन्हें वादिगजोंका प्रभेदन करनेके लिए सिंह बतलाया है:—

श्रीदत्ताय नमस्तस्मै तपः श्रीदीप्तमूर्तये।
कण्ठीरवायितं येन प्रवादीभप्रभेदने॥ ४५

वीरनिर्वाण संवत् ६८३ के बाद जो ४ आरातीय मुनि हुए हैं, उनमें भी एकका नाम श्रीदत्त है। उनका समय वीरनिर्वाण सं० ७०० (शक सं० ९५-वि० सं० २३०) के लगभग होता है। यह भी संभव है कि आरातीय श्रीदत्त दूसरे हों और जल्पनिर्णयके कर्ता दूसरे। तथा इन्हीं दूसरेका उल्लेख जैनेन्द्रमें किया गया हो।

३ यशोभद्र। आदिपुराणमें संभवतः इन्हीं यशोभद्रका स्मरण करते हुए कहा है—

विदुष्विणीषु संसत्सु यस्य नामापि कीर्तितम्।
निखर्वयति तद्गर्वं यशोभद्रः स पातु नः॥ ४६

इनके विषयमें और कोई उल्लेख नहीं मिला और न यही मालूम हुआ कि इनके बनाये हुए कौन कौन ग्रन्थ हैं। आदिपुराणके उक्त श्लोकसे तो वे तार्किक ही जान पड़ते हैं।

४ प्रभाचन्द्र। आदिपुराणमें न्यायकुमुदचन्द्रोदयके कर्ता जिन प्रभाचन्द्रका स्मरण किया है, उनसे ये पृथक् और पहलेके मालूम होते हैं। क्यों कि चन्द्रोदयके कर्ता अकलङ्कभट्टके समयमें हुए हैं, इस लिए उनका जिक्र जैनेन्द्रमें नहीं हो सकता। मालूम नहीं, ये प्रभाचन्द्र किस ग्रन्थके कर्ता हैं और कब हुए हैं।

५ सिद्धसेन। ये सिद्धसेन दिवाकरके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये बड़े भारी तार्किक हुए हैं। स्वर्गीय डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषणका खयाल था कि विक्रमकी सभाके 'क्षपणक' नामक रत्न यही थे। आदिपुराणमें इनका कवि, और प्रवादिगजकेसरी कहकर और हरिवंशपुराणमें सूक्तियोंका कर्ता कहकर स्मरण किया है। न्यायावतार, सम्मतितर्क, कल्याणमन्दिरस्तोत्र और २० द्वात्रिंशिकायें (स्तुतियां) इनकी उपलब्ध हैं। यदि विक्रमका समय ईसाकी छठी शताब्दी माना जाय-जैसा कि प्रो० मोक्षमूलर आदिका मत है-तो सिद्धसेन इसी समयमें हुए हैं और लगभग यही समय जैनेन्द्रके बननेका है। *

६ समन्तभद्र। दिगम्बर सम्प्रदायके ये बहुत ही प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। बीसों दिगम्बर ग्रन्थकारोंने इनका उल्लेख किया है। ये बड़े भारी तार्किक और कवि थे। इनका गृहस्थावस्थाका नाम वर्म था। ये फणिमण्डल (?) के उरगपुर-नरेशके

---

१ त्रैलोक्यसारके कर्ता 'नेमिचन्द्र' ने और हरिवंशपुराणके कर्ताने वीर निर्वाणसे ६०५ वर्ष बाद शककाल माना है। उन्हींकी गणनाके अनुसार हमने यहाँ शक संवत् दिया है।

* सिद्धसेन ईस्वीकी ६ ठी शताब्दीसे बहुत पहले हो गये है। क्यों कि विक्रमकी ५ वीं शताब्दीमें हो जाने वाले आचार्य मल्लवादीने सिद्धसेनके सम्मतितर्क ऊपर टीका लिखी थी। हमारे विचारसे सिद्धसेन विक्रमकी प्रथम शताब्दिमें हुए हैं।

संपादक—जै. सा. सं.

पुत्र थे। इनके बनाये हुए देवागम (आप्तमीमांसा), युक्त्यनुशासन, बृहत्स्वयंभूस्तोत्र, जिन-शतक और रत्नकरण्ड श्रावकाचार: ये ग्रन्थ छप चुके हैं। हरिवंशपुराणमें इनके एक 'जीवसिद्धि' नामक ग्रन्थका उल्लेख मिलता है। षट्खण्डसूत्रोंके पहले पांच खण्डोंपर भी इनकी बनाई हुई ४८ हजार श्लोक प्रमाण संस्कृत टीकाका उल्लेख मिला है। आवश्यकसूत्रकी मलयगिरिकृत टीकामें 'आद्य-स्तुतिकारोऽप्याह' कहकर इनके स्वयंभू स्तोत्रका एक पद्य उद्धृत किया है। इससे मालूम होता है कि ये सिद्धसेनसे भी पहलेके ग्रन्थकर्ता हैं[1]। क्यों कि सिद्धसेन भी स्तुतिकारके नामसे प्रसिद्ध हैं। अभी तक इन दोनों ही आचार्योंका समय निर्णीत नहीं हुआ है।

पूज्यपादके अन्य ग्रन्थ।

जैनेन्द्रके सिवाय पूज्यपादस्वामीके बनाये हुए अबतक केवल तीन ही ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं और ये तीनों ही छप चुके हैं:-

१—सर्वार्थसिद्धि। दिगम्बर सम्प्रदायमें आचार्य उमास्वातिकृत तत्त्वार्थसूत्रकी यह सबसे पहली टीका है। अन्य सब टीकायें इसके बादकी हैं और वे सब इसको आगे रख कर लिखी गई हैं।

२—समाधितंत्र। इसमें लगभग १०० श्लोक हैं, इस लिए इसे समाधिशतक भी कहते हैं। अध्यात्मका बहुत ही गंभीर और तात्त्विक ग्रन्थ है। इस पर कई संस्कृत टीकायें लिखी गई हैं।

३—इष्टोपदेश। यह केवल ५१ श्लोकप्रमाण छोटा-सा ग्रन्थ है और सुन्दर उपदेशपूर्ण है। पं० आशाधरने इसपर एक संस्कृत निबन्ध लिखा है।

इनके सिवाय कहा जाता है कि इनके बनाये हुए और भी कई ग्रन्थ हैं। सर्वार्थसिद्धिकी भूमिकामें श्रीयुत पं० कलापा निटवेने लिखा है कि चिकित्साशास्त्रपर भी पूज्यपादस्वामीके दो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, जिनमेंसे एकमें चिकित्साका और दूसरेमें औषधों तथा धान्योंका गुणनिरूपण है। परन्तु पण्डितश्री महाशयने न तो उक्त ग्रन्थोंका नाम ही लिखा है और न यही लिखनेकी कृपा की है कि वे कहाँ उपलब्ध हैं। शुभचन्द्राचार्यकृत ज्ञानार्णवके नीचे लिखे श्लोकके 'काय' शब्दसे भी यह बात ध्वनित होती है कि पूज्यपादस्वामीका कोई चिकित्सा ग्रन्थ है:-

> अपाकुर्वन्ति यद्वाचः कायवाक्चित्तसंभवम्।
> कलङ्कमङ्गिनां सोयं देवनन्दी नमस्यते॥

पूनेके भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें 'पूज्यपादकृत वैद्यक' नामका एक ग्रन्थ है[1]। यह आधुनिक कनडीमें लिखा हुआ कनडी भाषाका ग्रन्थ है। पर इसमें न तो कहीं पूज्यपादका उल्लेख है और न यही मालूम होता है कि यह उनका बनाया हुआ होगा।

विजयनगरके हरिहरराजाके समयमें एक मंगराज नामका कनडी कवि हुआ है। वि० सं० १४१६ के लगभग उसका आस्तित्व काल है। स्थावर विषोंकी प्रक्रिया और चिकित्सापर उसने खगेन्द्रमणिदर्पण नामका एक ग्रन्थ लिखा है। इसमें वह आपको पूज्यपादका शिष्य बतलाता है और यह भी लिखता है कि यह ग्रन्थ पूज्यपादके वैद्यक ग्रन्थसे संगृहीत है। इससे मालूम होता है कि पूज्यपाद नामके एक विद्वान् विक्रमकी तेरहवीं शताब्दिमें भी हो गये हैं और लोग भ्रमवश उन्हींके वैद्यक ग्रन्थको जैनेन्द्रके कर्ताका ही बनाया हुआ समझकर उल्लेख कर दिया करते हैं।

वृत्तविलास कविकी कनडी धर्मपरीक्षाका जो पद्य पहले उद्धृत किया जा चुका है उसमें दो ग्रन्थोंका और भी उल्लेख है, एक पाणिनिव्याक-

1 लेखक महाशयके इस कथनमें कि, समन्तभद्र सिद्धसेनसे भी पहले हुए हैं, कोई प्रमाण नहीं है। हमारे विचारसे सिद्धसेन समन्तभद्रके पुरोगामी हैं। इस विषयके विशेष विचार जाननेके लिये, इस पत्रके प्रथम अंकमें प्रकाशित 'सिद्धसेन दिवाकर और स्वामी समन्तभद्र' शीर्षक हमारा लेख देखना चाहिए।

संपादक-जै. सा. सं.

1 नं. १०६६, सन् १८८७-९१ की रिपोर्ट।

रणकी टीकाका और दूसरा यंत्रमंत्रविषयक शास्त्रका। पूज्यपादद्वारा पाणिनिकी टीकाका लिखा जाना असंभव नहीं है; परन्तु साथ ही वृत्तविलास को पूज्यपादके 'जिनेन्द्रबुद्धि' नामसे भी यह भ्रम हो गया हो तो आश्चर्य नहीं। क्यों कि पाणिनिकी काशिका वृत्तिपर जो न्यास है उसके कर्त्ताका भी नाम 'जिनेन्द्रबुद्धि' है। इस नामसाम्यसे यह समझ लिया जा सकता है कि पूज्यपादने भी पाणिनिकी टीका लिखी है। न्यासकार 'जिनेन्द्रबुद्धि' वास्तवमें बौद्धभिक्षु थे और वे अपने नामके साथ 'श्री बोधिसत्त्वदेशीयाचार्य' इस बौद्ध पदवीको लगाते हैं। पूज्यपादके कनडी चरित लेखकने लिखा है कि पाणिनि पूज्यपादके मामा थे और पाणिनिके अधूरे ग्रन्थको उन्होंने ही पूर्ण किया था; परन्तु इस समय ऐसी बातोंपर विश्वास नहीं किया जा सकता।

'जैनाभिषक' नामक एक और ग्रन्थका जिकर "जैनेन्द्रं निजशब्दभागमतुलं" आदि श्लोकमें किया गया है। यह श्लोक उपर पृष्ठ ६५ में दिया जा चुका है। जहां तक हमारा खयाल है जैनाभिषेक और यंत्रमंत्रविषयक ग्रन्थ भी अन्य किसी पूज्यपादके बनाये हुए होंगे और भ्रमसे इनके समझ लिये गये होंगे।

कनडी पूज्यपादचरितमें पूज्यपादके बनाये हुए अर्हत्प्रतिष्ठालक्षण और शान्त्यष्टक नाम स्तोत्रका भी जिकर है।

पूज्यपाद-चरित।

अन्य बडे बडे आचार्योंके समान पूज्यपादके जीवनसम्बन्धी घटनाओंसे भी हम अपरिचित हैं। उनके जाननेका कोई साधन भी नहीं है। सिवाय इसके कि वे एक समर्थ आचार्य थे और हमारे उपकारके लिए अनेक ग्रन्थ बनाकर रख गये हैं, उनका कोई इतिहास नहीं है। आगे हम एक कनड़ी भाषाके पूज्यपाद-चरितका सारांश देते हैं, जिससे उन लोगोंका मनोरंजन अवश्य होगा, जो अपने प्रत्येक महापुरुषका जीवनचरित-चाहे वह कैसा ही हो-पढनेके लिए उत्कंठित रहते हैं। विद्वान् पाठक इससे यह समझ सकेंगे कि सत्यताकी जरा भी परवा न करनेवाले और साम्प्रदायिकताके मोहमें बहनेवाले लेखक किस तरह तिलका ताड बनाते हैं।

इस चरितको चन्द्रय्य नामक कविने दुःषम कालके परिधावी संवत्सरकी आश्विन शुक्ल ५, शुक्रवार, तुलालग्नमें समाप्त किया है। यह कवि कर्नाटक देशके मलयनगरकी 'ब्राह्मणगली' का रहनेवाला था। वत्सगोत्री और सूर्यवंशी ब्राह्मण बम्मणाके दो पुत्र हुए सातप्पा हुब्ब ब्रह्मरस और विजयप्पा। विजयप्पाके ब्रह्मरस और ब्रह्मरस के देवप्पा हुआ। इसी देवप्पाकी कुसुमम्मा नामक पुत्रीसे कवि चन्द्रय्य का जन्म हुआ था।

चरितका सारांश यह हैः—

"कर्नाटक देशके 'कोले' नामक ग्रामके माधवभट्ट नामक ब्राह्मण और श्रीदेवी ब्राह्मणीसे पूज्यपादका जन्म हुआ। ज्योतिषियोंने बालकको त्रिलोकपूज्य बतलाया, इस कारण उसका नाम पूज्यपाद रक्खा गया। माधवभट्टने अपनी स्त्रीके कहनेसे जैनधर्म स्वीकार करलिया। भट्टजीके सालेका नाम पाणिनि था, उसे भी उन्होंने जैनी बननेको कहा, परन्तु प्रतिष्ठाके खयालसे वह जैनी न होकर मुडीगुंडग्राममें वैष्णव संन्यासी हो गया। पूज्यपादकी कमलिनी नामक छोटी बहिन हुई, वह गुणभट्टको व्याही गई। गुण भट्टको उससे नागार्जुन नामक पुत्र हुआ।

पूज्यपादने एक बगीचेमें एक सांपके मुंहमें फंसे हुए मेंडकको देखा। इससे उन्हें वैराग्य हो गया और वे जैन साधु बन गये।

पाणिनि अपना व्याकरण रच रहे थे। वह पूरा न होने पाया था कि उन्होंने अपना मरणकाल निकट आया जान लिया। इससे उन्होंने पूज्यपाद से जाकर कहा कि इसे आप पूरा कर दीजिए। उन्होंने पूरा करना स्वीकार कर लिया।

पाणिनि दुर्ध्यानवश मरकर सर्प हुए। एक बार उसने पूज्यपादको देखकर फूत्कार किया, इसपर पूज्यपादने कहा, विश्वास रक्खो, मैं तुम्हारे व्याकरणको पूरा कर दूंगा। इसके बाद उन्होंने पाणिनि व्याकरणको पूरा कर दिया।

इसके पहले वे जैनेन्द्र व्याकरण, अर्हत्प्रतिष्ठालक्षण, और वैद्यक ज्योतिष आदिके कई ग्रन्थ रच चुके थे।

गुणभट्टके मर जानेसे नागार्जुन अतिशय दरिद्री हो गया। पूज्यपादने उसे पद्मावतीका एक मंत्र दिया और सिद्ध करनेकी विधि बतला दी। पद्मावतीने नागार्जुनके निकट प्रकट होकर उसे सिद्धरसकी वनस्पति बतला दी।

इस सिद्धरससे नागार्जुन सोना बनाने लगा। उसके गर्वका परिहार करनेके लिए पूज्यपादने एक मामूली वनस्पतिसे कई बडे सिद्धरस बना दिया। नागार्जुन जब पर्वतोंको सुवर्णमय बनाने लगा, तब धरणेन्द्र-पद्मावतीने उसे रोका और जिनालय बनानेको कहा। तदनुसार उसने एक जिनालय बनवाया और पार्श्वनाथकी प्रतिमा स्थापित की।

पूज्यपाद पैरोंमें गगनगामी लेप लगाकर विदेहक्षेत्रको जाया करते थे। उस समय उनके शिष्य वज्रनन्दिने अपने साथियोंसे झगडा करके द्राविड संघकी स्थापना की।

नागार्जुन अनेक मंत्र तंत्र तथा रसादि सिद्ध करके बहुत ही प्रसिद्ध हो गया। एकबार दो सुन्दरी स्त्रियां आईं जो गाने नाचनेमें कुशल थीं। नागार्जुन उनपर मोहित हो गया। वे वहीं रहने लगीं और एक दिन अवसर पाकर उसे मारकर और उसकी रसगुटिका लेकर चलती बनी।

पूज्यपाद मुनि बहुत समयतक योगाभ्यास करते रहे। फिर एक देवके विमानमें बैठकर उन्होंने अनेक तीर्थोंकी यात्रा की। मार्गमें एक जगह उनकी दृष्टि नष्ट हो गई थी, सो उन्होंने एक शान्त्यष्टक बनाकर ज्योंकी त्यों कर ली। इसके बाद उन्होंने अपने ग्राममें आकर समाधिपूर्वक मरण किया। ”

इस लेखके लिखनेमें हमें श्रद्धेय मुनि जिनविजयजी और पं० बेहचरदास जीवराजजीसे बहुत अधिक सहायता मिली है। इस लिए हम उक्त दोनों सज्जनोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। मुनिमहोदयकी कृपासे हमको जो इस लेख सम्बन्धी सामग्री प्राप्त हुई है, वह यदि न मिलती तो यह लेख शायद ही इस रूपमें पाठकोंके सम्मुख उपस्थित हो सकता।

पूना—भाद्रकृष्ण ६ सं० १९७७ विक्रमीय

परिशिष्ट।

[भगवद्वाग्वादिनीका विशेष परिचय]

इसके प्रारंभमें पहले ‘ लक्ष्मीरात्यन्तिकी यस्य ’ आदि प्रसिद्ध मंगलाचरणका श्लोक लिखा गया था। परन्तु पीछेसे उसपर हरताल फेर दी गई है और उसकी जगह यह श्लोक और उत्थानिका लिख दी गई है—

ओं नमः पार्श्वाय।

त्वरितमहिमदूतामंत्रितेनाद्भुतात्मा,
विषममपि मघोना पृच्छता शब्दशास्त्रम्।
श्रुतमदरिपुरासीद् वादिवृन्दाग्रणीनां
परमपदपटुर्यः स श्रिये वीरदेवः॥

अष्टवार्षिकोऽपि तथाविधभक्ताभ्यर्थनाप्रगुणः स भगवानिदं प्राह-सिद्धिरनेकान्तात्। १-१-१।

इसके बाद सूत्रपाठ शुरू हो गया है। पहले पत्रके ऊपर मार्जिनमें एक टिप्पणी इस प्रकार दी है जिसमें पाणिनि आदि व्याकरणोंको अप्रामाणिक ठहराया है।

“ प्रमाणपदव्यामुपेक्षणीयानि पाणिन्यादिप्रणीतसूत्राणि स्यात्कारवादित्रदूरत्वात्शिरब्राजकादिभाषितवत्। अप्रमाणानि च कपोलकल्पनामलिनानि हीनमानृकत्वात्तद्वदेव। ”

इसके बाद प्रत्येक पादके अन्तमें और आदिमें इस प्रकार लिखा है जिससे इस सूत्रपाठके भगवत्प्रणीत होनेमें कोई सन्देह बाकी न रह जाय–

“ इति भगवद्वाग्वादिन्यां प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः। ओंनमः पार्श्वाय। स भगवानिदं प्राह। ”

सर्वत्र ‘ नमः पार्श्वाय ’ लिखना भी हेतुपूर्वक है। जब ग्रन्थकर्ता स्वयं महावीर भगवान् हैं तब उनके ग्रन्थमें उनसे पहलेके तीर्थंकर पार्श्वनाथको ही नमस्कार किया जा सकता है। देखिए, कितनी दूरतकका विचार किया गया है।

आगे अध्याय २ पाद २ के ‘ सह्वह्चह्यपतेरिः ’ (६४) सूत्रपर निम्न प्रकार टिप्पणी दी है और इससे

सिद्ध किया है कि यदि यह व्याकरण भगवत्कृत न हो तो फिर सिद्धहैमके अमुक सूत्रकी उपपत्ति नहीं बैठ सकती !—

" इदं शब्दानुशासनं भगवत्कर्तृकमेव भवति । 'वहृवह्नल्यापतेरिर्धाभक्तजननमे: किलिट् चवत्—डौ मासहिवानीहचाचोलपापति, मलिनकिद्विजहितनमीति सिद्धहैमसूत्रस्याऽन्यथानुपपत्तेः । सर्ववर्मपाणिन्योस्तु 'आद्वर्णोपधारोपिनां विंदूंच १, आद्गमहनजन: किकिनौ लिट् चेति २ ।"

इसके बाद २-२-२२ सूत्रपर इस प्रकार टिप्पणी दी है-

"कथं न ब्रच: प्राग्भगतेष्वादि । क्षेत्रादिनियापि शिक्षाविशेषा: ।
कुमारशब्द: प्राच्यानामादित्वं मासमूचिवान् ।
मैथुनं तु मिगन्तंत्रे वाचकं मधुसर्पिप: ॥
इत्याद्यन्यथानुपपत्तेरिति वौटिकतिमिरोपलक्षणम् ।

इसके बाद ३-४-४२ सूत्र (स्तेयार्हत्यं) पर फिर एक टिप्पणी है । देखिए—

" इदं शब्दानुशासनं भगवत्कर्तृकमेव भवति । अर्हतःस्तोन्त च १. न्हाय ह्रा २, साखेशणिगूद्ताद्यः ३, स्तेनान्नलुकू चे ४, ति सिद्धहैमसूत्रान्यथानुपपत्तेः । पाणिन्यादौ त्वार्हत्यशब्दं प्रति सूत्राभावात् । कथं सरस्वतीकंठाभरणे तदासि: ? ऐन्द्रानुसारादर्हतशब्दतश्चेति पश्य ।"

फिर ३-४-४० सूत्र (राज्ञः प्रभाचन्द्रस्य) पर एक टिप्पणी है । इसमें बौटिकों या दिगम्बरियोंका सत्कार किया गया है—

"इदं शब्दानुशासनं भगवत्कर्तृकमेव भवति । राज्ञः प्रभाचन्द्रस्य सूत्रस्य प्रक्षेपता स्फुटत्वात् । अतो वौटिकतिमिरोपलक्षणे—

देवनन्दिमतां मोहः प्रक्षेपरजसोरि चेत् ।
चिराय भवता राज्ञः प्रभाचन्द्रस्य जीव्यतां ॥
पंचोत्तरः कः स्ववानार्या: प्रमेदो नम्र वस्य यः(?) ।
विस्मयो स्नयैः शिष्या स तं चेद्देवनन्दिनामित ॥

विक्रमात्तुखयुगाब्दे ४०६ देवनन्दी, ततो गुणनंदि-कुमानंदि-लोकचंद्रानंतरं मुनिरैयुगाब्दे प्रथमः प्रभाचंद्र इति वौटिके ।"

इसी तरह ४-३७ (वेत्तेः सिद्धसेनस्य) सूत्र पर लिखा है—

"वेत्तेः सिद्धसेनस्य, चतुष्टयं समंतभद्रस्य प्रक्षेपोऽवाच्यता स्फुटत्वात्, राज्ञः प्रभाचन्द्रस्य वदिति वौटिकतिमिरोपलक्षणे ।"

अन्तमें ५-४-६५ (शश्छोमि) सूत्रपर एक टिप्पणी दी है जिसमें पाणिनि आदि वैयाकरणोंकी असर्वज्ञता सिद्ध की गई है–

" प्रयोगाशातना मामूदनादिसिद्धा हि प्रयोगा: । ज्ञानिना तु केवलं ते प्रकाश्यंते न तु क्रियंत इति । अतएव शश्छोटीति पाणिनीयसूत्रं वर्गप्रथमेभ्यः शकारः स्वरयवरपरः शकारं छकारं नवेति सर्ववर्मकर्तृककालापकसूत्रानुसारि । अतएव पाणिन्यादयोऽसर्वज्ञा इति सिद्धं । अतएव तेषां तत्त्वत आप्तत्वाभाव इति सिद्धिः । नव्यः प्रभृतिनिमूले निर्जरसैर्मुग्या यदि चुक्तिस्ते मत्कारणैव भवत्कृतमास्ते न तु सारस्वतवाग्देव्या । शश्छोटिप्रमुखैः सूत्रैस्तच्छ्रुप्रभृति वादर्शी कालापाद्युपजीवी पाणिनिरजिनत्वं प्रति नाभ्यक्तः ।"

जहां सूत्रपाठ समाप्त होता है, वहां लिखा है:–

इत्याद्यक्षगवानर्हन्मुत्वेन्द्रस्तु मुदं वहन् ।
वादिचक्राब्जचन्द्रः स्वमंदिराभिमुखोऽभवत् ॥

आगे ग्रन्थ प्रशस्ति देखिए–

" ओं नमः सकलकलाकौशलपेशलशीलशालिने पार्श्वाय पार्श्वपार्श्वाय । स्वस्ति तत्प्रवचनसुधासमुद्रलहरीस्नायिभ्यो महामुनिभ्यः । परिसमाप्तं च जैनेन्द्रं नाम महाव्याकरणं । तदिदं यत्स्वयं श्रीवीरप्रभुर्मघोने पृच्छते प्रकाशयांचकार । सपादलक्षव्याख्यानकपरमतमदांधकारापहारपरमानिति । नमः श्रीमच्चरम परमेश्वर पादप्रसादविशदस्याद्वादनयसमुपासनगुणकोटिमत्कौटिकगणाविर्भूतचिद्भूतिविमलमद्रचान्द्रकुलविपुलवृहत्तपोनिगमनिर्गतनागपुरीयस्वच्छगच्छसमुत्थमुत्यविपार्श्वचंद्रशाखामुखाकृतसुकृतिवरामदूपाध्यायचारुचरणारविंदरजोराजीमधुकरानुकरवाचकपदवीपवित्रिताक्षयचंद्रचरणेभ्यः सत्सुधी रत्नचंद्रम् । श्रीवीरात् २२६७ विक्रमनृपात्तु सं. १७९७ फाल्गुनसितत्रयोदशीभौमे तत्काव्यपरस्थेन रत्नर्षिगा दर्शनपाविन्याय लिखितं चिरं नंद्यात् ।"

ग्रन्थके पहले पत्रकी खाली पीठपर भी कुछ टिप्पणियां हैं और उनमें अधिकांश वे ही हैं जो ऊपर दी जा चुकी हैं । शेष इस प्रकार हैं:–

१ यह 'वौटिकमततिमिरोपलक्षण' नामका कोई ग्रन्थ है और संभवतः इसी वाग्वादिनीके कर्ताका बनाया हुआ होगा । इसका पता लगानेकी बड़ी जरूरत है । इससे दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायसम्बन्धी अनेक बातों पर प्रकाश पड़ेगा ।

ओं नमः पार्श्वाय।
जैनेन्द्रमन्द्रतः सिद्धहैमतो जयहैमवत्।
प्रकृत्यंतं दूरत्वान्नान्यतामेतुमर्हति।

कथं

इंद्रश्चंद्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेंद्रा जयंत्यष्टौ हि शाब्दिकाः॥

इति ? चतुर्थी तद्धितानुपलक्षणात्।
यदिंद्राय जिनेंद्रेण कौमारेपि निरूपितं।
ऐंद्रं जैनेंद्रमिति तत्प्राहुः शब्दानुशासनं।

यदावश्यकनिर्युक्तिः–
अह तं अम्मापिअरो जाणित्ता अहियअट्ठवासं तु।
कयकोउअलंकारं लेहायरिअस्स उवणिंति॥
सक्को अ तस्समक्खं भयवंतं आसणे निवेसित्ता।
सद्दस्सलक्खणं पुच्छे वागरणं अवयवा इंदं॥ इति॥
तदवयवाः केचन उपाध्यायेन गृहीताः। ततश्चैन्द्रं
व्याकरणं संजातमिति हरिभद्रः।

यत्तु देवनंदिबोटिकं पूज्यपाद इतीच्छंतस्तद्गुरुकाः
पूज्यपादस्य लक्षण।

द्विसंधानकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम्।

इति धनंजयके पात्तद्युक्तं। नेति चेत्कथं जैनेंद्रमिति। द्वादशस्वरमध्यामिति चेन्न। इतरोपपदस्याभावात्। जैनकुमारसम्भववद्गतिरिति चेन्न। कुमारवदिंद्रं प्रति अपाभावात् थारीति कृततद्धितभावाच्च। तर्हि

लक्ष्मीरात्यंतिकी यस्य निरवद्यावभासने।
देवनंदितपूजेशो नमस्तस्मै स्वयंभुवे।

का गतिरिति चेत्।
लक्ष्मीरात्यंतिकीपद्यमुपश्लेशस्य किंतरां।
ऐंद्रत्वयकि तत्त्वार्थे मोक्षमार्गस्य पद्यवत्॥[१]
मिश्रादयश्चेत्प्रथमं यदि हैमेत्वपेक्ष्यते।
कालापकादि न तथा पट्त्वैन्द्रं महते क्षतिः॥

पूर्वत्र। मिपू वस् मस् १ सिप् थस् थ २ तिप तस् झि ३ इट् वहि महि १ थस् आथां ध्वं २ त आताम् झड् ३ इति।

आख्यातरीतिं प्रति देवराजे
मिव्वस्मसो यः पितः रादितोदाः।
जीवं प्रपन्नाहममात्थ विश्वे
तत्त्वादिमं स्वां मतिमात्मनार्थं॥[२]

तर्हि सिद्धसेनादिविशेषापि दुर्निवार इति चेन्न।
जातामात्रेपि चिद्धार्थे प्रत्यात्मशरणां सि यः।
जनता का वराकीयं परात्मन् वीर तत्पुर॥

इति बोटिकमततिमिरोपलक्षणस्य तुर्येऽवकाशे। इंद्राजैनेंद्रौ प्रत्युत्तरिणौ यदतो डे- टातद्धिततत्त्वमासिमिविड्ढोरेयम-ऐंद्रं जैनेंद्रं व्याकरणानां। सिद्धिमनेकांतादिच्छौं अः×क×पाहें त्वतथारीते हेमाणीकृतवर्मन्प्रक्षेपार्यविजेयचिरंजीया इति प्रसन्न चंद्रोत्पले (?)।

---

१ इसके आगे ४-३-७ सूत्रकी टिप्पणी जैसा ही लिखा है और फिर ३-४-४० सूत्रकी टिप्पणीके 'देवनन्दिमतो' आदि दो श्लोक दिये हैं।

२ इसके आगे ५-४-६५ सूत्रकी टिप्पणी दी है॥

गंधहस्तिमहाभाष्यकी खोज

और

आप्तमीमांसा (देवागम) की स्वतंत्रता ।

[लेखक — श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी, मुख्तार ।]

कहा जाता है कि भगवान् श्रीसमन्तभद्राचार्यने तत्त्वार्थसूत्र पर 'गंधहस्ति महाभाष्य' नामके एक महान् ग्रंथकी रचना की थी, जिसकी श्लोक-संख्याका परिमाण ८४ हजार है। यह ग्रंथ भारतके किसी भी प्रसिद्ध भंडारमें नहीं पाया जाता। विद्वानोंकी इच्छा इस ग्रंथराजको देखनेके लिये बड़ी ही प्रबल है। बम्बईके सुप्रसिद्ध सेठ श्रीमान् माणिकचंद हीराचंदजी जे० पी० ने इस ग्रंथरत्नका दर्शन मात्र करानेवालेके वास्ते ५०० रुपयेका नकद पारितोषिक भी निकाला था। परंतु खेद है कि कोई भी उनकी इस इच्छाको पूरा नहीं कर सका और वे अपनी इस महती इच्छाको हृदयमें रक्खे हुए ही इस संसारसे कूच कर गये। निःसन्देह जैनाचार्योंमें स्वामी समन्तभद्रका आसन बहुत ही ऊँचा है। वे एक बडे ही अपूर्व और अद्वितीय प्रतिभाशाली आचार्य हो गये हैं। उनका शासन महावीर भगवानके शासनके तुल्य समझा जाता है और उनकी आप्तमीमांसादिक कृतियोंको देखकर बडे बडे वादी विद्वान् चकित होते हैं। ऐसी हालतमें आचार्य महाराजकी इस महती कृतिके लिये जिसका मंगलाचरण ही आप्तमीमांसा (देवागम) कहा जाता है, यदि विद्वान् लोग उत्कंठित और लालायित हों तो इसमें कुछ भी, आश्चर्य और अस्वाभाविकता नहीं है। और यही कारण है कि अभी तक इस ग्रंथरत्नकी खोजका प्रयत्न जारी है और अब विदेशोंमें भी उसकी तलाश की जा रही है। हालमें कुछ समाचारपत्रों द्वारा यह प्रकट हुआ था कि पूना लायब्रेरीकी किसी सूची परसे आस्ट्रिया देशके एक नगरकी लायब्रेरीमें उक्त ग्रंथके अस्तित्वका पता चलता है। साथ ही, उसकी कापी करनेके लिये दो एक विद्वानोंको वहाँ भेजने और खर्चके लिये कुछ चंदा एकत्र करनेका प्रस्ताव भी उपस्थित किया गया था। हम नहीं कह सकते कि ग्रंथके अस्तित्वका यह समाचार कहाँ तक सत्य है और इस बातका यथोचित निर्णय करनेके लिये अभी तक क्या क्या प्रयत्न किया गया है। परंतु इतना जरूर कहेंगे कि बहुतसे भंडारोंकी सूचियाँ अनेक स्थानों पर भ्रमपूर्ण पाई जाती हैं। पूना लायब्रेरीकी ही सूचीमें सिद्धसेन दिवाकरके नामसे 'वादिगजगंधहस्तिन्' नामके एक महान् ग्रंथका उल्लेख मिलता है जो यथार्थ नहीं है। वहाँ इस नामका कोई ग्रंथ नहीं। यह नाम किसी दूसरे ही ग्रंथके स्थान पर गलतीसे दर्ज हो गया है। ऐसी हालतमें केवल सूचीके आधार पर आस्ट्रिया जैसे सुदूरदेशकी यात्राके लिये कुछ विद्वानोंका निकलना और भारी खर्च उठाना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। बेहत्तर तरीका, इसके लिये, यह हो सकता है कि वहाँके किसी प्रसिद्ध फोटोग्राफरके द्वारा उक्त ग्रंथके आद्यंतके १०-२० पत्रोंका फोटो पहले मँगाया जाय और उन परसे यदि यह निर्णय हो जाय कि वास्तवमें यह ग्रंथ वही महाभाष्य ग्रंथ है तो फिर उसके शेष पत्रोंका भी फोटो आदि मँगा लिया जाय। अस्तु। ग्रंथके वहाँ अस्तित्व विषयमें अभी तक हमारा कोई विश्वास नहीं है।

आस्ट्रियाके एक प्रसिद्ध नगरकी प्रसिद्ध लायब्रेरीमें उक्त ग्रंथ मौजूद हो और हर्मन जैकोबी जैसे खोजी विद्वानोंको उसका पता तक न लगे, यह बात कुछ समझमें नहीं आती। हमें इस ग्रंथके विषयमें यह बात भी बहुत खटकती है कि 'आप्तमीमांसा' अर्थात् 'देवागम' शास्त्रको, जो कुल ११४ श्लोकपरिमाण है, इसका मंगलाचरण बतलाया जाता है। देवागम भारतके प्रायः सभी प्रसिद्ध भंडारोंमें पाया जाता है। उस पर अनेक टीका, टिप्पण और भाष्य भी उपलब्ध हैं। अकलंकदेवकी 'अष्टशती' और विद्यानंद स्वामीकी 'अष्टसहस्री' उसीके भाष्य और महाभाष्य हैं। जिस ग्रंथका मंगलाचरण ही इतने महत्त्वको लिये हुए हो वह शेष सम्पूर्ण ग्रंथ कितना महत्त्वशाली होगा और विद्वानोंने उसका कितना अधिक संग्रह किया होगा, इसके बतलानेकी जरूरत नहीं है। विज्ञ पाठक सहजहीमें इसका अनुमान कर सकते हैं। परंतु तो भी ऐसे महान ग्रंथका भारतके किसी भंडारमें अस्तित्व न होना, उसके शेष अंशोंपर टीका-टिप्पणका मिलना तो दूर रहा उनके नामोंकी कहीं चर्चा तक न होना, यह सब कुछ कम आश्चर्यमें डालनेवाली बातें नहीं हैं। और इनपरसे तरह तरहके विकल्प उत्पन्न होते हैं। यह खयाल पैदा होता है कि क्या समन्तभद्रने 'गंधहस्तिमहाभाष्य' नामका कोई ग्रंथ बनाया ही नहीं और उनकी आप्तमीमांसा (देवागम) एक स्वतंत्र ग्रंथ है? यदि बनाया तो क्या वह पूरा न हो सका और आप्तमीमांसा तक ही बनकर रह गया? यदि पूरा हो गया था तो क्या फिर बन कर समाप्त होते ही किसी कारण विशेषसे वह नष्ट हो गया? यदि नष्ट नहीं हुआ तो क्या फिर प्रचलित सिद्धांतोंके विरुद्ध उसमें कुछ ऐसी बातें थी जिनके कारण बादके आचार्यों खासकर भट्टारकोंको उसे लुप्त करनेकी जरूरत पड़ी अथवा बादको उसके नष्ट हो जानेका कोई दूसरा ही कारण है? इन सब विकल्पोंको छोडकर अभी तक हमें यह भी मालूम नहीं हुआ कि, १ समन्तभद्रने 'गंधहस्तिमहाभाष्य' नामका कोई ग्रंथ बनाया है, २ वह उमास्वातिके तत्त्वार्थ सूत्रका भाष्य है, ३ उसकी श्लोकसंख्या ८४ हजार है और 'देवागम' स्तोत्र उसका आदिम मंगलाचरण है; इन सब बातोंकी उपलब्धि कहाँसे होती है-कौनसे प्राचीन आचार्यके किस ग्रंथसे इन सब बातोंका पता चलता है? यह दूसरी बात है कि आजकलके अच्छे अच्छे विद्वान्—न सिर्फ जैन विद्वान बल्कि सतीशचंद्र विद्याभूषण, भारती जैसे अजैन विद्वान भी—अपने अपने ग्रंथों तथा लेखोंमें इन सब बातोंका उल्लेख करते हुए देखे जाते हैं। परंतु ये सब उल्लेख एक दूसरेकी देखादेखी हैं परीक्षासे उनका कोई सम्बन्ध नहीं और न वे जाँच तोल कर लिखे गये हैं। इसी प्रकारके कुछ उल्लेख पिछले भाषापंडितोंके भी पाये जाते हैं। इन सब आधुनिक उल्लेखोंसे इस विषयका कोई ठीक निर्णय नहीं हो सकता। और न हम उन्हें ऐसी हालतमें बिना किसी हेतुके प्रमाणकोटिमें रख सकते हैं। हमारी रायमें इन सब बातोंके निर्णयार्थ-विकल्पोंके समाधानार्थ अंतरंग खोजकी बहुत बड़ी जरूरत है। हमें सबसे पहले-विदेशोंमें जानेसे भी पहले-अपने घरके साहित्यको गहरा टटोलना होगा; तब कहीं हम यथार्थ निर्णय पर पहुँच सकेंगे। अस्तु।

इस विषयमें हमने आजतक जो कुछ खोज की है और उसके द्वारा हमें जो कुछ मालूम हो सका है उसे हम अपने पाठकोंके विचारार्थ और यथार्थ निर्णयकी सहायतार्थ नीचे प्रकट करते हैं:—

१—उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रपर सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक और श्रुतसागरी नामकी जो टीकाएँ उपलब्ध हैं उनमें, जहाँ तक हमारे देखनेमें आया कहीं भी 'गंधहस्ति महाभाष्य' का नामोल्लेख नहीं है और न इसी बातका कोई उल्लेख पाया जाता है कि समन्तभद्रने उक्त तत्त्वार्थसूत्रपर भाष्य लिखा है। समन्तभद्रका अस्तित्वकाल इन सब टीकाओंके बननेसे पहले माना जाता है। यदि इन टीकाओंके रचयिता पूज्यपाद, अकलंक देव, विद्यानन्द और श्रुतसागरके समयोंमें समन्तभद्रका उसी सूत्रपर ऐसा कोई महत्त्वशाली भाष्य विद्यमान होता तो उक्त टीकाकार किसी न किसी रूपमें इस बातको सूचित जरूर करते, ऐसा हृदय कहता है। परंतु उनके टीकाग्रन्थोंसे ऐसी कोई सूचना नहीं

पाई जाती। प्रत्युत, श्रुतसागरसूरिने अपने अध्ययन विषयक अथवा टीकाके आधार-विषयक जिन प्रधान ग्रन्थोंका उल्लेख अपनी टीकाकी संधियोंमें किया है उनमें साफ तौरसे श्लोकवार्तिक और सर्वार्थसिद्धिका ही नाम पाया जाता है, गन्धहस्तिमहाभाष्यका नहीं। यदि ऐसा महान् ग्रन्थ उन्हें उपलब्ध होता तो कोई वजह नहीं थी कि वे उसका भी साथमें नामोल्लेख न करते।

२—आप्तमीमांसा (देवागम) पर, जिसे गन्धहस्तिमहाभाष्यका मंगलाचरण कहा जाता है, इस समय तीन संस्कृत टीकाएँ उपलब्ध हैं। एक 'वसुनन्दिवृत्ति,' दूसरी 'अष्टशती' और तीसरी 'अष्टसहस्री' इनमेंसे किसी भी टीकामें गन्धहस्ति महाभाष्यका कोई नाम नहीं है, और न यही कहीं सूचित किया है कि यह आप्तमीमांसा ग्रन्थ गन्धहस्ति महाभाभाष्यका मंगलाचरण अथवा उसका प्राथमिक अंश है। किसी दूसरे ग्रन्थका एक अंश होनेकी हालतमें ऐसी सूचनाका किया जाना बहुत कुछ स्वाभाविक था।

३—श्रीइन्द्रनन्दि आचार्यके बनाये हुए 'श्रुतावतार' ग्रन्थमें भी समन्तभद्रके साथ, जहाँ कर्मप्राभृतपर उनकी ४८ हजार श्लोकपरिमाण एक सुन्दर संस्कृत टीकाका उल्लेख किया गया है वहाँ गन्धहस्ति महाभाष्यका कोई नाम नहीं है। बल्कि इतना प्रकट किया गया है कि वे दूसरे सिद्धान्त ग्रन्थ (कषाय प्राभृत) पर टीका लिखना चाहते थे परंतु उनके एक सधर्मी साधुने द्रव्यादिशुद्धिकर प्रयत्नोंके अभावसे उन्हें वैसा करनेसे रोक दिया। बहुत संभव है कि इसके बाद उनके द्वारा कोई बड़ा ग्रन्थ न लिखा गया हो।

४—श्रवणबेल्गुलके जितने शिलालेखोंमें समन्तभद्रका नाम आया है उनमेंसे किसीमें भी आचार्य महोदयके नामके साथ 'गन्धहस्ति महाभाष्य' का उल्लेख नहीं है। और न यही लिखा मिलता है कि उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र पर कोई टीका लिखी है। हाँ, उनके शिष्य शिवकोटि आचार्यके सम्बन्धमें इतना कथन जरूर पाया जाता है कि उन्होंने तत्त्वार्थसूत्रको अलंकृत किया, अर्थात् उसपर टीका लिखी (देखो शिला लेख नं० १०५)

५—ब्रह्मनेमिदत्तने आराधना कथाकोशमें समन्तभद्रकी एक कथा दी है परंतु उसमें उनके किसी भी गन्धहस्तिमहाभाष्यके नामकी कोई उपलब्धि नहीं होती।

६—संस्कृत प्राकृतके और भी बहुतसे उपलब्ध ग्रन्थ जो देखनेमें आये और जिनमें किसी न किसी रूपसे समन्तभद्रका स्मरण किया गया है उनमें भी हमें स्पष्टरूपसे कहीं गन्धहस्ति महाभाष्यका नाम नहीं मिला। और दूसरे अनेक विद्वानोंसे जो इस विषयमें दर्याफ्त किया गया तो यही उत्तर मिला कि गन्धहस्ति महाभाष्यका नाम किसी प्राचीन ग्रन्थमें हमारे देखनेमें नहीं आया, अथवा हमें कुछ याद नहीं है।

७—ग्रन्थके नाममें 'महाभाष्य' शब्दसे यह सूचित होता है कि इस ग्रन्थसे पहले भी तत्त्वार्थसूत्रपर कोई भाष्य विद्यमान था जिसकी अपेक्षा इसे 'महाभाष्य' संज्ञा दी गई है। परंतु दिगम्बर साहित्यसे इस बातका कहीं कोई पता नहीं चलता कि समन्तभद्रसे पहले भी तत्त्वार्थसूत्र पर कोई भाष्य विद्यमान था। रही श्वेताम्बर साहित्यकी बात, सो श्वेताम्बर भाई इस बातको मानते ही हैं कि उनका मौजूदा 'तत्त्वार्थाधिगम भाष्य' स्वयं उमास्वातिका बनाया हुआ है। परंतु उनकी इस मान्यताको स्वीकार करनेके लिये अभी हम तैय्यार नहीं हैं। उनका यह ग्रन्थ अभी विवादग्रस्त है। उसके विषयमें हमें बहुत कुछ कहने सुननेकी जरूरत है। इस पर यदि यह कहा जाय कि बादको बने हुए भाष्योंकी अपेक्षा बहुत बडा होनेके कारण उसे पीछेसे महाभाष्य संज्ञा दी गई है तो यह मानना पड़ेगा कि उसका असली नाम 'गन्धहस्ति भाष्य' अथवा 'गन्धहस्ति' ऐसा कुछ था।

८—ऊपर जिन ग्रन्थादिकोंका उल्लेख किया गया है उनमें कहीं यह भी जिकर नहीं है कि समन्तभद्रने ८४ हजार श्लोकपरिमाणका कोई ग्रन्थ रचा है और इस लिये गन्धहस्ति महाभाष्यका जो परिमाण ८४ हजार कहा जाता है उसकी इस संख्याकी भी किसी प्राचीन साहित्यसे उपलब्धि नहीं होती।

९—जब उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रपर ८४ हजार

श्लोकपरिमाण एक महत्त्वशाली भाष्य पहलेसे मौजूद था तब यह बात समझमें नहीं आती कि सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकके बननेकी जरूरत ही क्यों पैदा हुई। यदि यह कहा जाय कि ये ग्रन्थ गन्धहस्ति महाभाष्यका सार लेकर संक्षेपरुचिवाले शिष्योंके वास्ते बनाये गये हैं तो यह बात भी कुछ बनती हुई मालूम नहीं होती; क्यों कि ऐसी हालतमें श्रीपूज्यपाद, अकलंकदेव और विद्यानन्द स्वामी अपने अपने ग्रन्थोंमें इस प्रकारका कोई उल्लेख जरूर करते जैसा कि आम तौर पर दूसरे आचार्योंने किया है, जिन्होंने अपने ग्रन्थोंको दूसरे ग्रन्थोंके आधारपर अथवा उनका सार लेकर बनाया है। परंतु चूँ कि इनमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं है, इस लिये ये सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थ गन्धहस्तिमहाभाष्यके आधारपर अथवा उसका सार लेकर बनाये गये हैं ऐसा माननेको जी नहीं चाहता। इसके सिवाय अकलंकदेव और विद्यानन्दके भाष्य वार्तिकके ढंगसे लिखे गये हैं। वे 'वार्तिक' कहलाते भी हैं। और वार्तिकोंमें उक्त, अनुक्त, दुरुक्त, तीनों प्रकारके अर्थोंकी विचारणा और अभिव्यक्ति हुआ करती है, जिससे उनका परिमाण पहले भाष्योंसे प्रायः कुछ बढ जाता है। जैसे कि सर्वार्थसिद्धिसे राजवार्तिकका और राजवार्तिकसे श्लोकवार्तिकका परिमाण बढा हुआ है। ऐसी हालतमें यदि समन्तभद्रका ८४ हजार श्लोक संख्यावाला भाष्य पहलेसे मौजूद था तो अकलंकदेव और विद्यानन्दके वार्तिकोंका परिमाण उससे जरूर कुछ बढ जाना चाहिये था। परन्तु बढना तो दूर रहा, वह उलटा उससे कई गुणा घट रहा है। दोनों वार्तिकोंकी श्लोकसंख्याका परिमाण क्रमशः १६ और २० हजारसे अधिक नहीं। ऐसी हालतमें कमसेकम अकलंक देव और विद्यानन्दके समयमें गन्धहस्ति महाभाष्यका अस्तित्व स्वीकार करनेके लिये तो और भी हृदय तय्यार नहीं होता।

१०— जिस आप्तमीमांसा (देवागम स्तोत्र) को गन्धहस्ति महाभाष्यका मंगलाचरण बतलाया जाता है उसकी अन्तिम कारिका इस प्रकार है-

> इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छताम्।
> सम्यग्मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये ॥

यह कारिका जिस ढंग और जिस शैलीसे लिखी गई है, और इसमें जो कुछ कथन किया गया है उससे आप्तमीमांसाके एक बिलकुल स्वतन्त्र ग्रन्थ होनेकी बहुत ज्यादह सम्भावना पाई जाती है। इस कारिकाको देते हुए वसुनन्दी आचार्य अपनी टीकामें इसे 'शास्त्रार्थोपसंहारकारिका' लिखते हैं, साथ ही इस कारिकाकी टीकाके अन्तमें ग्रंथकर्ता भी समंतभद्रका नाम 'कृतकृत्यः निर्व्यूढतत्त्वप्रतिज्ञः' इत्यादि विशेषणोंके साथ देते हैं, जिससे मालूम होता है कि इस कारिकाके साथ ग्रंथकी समाप्ति हो गई, ग्रंथके अन्तर्गत किसी खास विषयकी नहीं। विद्यानंदस्वामी अष्टसहस्रीमें, इस कारिकाके द्वारा 'प्रारब्धनिर्वहण'-(प्रारंभ किये हुए कार्यकी परिसमाप्ति) आदिको सूचित करते हुए टीकामें लिखते हैं-

"इति देवागमाख्ये स्वोक्तपरिच्छेदे शास्त्रे...।
अत्र शास्त्रपरिसमाप्तौ"......

इन शब्दोंसे भी प्रायः यही ध्वनित होता है कि देवागमशास्त्र जो कि आप्तमीमांसाके शुरूमें 'देवागम' शब्द होनेसे उसीका दूसरा नाम है, एक स्वतंत्र ग्रंथ है और उसकी समाप्ति इस कारिकाके साथ ही हो जाती है। अतः वह किसी दूसरे ग्रंथका आदिम अंश अथवा मंगलाचरण मालूम नहीं होता।

११—अकलंकदेव अपनी अष्टशतीके आरंभमें लिखते हैं—

"येनाचार्यसमन्तभद्रयतिना तस्मै नमः संततम्।
कृत्वा विव्रियते स्तवो भगवता देवागमस्तत्कृतिः" ॥२॥

वसुनन्दी आचार्य अपनी देवागमवृत्तिके अन्तमें सूचित करते हैं "श्रीसमंतभद्राचार्यस्य...देवागमाख्यायाः कृतेः संक्षेपभूतं विवरणं कृतम्...।"

कर्नाटकदेशस्थ हुमचा जि० शिमोगाके एक शिलालेखमें निम्न आशयका उल्लेख * मिलता है:—

* देखो जैनहितैषी भाग ९, अंक ९, पृष्ठ ४४५।

" अकलंकने अष्टशतीके देवागम भाष्य लिखा। [illegible] ग्रंथको समझानेके लिये [illegible] लिखे हैं।"

इन सब अवतरणोंसे भी प्रायः यही पाया जाता है कि समन्तभद्रका 'देवागम' उनकी एक पृथक् कृति अथवा स्वतंत्र ग्रंथ है।

१२—श्रीशुभचंद्राचार्यविरचित पांडवपुराणका एक पद्य इस प्रकार है:

" समन्तभद्रो भद्रार्थो भातु भारतभूषणः।
देवागमेन येनात्र व्यक्तो देवागमः कृतः " ॥ १५ ॥

इस पद्यके द्वारा ग्रंथकर्ता महाशय, स्वामी समन्तभद्रका 'भारतभूषण' आदि विशेषणोंके साथ स्मरण करते हुए, प्रकट करते हैं कि उन्होंने अपने देवागम शास्त्रके द्वारा-(गंधहस्तिमहाभाष्य अथवा तत्त्वार्थसूत्रकी टीकाके द्वारा नहीं) जिनेंद्रदेवके आगम ('जिनागम') को संसारमें व्यक्त कर दिया है। इससे देवागमकी स्वतंत्रता और भी स्पष्ट शब्दोंमें उद्घोषित होती है और यह पाया जाता है कि संसारमें समन्तभद्रकी विशेष प्रसिद्धिका कारण भी उनका 'देवागम' ग्रंथ ही हुआ है। यदि यह देवागम कोई पृथक् ग्रंथ न होकर गंधहस्तिमहाभाष्यका ही एक अंश-उसका केवल मंगलाचरण-होता तो कोई वजह नहीं थी कि उस महान् ग्रंथका कहीं नामोल्लेख न करके उसके केवल एक छोटेसे अंशका ही उल्लेख किया जाता। उस संपूर्ण ग्रंथके द्वारा तो और भी अधिकताके साथ जिनागम व्यक्त हुआ होगा। फिर उसका नाम क्यों नहीं? और क्यों आम तौरपर देवागम अथवा आप्तमीमांसाका ही नामोल्लेख पाया जाता है? जरूर इसमें कुछ रहस्य है और वह कमसे कम देवागमकी स्वतंत्रताका समर्थक जान पड़ता है।

१३—श्रीविद्यानंदस्वामीने 'युक्त्यनुशासन' ग्रंथकी टीका लिखते हुए सबसे पहले उसकी उत्थानिकारूपसे यह वाक्य दिया है—

" श्रीमत्समन्तभद्रस्वामिभिराप्तमीमांसायामन्ययोगव्यवच्छेदाद्व्यवस्थापितेन भगवता श्रीमताऽर्हतान्त्यतीर्थंकरपरमदेवेन मां परीक्ष्य किं चिकीर्षवो भवन्त इति ते पृष्टा इव प्राहुः।"

इसके बाद मूल ग्रंथका प्रथम पद्य उद्धृत किया है जो इस प्रकार है:—

" कीर्त्या महत्या भुवि वर्द्धमानं
त्वां वर्द्धमानं स्तुतिगोचरत्वम्।
निनीषवः स्मो वयमद्य वीरं
विशीर्णदोषाशयपाशबन्धम् ॥ १ ॥
अथ [illegible] ।"

विद्यानंदाचार्यके इस संपूर्ण कथनसे मालूम होता है कि स्वामि समन्तभद्रने आप्तमीमांसा (देवागम) के अनन्तर ही-उक्त ग्रंथद्वारा अर्हन्तदेवकी परीक्षाके बाद ही-'युक्त्यनुशासन' ग्रंथकी रचना की है। यदि 'देवागम' को गंधहस्तिमहाभाष्यका एक अंग और उसका आदिम भाग माना जाय तो युक्त्यनुशासनको भी उक्त महाभाष्यका तदनन्तर अंग कहना होगा। परंतु ऐसा नहीं कहा जाता। युक्त्यनुशासन समन्तभद्रका, महावीर भगवानकी स्तुतिको लिये हुए हितान्वेषणका उपाय प्रतिपादक एक स्वतंत्र ग्रंथ माना जाता है। नीचेके कुछ पद्यों और उनकी कथनशैलीसे भी प्रायः ऐसा ही आशय ध्वनित होता है:—

" न रागान्नः स्तोत्रं भवति भवपाशच्छिदि मुनौ,
न चान्येषु द्वेषादपगुणकथाभ्यासखलता।
किमु न्यायान्यायप्रकृतगुणदोषज्ञमनसां,
हितान्वेषोपायस्तव गुणकथासंगगदितः " ॥ ६४ ॥

—युक्त्यनुशासन।

" श्रीमद्वीरजिनेश्वरामलगुणस्तोत्रं परीक्ष्येक्षणैः
साक्षात्स्वामिसमन्तभद्रगुरुभिस्तत्त्वं समीक्ष्याखिलम्।
प्रोक्तं युक्त्यनुशासनं विजयिभिः स्याद्वादमार्गानुगैः
विद्यानन्दबुधैरलंकृतमिदं श्रीसत्यवाक्याधिपैः ॥ "

—टी॰ विद्यानन्दस्वामी।

" जीवसिद्धिविधायीह कृतयुक्त्यनुशासनम्।
वचः समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृम्भते ॥ "

—हरिवंशे जिनसेनः।

ऐसी हालतमें 'देवागम' को भी युक्त्यनुशासनके सदृश गंधहस्तिमहाभाष्यका कोई अंग न मानकर एक स्वतंत्र ग्रंथ कहना चाहिये।

१४—श्रीधर्मभूषणयतिविरचित 'न्यायदीपिका' में, सर्वज्ञकी सिद्धि करते हुए, आप्तमी-

मांसाका एक पद्य निम्न प्रकारसे उद्धृत किया हुआ मिलता है:-

" तदुक्तं स्वामिभिर्महाभाष्यस्यादावाप्तमीमांसाप्रस्तावे सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः........ । "

इससे मालूम होता है कि स्वामी समन्तभद्र-प्रणीत ' महाभाष्य ' की आदिमें आप्तमीमांसा नामका एक प्रस्ताव है। और सिर्फ यही एक उल्लेख है जो अभी तक हमें इस विषयमें प्राप्त हो सका है और जिससे प्रचलित प्रवादको कुछ आश्वासन मिलता है। यद्यपि इस उल्लेखमें ' गंधहस्ति महाभाष्य ' ऐसा स्पष्ट नाम नहीं है, न इस ' महाभाष्य ' को उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रका भाष्य प्रकट किया है, न यह ही सूचित किया है कि उसकी ग्रंथसंख्या ८४ हजार श्लोक परिमाण है और इसलिये संभव है कि यह महाभाष्य समन्तभद्रका उपर्युल्लिखित, ४८ हजार श्लोक संख्याको लिये हुए, ' कर्मप्राभृत' सिद्धान्तवाला भाष्य हो अथवा कोई दूसरा ही भाष्य हो। और उसमें आचार्य महोदयने आवश्यकतानुसार, अपने आप्तमीमांसा ग्रंथको भी बतौर एक प्रस्तावके शामिल कर दिया हो, तो भी धर्मभूषणके इस उल्लेखसे प्रकृत गंधहस्ति महाभाष्यका आशय जरूर निकाला जा सकता है। परंतु जब हम इस उल्लेखको ऊपर दिये हुए संपूर्ण अनुसंधानोंकी रोशनीमें पढते हैं और साथ ही, इस बातको ध्यानमें रखते हैं कि धर्मभूषणजी विक्रमकी १५ वीं शताब्दीके विद्वान् हैं, तो ऐसा मालूम होता है कि यह उल्लेख उस वक्तके प्रचलित प्रवाद, लोकोक्ति अथवा दंतकथाओंके आधर पर ही किया गया है। वास्तविक तथ्यसे इसका प्रायः कोई सम्बन्ध नहीं। और न यह मानने अथवा कहनेका कोई कारण है कि धर्मभूषणजीने गंधहस्तिमहाभाष्यको स्वयं देखकर ही ऐसा उल्लेख किया है। यदि ऐसा होता तो खास गंधहस्तिमहाभाष्यका भी कोई महत्त्वपूर्ण उल्लेख राजवार्तिकादि ग्रंथोंके स्थानोंमें अथवा उनके साथ जरूर पाया जाता। परंतु ऐसा नहीं है, न्यायदीपिकामें दूसरी जगह भी आप्तमीमांसाका ही उल्लेख किया गया है। वहाँ ऊपरके सदृश महाभाष्यादि शब्दों का प्रयोग भी नहीं है, बल्कि बहुत सीधे सादे शब्दोंमें ' तदुक्तमाप्तमीमांसायां स्वामिसमंतभद्राचार्यैः ' ऐसा कहा गया है। धर्मभूषणजीके समयसे अवतक ऐसा कोई महान् विप्लव भी उपस्थित नहीं हुआ कि जिससे गंधहस्ति महाभाष्य जैसे ग्रंथका एकदम लोप होना मान लिया जाय। और यदि ऐसा मान भी लिया जाय तो उनसे पहले प्राचीन साहित्यमें उसके उल्लेख न होनेका कारण क्या है, इसका संतोषजनक उत्तर कुछ भी मालूम नहीं होता। और इस लिये हमारी रायमें धर्मभूषणजीका उपर्युक्त उल्लेख प्रचलित प्रवादपर ही अवलम्बित है। प्रचलित प्रवादपर अक्सर उल्लेख हुआ करते हैं और वे बहुतसे ग्रंथोंमें पाये जाते हैं। आजकल भी, जब कि गंधहस्तिमहाभाष्यका कहीं पता नहीं और यह भी निश्चय नहीं कि किसी समय उसका अस्तित्व था भी या कि नहीं, बहुतसे अच्छे अच्छे विद्वान् अपने लेखों तथा ग्रंथोंमें गंधहस्ति महाभाष्यका उल्लेख परिचित अथवा निश्चित ग्रंथके तौर पर करते हैं, उसे तत्त्वार्थसूत्रकी टीका बतलाते हैं और उसके श्लोकोंकी संख्याका परिमाण तक देते हैं। यह सब प्रचलित प्रवादका ही नतीजा है। कभी कभी इस प्रचलित प्रवादकी धुनमें अर्थका अनर्थ भी हो जाता है, जिसका एक उदाहरण हम अपने पाठकोंके सामने नीचे रखते हैं—

उक्त न्यायदीपिकामें एक स्थानपर ये वाक्य दिये हैं:—

तद्विपरीतलक्षणो हि संशयः। यद्राजवार्तिकम् " अनेकार्थानिश्चितापर्युदासात्मकः संशयः, तद्विपरीतोऽवग्रहः " इति। भाष्यं च " संशयो हि निर्णयविरोधी नत्वग्रहः ' इति।

पं० खूबचन्दजीने न्यायदीपिकापर लिखी हुई अपनी भाषाटीकामें, इन वाक्योंका अनुवाद देते हुए, ' भाष्य ' शब्दसे ' गन्धहस्तिमहाभाष्य ' का अर्थ सूचित किया है अर्थात् सर्वसाधारण पर यह प्रकट किया है कि संशयो हि निर्णयविरोधी नत्ववग्रहः ' यह वाक्य गन्धहस्तिमहाभाष्यका एक वाक्य है। टीकाके 'संशोधनकर्ता' पं० वंशीधरजी

शास्त्रीने भी उनकी इस बातको पास कर दिया है- अर्थात्, पुस्तकपर अपने द्वारा संशोधन किये जानेकी मुहर लगाकर इस बातकी रजिस्टरी कर दी है कि उक्त वाक्य गंधहस्तिमहाभाष्यका ही वाक्य है। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। यह वाक्य राजवार्तिक भाष्यका वाक्य है। राजवार्तिकमें 'अवग्रहेहावायधारणा' इस सूत्रपर जो १० वाँ वार्तिक दिया है उसीके भाष्यका यह एक वाक्य है *। इस वाक्यसे पहले जो वाक्य, 'यद्राजवार्तिकं' शब्दोंके साथ न्यायदीपिकाकी ऊपरकी पंक्तियोंमें उद्धृत पाया जाता है वह उक्त सूत्रका ९ वाँ वार्तिक है। दूसरे शब्दोंमें यों समझना चाहिये कि ग्रन्थकर्ताने पहले राजवार्तिक भाष्यका एक वार्तिक और फिर एक वार्तिकका भाष्यांश उद्धृत किया है, जिसको हमारे दोनों पंडित महाशयोंने नहीं समझा और न समझनेकी कोशिश की। उनके सामने मूल ग्रन्थमें 'गन्धहस्ति महाभाष्य' ऐसा कोई नाम नहीं था और यह हम बखूबी जानते है कि उन्होंने गन्धहस्ति महाभाष्यका कभी दर्शन तक नहीं किया, जो उस परसे जाँच करके ही ऐसे अर्थका किया जाना किसी प्रकारसे संभव समझ लिया जाता, तो भी उन्होंने 'भाष्य' का अर्थ 'गन्धहस्ति महाभाष्य' करके एक विद्वानके वाक्यको दूसरे विद्वानका बतला दिया। यह प्रचलित प्रवादकी धुन नहीं तो और क्या है? इसी तरह एक दूसरी जगह भी 'तद्भाष्यं' पदका अर्थ—"ऐसा ही गन्धहस्ति महाभाष्यमें भी कहा है-' किया गया है। इस उदाहरणसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि प्रचलित प्रवादकी धुनमें कितना अर्थका अनर्थ हो जाया करता है और उसके द्वारा उत्तरोत्तर संसारमें कितना भ्रम तथा मिथ्याभाव फैल जाना संभव है। शास्त्रोंमें प्रचलित प्रवादोंसे अभिभूत ऐसे ही कुछ महाशयोंकी कृपासे अथवा अनेक दन्तकथाओंके किसी न किसी रूपमें लिपिवद्ध हो जानेके कारण ही बहुतसे ऐतिहासिक तत्त्व आजकल चक्करमें पड़े हुए हैं। और इस लिये प्रायः उन सबकी जाँच अनेक मार्गों और अनेक पहलुओंसे होनी चाहिये। हरएक बातकी असलियतको खोज निकालनेके लिये गहरे अनुसंधानकी जरूरत है। तभी कुछ यथार्थ निर्णय हो सकता है।

१५—ऊपर श्रुतावतारके आधारपर यह प्रकट किया गया है कि समन्तभद्रने 'कर्मप्राभृत' सिद्धान्तपर ४८ हजार श्लोक परिमाण एक सुन्दर संस्कृत टीका लिखी थी। यह टीका 'चूडामणि' नामकी एक कनडी टीकाके वाद, प्रायः उसे देखकर लिखी गई है। चूडामणिकी श्लोकसंख्याका परिमाण ८४ हजार दिया है और वह उस कर्मप्राभृत तथा साथ ही, कषायप्राभृत नामके दोनों सिद्धान्तों पर लिखी गई थी। भट्टाकलंकदेवने, अपने कर्नाटक शब्दानुशासनमें इस चूडामणिटीकाको 'तत्त्वार्थ महाशास्त्रकी व्याख्या' (तत्त्वार्थमहाशास्त्रव्याख्यानस्य* ' चूडामण्यभिधानस्य महाशास्त्रस्य...उपलभ्यमानत्वात्'।) लिखा है, जिसका आशय यह होता है कि कर्मप्राभृतादि ग्रन्थ भी 'तत्त्वार्थशास्त्र' कहलाते हैं और इस लिये कर्मप्राभृतपर लिखी हुई समन्तभद्रकी उक्त टीका भी तत्त्वार्थमहाशास्त्रकी टीका कहलाती होगी। चूँकि उमास्वातिका तत्त्वार्थसूत्र भी 'तत्त्वार्थशास्त्र' अथवा 'तत्त्वार्थमहाशास्त्र' कहलाता है, इसलिये सम्भव है कि इस नामसाम्यकी वजहसे 'कर्मप्राभृत' के टीकाकार श्रीसमन्तभद्रस्वामी किसी समय उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रके टीकाकार समझ लिये गये हों और इसी गलतीके कारण पीछेसे अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ उत्पन्न होकर उनका वर्तमानरूप बनगया हो। यह भी सम्भव है, कि प्रबल और प्रखर तार्किक विद्वान होनेके कारण 'गन्धहस्ति' यह समन्तभद्रका उपनाम अथवा विरुद रहा हो और उसके कारण ही उनकी उक्त सिद्धांतटीकाका नाम गन्धहस्तिमहाभाष्य प्रसिद्ध

* देखो राजवार्तिक, सनातनग्रन्थमाला कलकत्तेका छपा हुआ।

* यहाँ ग्रन्थका परिमाण ९६ हजार श्लोक दिया है जिसकी बावत राइस साहबने, अपनी 'इंस्क्रिपन्स एट् श्रवणबेलगोल' नामक पुस्तकमें, लिखा है कि इसमें १२ हजार श्लोक ग्रन्थके संक्षिप्तसार अथवा सूचीके शामिल हैं।

हो गया हो अथवा उनके शिष्य शिवकोटिने जो तत्त्वार्थसूत्रकी टीका लिखी है उसी परसे इस विषयमें उनके नामकी प्रसिद्धि हो गई हो। कुछ भी हो, यथार्थ वस्तुस्थितिको खोज निकालनेकी बहुत बड़ी जरूरत है, जिसके लिये विद्वानोंको प्रयत्न करना चाहिये। अस्तु।

गन्धहस्तिमहाभाष्य और आप्तमीमांसाके सम्बन्धमें हम अपने इन अनुसंधानों और विचारोंको विद्वानोंके सामने रखते हुए उनसे अत्यन्त नम्रताके साथ निवेदन करते हैं कि वे इन पर बड़ी शांतिके साथ गहरा विचार करनेकी कृपा करें और उसके बाद हमें अपने विचारोंसे सूचित करके कृतार्थ बनाएँ। यदि हमारा कोई अनुसंधान अथवा विचार उन्हें ठीक प्रतीत न हो तो हमें युक्तिपूर्वक उससे सूचित किया जाय। साथ ही, जिन विद्वानोंको किसी प्राचीन साहित्यसे गन्धहस्तिमहाभाष्यके नामादिक चारों बातोंमेंसे किसी भी बातकी कुछ उपलब्धि हुई हो, वे हम पर उसके प्रकट करनेकी उदारता दिखलाएँ, जिससे हम अपने विचारोंमें यथोचित फेरफार करनेके लिये समर्थ हो सकें, अथवा उसकी सहायतासे किसी दूसरे नवीन अनुसंधानको प्रस्तुत कर सकें। आशा है, विज्ञ पाठक हमारे इस समुचित निवेदनपर ध्यान देनेकी अवश्य कृपा करेंगे, और इस तरह एक ऐतिहासिक तत्त्वके निर्णय करनेमें सहोयोगिताका परिचय देंगे।

अन्तमें हम अपने पाठकों पर इतना और प्रकट किये देते हैं कि इस लेखका कुछ भाग लिखे जानेके बाद हमें अपने मित्र श्रीयुत मुनि जिनविजयजी आदिके द्वारा यह मालूम करके बहुत अफसोस हुआ कि डेक्कन कालिज पूना लायब्रेरीकी किसी सूचीके आधार पर एक पंडित महाशयने, समाजके पत्रोंमें, जो इस प्रकारका समाचार प्रकाशित कराया था कि, गंधहस्तिमहाभाष्य आस्ट्रिया देशके अमुक नगरकी लायब्रेरीमें मौजूद है और इसलिये वहाँ जाकर उसकी कापी लानेके लिये कुछ विद्वानोंकी योजना होनी चाहिये, वह बिलकुल उनका भ्रम और बेसमझीका परिणाम था। उन्हें सूची देखना ही नहीं आया। सूचीमें, जो किसी रिपोर्टके अन्तर्गत है, आस्ट्रियाके विद्वान् डाक्टर बुलहरने कुछ ऐसे प्रसिद्ध जैनग्रंथोंके नाम, उनके कर्ताओंके नाम सहित प्रकट किये थे जो उपलब्ध हैं, तथा जो उपलब्ध नहीं हैं किन्तु उनके नाम सुने जाते हैं। समंतभद्रका 'गंधहस्तिमहाभाष्य' भी अनुपलब्ध ग्रंथोंमें था जिसका नाम सुनकर ही उन्होंने उसे अपनी सूचीमें दाखिल किया था। उसके सम्बन्धमें यह कहीं प्रकट नहीं किया गया कि वह अमुक लायब्रेरीमें मौजूद है। पंडितजीने इस सूचीमें गंधहस्तिमहाभाष्यका नाम देख कर ही, बिना कुछ सोचे समझे, आस्ट्रिया देशके एक नगरकी लायब्रेरीमें उसके अस्तित्वका निश्चय कर दिया और उसे सर्व साधारण पर प्रकट कर दिया! यह कितनी भूलकी बात है! हमें अपने पंडितजीकी इस कार्रवाई पर बहुत खेद होता है जिसके कारण समाजको व्यर्थ ही एक प्रकारके चक्करमें पड़ने और चंदा एकत्र करने-कराने आदिका कष्ट उठाना पड़ा। आशा है पंडितजी, जिनका नाम यहाँ देनेकी हम कोई जरूरत नहीं समझते, आगामीसे ऐसी मोटी भूल न करनेका ध्यान रक्खेंगे।

(जैन हितैषी, भाग १४, अंक ४ से उद्धृत।)

तीर्थयात्राके लिये निकलनेवाले संघोंका वर्णन ।

वपुः पवित्रीकुरु तीर्थयात्रया चित्तं पवित्रीकुरु धर्मवाञ्छया ।
वित्तं पवित्रीकुरु पात्रदानतः कुलं पवित्रीकुरु सच्चरित्रैः ॥

—उपदेशतरंगिणी ।

जैन धर्मके औपदेशिक ग्रन्थसमूहमें, जैनगृहस्थों (श्रावकों) के लिये जिन जिन धर्मकृत्योंका विधान किया गया है उनमें तीर्थयात्रा करनेका भी एक विधान है। मुख्य कर जिन स्थानोंमें तीर्थंकर आदि पूज्य माने जाने वाले जैनधर्मके महापुरुषोंका जन्म, दीक्षा, केवल या निर्वाण आदि पवित्र कार्य-जिसे जैन संप्रदायमें 'कल्याणक' कहते हैं- हुआ हो उन्हें तीर्थस्थान कहते हैं। परन्तु किसी अन्य विशिष्ट घटनाके कारण या स्थलविशेषकी पवित्रताके कारण और स्थान भी ऐसे तीर्थस्थान माने जाते हैं। समेतशिखर, राजगृह, पावापुरी, खण्डगिरि आदि स्थल पूर्वमें; तक्षशिला, कांगडा, अहिच्छत्र, हस्तिनापुर आदि उत्तरमें; शत्रुंजय, गिरनार, आबू, तारंगा आदि पश्चिममें; और श्रीपर्वत, श्रवणबेलगोला, मुडबद्री, कुलपाक आदि दक्षिणमें जैनियोंके प्रसिद्ध तीर्थस्थान हैं। तीर्थस्थानोंके मानने पूजनेकी यह प्रथा केवल जैनधर्म ही में प्रचलित है यह बात नहीं है। संसारके प्रायः सभी प्राचीन और प्रसिद्ध धर्मोंमें ऐसे तीर्थस्थान माने और पूजे जाते हैं। ब्राह्मणोंमें हरिद्वार, सोमनाथ, रामेश्वर, जगन्नाथ इत्यादि; बौद्धोंमें कपिलवस्तु, मृगदाव, बोधिगया, कुशीनार इत्यादि; क्रिश्चियनोंमें जेरुसलेम; और मुसलमानोंमें मक्का मदीना आदि स्थान सैकडों ही वर्षोंसे तीर्थस्थानके रूपमें जगद्विख्यात हैं। क्या मूर्तिपूजा माननेवाले और क्या नहीं माननेवाले-क्या ईश्वरवादी और क्या अनीश्वरवादी इस विषयमें सभी एकमत रखते हुए दिखाई देते हैं।

महापुरुषोंके चरणस्पर्शसे पवित्रित भूमिका दर्शन और स्पर्शन करनेसे भावुक मनुष्यके भद्र हृदयमें भव्यता प्रकट होती है और मनकी मलिनता अन्तरित होती है यह मानवस्वभाव सिद्ध बात है। केवल, प्रकृतिकी सुन्दरताको, स्थलकी विशुद्धताको और वातावरणकी निःशब्दताको देख कर ही संस्कारी हृदयवाले मनुष्यके मनमें सात्त्विकभाव प्रकट होने लगते हैं; तो फिर यदि उस स्थानकेसाथ किसी स्वाभिमत लोकोत्तर महापुरुषकी जीवनघटनाका कोई स्मृतिसंबन्ध जुडा हुआ हो तब तो कहना ही क्या। जो शांति और जो सात्त्विकता मनुष्योंको अन्य उपाधिग्रस्त स्थानोंमें सैंकडों लेखोंके वाचनेसे और सैकडों ही व्याख्यानोंके सुननेसे प्राप्त नहीं हो सकती, वह ऐसे शुद्ध, पवित्र और पूज्य स्थानमें एक दिन जाकर रहनेसे प्राप्त हो सकती है; ऐसा अनेक महापुरुषोंका अनुभव है। श्रमण भगवान् श्रीमहावीर और गौतम बुद्ध जो वर्षोंतक निर्जन वनोंमें घूमते रहे उसका कारण केवल यही शांतिलाभ करना था, और इसी प्रवृत्तिद्वारा उन्होंने अपनी मुक्ति प्राप्त की थी। संसारके महापुरुषोंके अनुभूत इस सिद्धान्तको लक्ष्यमें लेकर धर्मप्रवर्तकोंने तीर्थयात्राकी प्रथा प्रचलित की है और उसके अनुसार अति प्राचीन कालसे संसारके उपर्युक्त सभी धर्मोंके आस्तिक अनुयायी अपने अपने तीर्थस्थानोंमें अनेक प्रकारके कष्ट उठाकर भी, अधिक नहीं तो केवल एकवार, दर्शन मात्र करनेके लिये ही जाते रहे हैं, अथवा जानेकी अभिलाषा रखते रहे हैं। जैनधर्मोपदेशकोंने भी अपने तीर्थोंके दर्शन स्पर्शन करनेका उपदेश

किया है और तदनुसार जैन समाजमें प्रवृत्ति भी चली आ रही है।

पुराणे जमानेमें, आज कलके समान, मुसाफरी करनेके लिये रेलवे वगैरह जैसे साधनों की सुविधा न होनेसे, तथा मार्गमें अनेक प्रकारके कष्टोंके आनेकी बहुत कुछ संभावना रहनेसे, उस समय के बडे बडे श्रीमान लोक भी अकेले-दुकेले घरसे बहार निकल कर दूरके देशोंमें जानेकी हिम्मत कम रखते थे। तो फिर साधारण और गरीबवर्गके लोगोंके लिये तो कहना ही क्या। इस लिये उस समय प्रायः लोग बहुतसी संख्यामें एकत्र हो कर तीर्थयात्राके लिये निकला करते थे। यात्रियोंके इस समूहको संघ कहा करते हैं। पिछले जमानेमें, जैनसमाजमेंसे जुदा जुदा तीर्थोंकी यात्राके लिये जुदा जुदा देशोंमेंसे प्रतिवर्ष प्रायः सैंकडों ही ऐसे छोटे बडे संघ निकला करते थे, और अब तक भी सालमें दो चार निकलते रहते हैं। बहुत करके इन संघोके निकालनेमें कोई एक श्रीमान् भावुक अग्रणी होता है और वह अपनी ओरसे हजारों लाखों रुपये खर्च कर सैंकडों हजारों यात्रियोंके तीर्थदर्शनकी अभिलाषाको पूर्ण करनेमें सहायक बनता है। ऐसे संघ निकालनेवालेको समाजकी ओर से 'संघपति' की पदवी मिलती है और वह फिर सदा समाजमें अग्रणी माना जाता है।

संघके निकालनेकी क्या विधि है-वह किस तरहसे निकाला जाता है और उसके निकालनेवालेको क्या क्या करना चाहिए-इसके विषयमें श्राद्धविधिनामक ग्रन्थमें निम्न प्रकारका वर्णन दिया है।

संघ निकालनेवाले पुरुषको सबसे प्रथम, अभीष्ट तीर्थकी यात्रा पूर्ण न हो तब तक, निम्न प्रकारके नियम करने चाहिएं—दिनमें एक ही दफह भोजन करना चाहिए, रास्तेमें पैदल चलना चाहिए, खाली जमीन पर सोना चाहिए, सचित्त वस्तु खानी न चाहिए, ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए, इत्यादि[1]। इस प्रकार यात्राके लिये नियमादि स्वीकार कर फिर राजाके पास जावे और उसे यथायोग्य भेंट दे कर संघ निकालनेकी इजाजत लेवे[2]। फिर यात्रामें साथ ले चलनेके लिये युक्तिपूर्वक मंदिर बनवावे[3]। अनन्तर, अपने स्वजनाको और साधर्मिभाईयोंको संघमें आनेके लिये

---

१ जैन जातियोंमें बहुतसे कुटुम्बोंको जो संघवी-संघइ--सिंघी-सिंगई आदि अटक है वह इसी 'संघपति' पद्वी का अपभ्रष्ट रूप है।

२ यह ग्रंथ तपागच्छके आचार्य रत्नशेखर सूरिका बनाया हुआ है। इसकी रचना विक्रम संवत् १५०६ में हुई है। भावनगरकी आत्मानंद जैन सभाने इसे छपाकर प्रकट किया है।

१ जिस संघमें इस प्रकारके नियमोंका पालन करते हुए संघपति और अन्यान्य यात्री चलते हैं उस संघको 'पट् री पालक' (गुजरातीमें-छ री पालतो) संघ कहते हैं। 'पट् री' से मतलब उन छ नियमोंका है जिनमें अन्तमें 'री' अक्षर आता है। यथा-

'एकाहारी, दर्शनधारी, यात्रासु भूशयनकारी,
सच्चित्तपरिहारी, पादचारी, ब्रह्मचारी, च।
श्राद्धविधि. पृ. १६४.

एकाहारी भूमिसंस्तारकारी
पद्भ्यां चारी शुद्धसम्यक्त्वधारी।
यात्राकाले सर्वसच्चित्तहारी
पुण्यात्मा स्याद् ब्रह्मचारी विवेकी॥
-उपदेशतरंगिणी, पृ २४३.

२ प्राचीन समयमें राजाज्ञाके सिवा ऐसे संघ वगैरह निकल नहीं सकते थे तथा उनको एक राज्यमेंसे दूसरे राज्यमें जाने आने नहीं दिये जाते थे। इस लिये संघ निकालनेवालेको प्रथम राजाके पास जाकर उसके आगे रूपयोंकी खूब भेंट कर उसे खुश करना पड़ता था और उसके पाससे संघ निकालनेका परवाना (मुसलमानी शब्द फरमान) लेना पडता था। प्रमाणके लिये देखो मेरा लिखा हुआ शत्रुंजय तीर्थोद्धार प्रबन्ध, पृ० ५६-७; तथा सोमसौभाग्यकाव्य, पृ, १४०-४१।

३ ये मन्दिर सोना, चांदि, आदि धातुओंके तथा हस्तिदन्त, चन्दन अथवा अन्य प्रकारके उत्तम काष्ठके बनाये जाते थे। ये एक प्रकारके सिंहासन समान अथवा रथके जैसे होते थे। इनको मनुष्य उठाते अथवा रथकी तरह घोडे या बैल खींचते थे। संघके प्रमाणमें ऐसे एक या अनेक मंदिर संघके साथ रहते थे।

आदरपूर्वक आमंत्रण भेजे। भक्तिपूर्वक गुरुमहाराजको भी निमंत्रण करे। गांवमें जीवहिंसा बन्ध करानेके लिये अमारिपटह बजवावे। मंदिरोंमें महापूजादि महोत्सव मनावे। फिर, जो जो मनुष्य संघमें साथ आनेकी इच्छा प्रदर्शित करें उनमेंसे जिनके पास भत्ता न हो उन्हें भत्ता देवे, वाहन न हो उन्हें वाहन देवे, तथा जो बिलकुल निराधार हो उन्हें मीठे बचनोंसे आश्वासन दे कर जिस वस्तुकी जरूरत हो उसकी पूर्ति करे। और इस प्रकार गांवमें ढंढेरा पिटाकर सहायतादान पूर्वक निरुत्साह मनवालोंको भी यात्राके लिये उत्साहित करे। रास्तेमें यात्रियोंके ठहरनेके लिये, पडावोंमें काम आने लायक छोटे बडे ऐसे अनेक डेरे, तंबू, रावटी, चांदनी आदि तैयार करवावे। भोजनकी सामग्रीके लिए कडाह, परांत, हंडे आदि भाजन और पानीके संग्रहके लिये बडी बडी कोठियां, टांकियां आदि वर्तन बनवावे। मनुष्योंके बैठनेके लिये तथा सामान भरनेके लिये गाडी, सहेजवाल, रथ, म्याना, पालखी, बैल (पोठ) उंट, घोडा आदि सब प्रकारके वाहनोंका संग्रह करे। संघकी रक्षाके लिये अच्छे अच्छे बहादुर और शूर सुभटोंको (सिपाहियोंको) बुलावे और उन्हें अस्त्र शस्त्रादि देकर उनका सन्मान करे। तथा गीत, नृत्य और वाद्यविषयक सामग्रीको भी साथमें रक्खे—अर्थात् गान और नृत्य करनेवाले भोजकों-गंधर्वोंको और बाजे बजानेवाले बजवइयोंको भी संघके साथ रक्खे। इस प्रकार सब तरहकी तैयारी कर अच्छे मुहूर्तमें शुभ शकुनोंके साथ प्रस्थानमंगल करे। प्रस्थान करनेके अवसर पर, सकल समुदायको—संघके साथ चलनेवाले तथा गांवमें बसनेवाले सभी साधर्मिभाइयोंको—एकत्र उत्तम प्रकारके भोजन कराकर, ताम्बूल आदि मुखवास देकर, तथा पंचांग वस्त्रादि पहरा कर सत्कृत करे। तदनन्तर, सुप्रतिष्ठ, धर्मिष्ठ, पूज्य और भाग्यवान् मनुष्योंके हाथसे 'संघाधिपत्य' का तिलक करावे। स्वयं संघकी महापूजा करे और इस प्रकार दूसरोंके पाससे भी 'संघाधिपत्य' का तिलक करावे। यह सब काम हो चुकने पर फिर संघके साथ आनेवालोंमेंसे यथायोग्य किसीको महाधर, किसीको अग्रेसर, किसीको पृष्ठरक्षक और किसीको संघाध्यक्ष आदि पद देकर तदनुकूल कार्यविभाग नियत करे। संघके चलने-ठहरने आदिके सब संकेत यात्रियोंको जाहिर करे—अर्थात् अमुक प्रकारकी सूचना मिलने पर यात्रियोंको ठहर जाना चाहिए, अमुक प्रकारकी सूचना मिलने पर चलना चाहिए, अमुक प्रकारकी सूचना मिलने पर एकत्र होना चाहिए; इत्यादि सब बातें संघजनोंको स्पष्ट समझा देनी चाहिएं। रास्तेमें संघपतिको सबकी संभाल रखनी चाहिए। कहीं किसीकी गाडी वगैरह टूट जाय या और किसी प्रकारकी कठिनाई आ जाय तो उसे हर प्रकारसे सहायता देनी चाहिए।

इस प्रकार प्रयाण करते हुए मार्गमें जितने गांव और शहर आवें उनके मंदिरोंमें स्नात्र-महोत्सव करावे तथा उन पर महाध्वज चढावे। सब मंदिरोंके बाजे-गाजेके साथ जाकर दर्शन करे। जहां कहींपर कोई मंदिर वगैरह जीर्ण-शीर्ण हालतमें दिखाई दे तो उसके उद्धार आदिका खयाल रक्खे। जब दूरसे अभीष्ट तीर्थ-स्थलके (पर्वतादिके) दर्शन हो तब सुवर्ण, रत्न या मोतियोंसे उसे बधावे और यात्रियोंको लड्डू आदि बांटकर तथा भोजन करा कर साधर्मिवात्सल्य करे। यथोचित दान देवे। फिर जब तीर्थस्थल पर पहुंचे तो बडे आडंबरके साथ स्वयं प्रवेशोत्सव करे और दूसरोंसे करावे। इस तरह तीर्थस्थानमें प्रवेश करके, प्रथम हर्षपूजा, फिर अष्टोपचार पूजा, और तदनंतर विधिपूर्वक स्नात्र करे। इसके बाद, माला पहरना, घृतधारा देना, पहरामनी रखना, नवांग जिनपूजा करना, पुष्पगृह और कदलीगृह बनवा कर महापूजा रचना, बहुमूल्य वस्त्रादिकी बनाई हुई महाध्वजा चढाना, रात्रिजागरण करना, नानाप्रकारके गीत और नृत्यादिसे उत्सव मनाना, तीर्थनिमित्त उपवासादिक तपस्या करना, लक्ष या कोटि परिमित चावल आदि—आदि शब्दसे सुपारी, लविंग, एलायची, नालियर इत्यादि समझने चाहिए—चढाना, २४, ५२, ७२ या १०८ संख्यामें फल आदि भेंट धरना, भक्ष्य ऐसे सब प्रकारके भोज्य पदार्थों

से भरे हुए थालोंका रखना, रेशम आदि मूल्यवान् वस्त्रके बने हुए चंदुए, अंगलुंछन, दीप, तैल, धोती, चन्दन, केसर, पुष्पचंगेरी, कलश, धूपदान, आरती, आभरण, प्रदीप, चामर, भृंगार, थाल, कच्चोल, घंटा, झलरी, पटह आदि विविध वाद्य; इत्यादि प्रकारकी मंदिरमें काम आनेवालीं सब चीजोंका दान करना; इत्यादि प्रकारके जो तीर्थ कृत्य हैं उन्हें विधिपूर्वक पूर्ण करे। इसके बाद तीर्थस्थान पर कोई छोटी बडी देवकुलिका करावे। सूत्रधारादिक कारीगरोंका सत्कार करे। तीर्थका कोई हिस्सा नष्ट-भ्रष्ट होनेकी अवस्थामें हो तो उसे ठीक करवा देवे। तीर्थकी रक्षा करनेवालोंका बहुमान करे। तीर्थके निर्वाहके लिये कोई जमीन आदिका स्थायी दान करे। साधर्मिवात्सल्य करे। गुरुओं और संघजनोंको पहरामणी दे कर भक्तिभाव प्रकट करे और भोजक, सेवक, गंधर्व, आदि जैन याचक जन हों उन्हें उचित दान वितरण करे। इत्यादि।

इस प्रकार संघ ले जानेवालेके लिये मुख्य मुख्य कृत्य बतलाये गये हैं।

प्राचीन समयमें, जैन इतिहासमें प्रसिद्ध ऐसे प्रायः सभी जैन राजा-महाराजाओंने और सेठ—साहुकारोंने इस प्रकारके बडे बडे संघ निकाले थे और उनमें लाखों करोडों रूपये खर्च किये थे। उदाहरणके लिये ऐसे दो चार प्रसिद्ध संघोंका यहां पर उल्लेख करना उचित मालूम देता है।

गुजरातके परमार्हत राजा कुमारपाल चौलुक्यने सौराष्ट्रके गिरनार और शत्रुंजयादि तीर्थोंकी यात्राके लिये बडा भारी संघ निकाला था। उसके बारेमें जिनमण्डन गणीने (संवत् १४९२) अपने 'कुमारपाल प्रबन्ध' नामक ग्रंथमें जो उल्लेख किया है, उसका सार यहां पर दिया जाता है—

हेमचन्द्राचार्यके मुखसे तीर्थ यात्रासे होनेवाला पुण्यलाभ सुन कर कुमारपालने भी तीर्थयात्रा करनेका मनोरथ किया और तत्काल सब सामग्री एकत्र कर शुद्ध मुहूर्तमें यात्राके लिये प्रस्थान किया। प्रस्थान करते समय उसने प्रथम, शहरके सभी चैत्यों (मंदिरों) में अष्टान्हिक उत्सव मनाया। गांवमें अमारिपटह बजवाया। कैदखानोंमें जो कैदी थे उन्हें बन्धन मुक्त किये और सकल संघकी पूजाका महामहोत्सव किया। संघके प्रयाणसमयमें सबसे आगे राजाका देवालय चलता था। यह देवालय सुवर्ण और रत्नोंसे जडा हुआ था और राज्यके पट्टहस्तिकी पीठ पर स्थापित किया हुआ था। इसमें सुवर्णकी बनी हुई जिनमूर्ति स्थापित थी। राजाके इस मुख्य देवालयके पीछे पीछे क्रमसे ७२ सामंतोंके, २४ मंदिर बनवानेवाले बाहड मंत्री और उसके साथ अन्य मंत्रियोंके, तथा १८०० बडे बडे व्यापारियोंके देवालय चलते थे। इन सब देवालयों पर श्वेतातपत्र रक्खे हुए थे और अंदर सुवर्ण और मोतियोंसे जडे हुए छत्र-चामरादि शोभ रहे थे।.......इस संघमें कुमारपाल राजा मुख्य संघपति था और उसके साथ ७२ सामंत, बाहड (वाग्भट) आदि मंत्री, राजमान्य नागसेठका पुत्र सेठ आभड, षड्भाषाकविचक्रवर्ती श्रीपाल और उसका पुत्र दानवीर कविश्रेष्ठ सिद्धपाल, कपर्दी भंडारी, प्रह्लादनपुर (पालनपुर) का संस्थापक राणा प्रह्लाद, ९९ लाख सुवर्णाधिपति सेठ छाडाक, राजदौहित्रिक प्रतापमल्ल, अठारह सौ व्यवहारी, हेमचंद्रसूरि आदि अनेक आचार्य, अनेक गांवों और नगरोंसे आए हुए करोडों मनुष्य, छहों दर्शनोंके अनुयायी, ११ लाख घोडे, ११ सौ हाथी, १८ लाख पैदल सिपाही और अनेक याचक जन थे। राजा हमेशा पैदल चलता था और सो भी नंगे पैरोंसे। हेमचन्द्रसूरिने उसे वाहन पर बैठजानेका अथवा तो पैरोंमें जूते वगैरह पहर लेनेके लिये आग्रह भी किया तो भी उसने वैसा नहीं किया। राजाके इस व्रतको देख कर और भी सैंकडों संघजन उसी तरह चलने लगे। संघके साथ समुदाय बहुत बडा होनेसे कहीं लोकोंको रास्तेमें कष्ट न हो इस लिये वह हमेशा पांच कोसकी मंजल करता था। जगह जगह लड्डू, नालियर आदिकी प्रभावना किये जाता था। जितने जितने जिनमंदिर आते थे उन सब पर सुवर्ण और मोतियोंसे जडी हुई ध्वजायें चढाता जाता था और मंदिरमेंकी प्रत्येक मूर्तिके लिये सोनेका छत्र और चामरादि दान किये जाता था। गांवों और शहरोंके

सभी मनुष्योंको भोजन करवाता था। सामने आने वाले राजाओं तथा सेठ-साहुकारोंको यथायोग्य पहरामणी देता था। प्रतिदिन संघमें, सामंत, मंत्री, सेठ आदि सभी संघजनोंको एकत्र कर स्नात्र महोत्सव मनाता था। प्रत्येक गांव और नगरमें साधर्मिक भाइयोंको अन्न, वस्त्र और प्रच्छन्न धन देकर साधर्मिकवात्सल्य करता था। प्रतिदिन भोजन करनेके समय असमर्थ श्रावकोंको तथा दूसरे भूखे प्यासे गरीब गुरबोंको अपने हाथसे भोजन कराकर फिर स्वयंभोजन करता था। हमेशा त्रिकाल जिनपूजा, उभयकाल प्रतिक्रमण तथा पर्वके (अष्टमी और चतुर्दशी आदि के) दिन पौषध व्रतादि करता था। जितने याचकजन आते थे उनको इच्छित दान देकर संतुष्ट करता था। इस प्रकार प्रयाण करता हुआ वह धंधूका नगरमें पहुंचा जो हेमचन्द्राचार्यका जन्मस्थान था। इस नगरमें उसने पहले ही १७ हाथ ऊंचा झोलिकाविहार नामक मंदिर बनवाया था जिस पर ध्वजा चढाई तथा स्नात्र महोत्सव कराया। वहांसे वह क्रमशः प्रयाण करता हुआ, प्राचीन वलभी शहरके मैदानमें पहुंचा। इस जगह दो सुंदर पहाडियां हैं जिनकी चोटी पर दो मन्दिर बनवाये और उनमेंसे एकमें ऋषभदेवकी और दूसरेमें पार्श्वनाथकी मूर्ति प्रतिष्ठित की। वहांसे चल कर वह संघ उस जगह पहुंचा जहांसे शत्रुंजय पर्वतका स्पष्ट दर्शन हो सकता था। उस दिन संघने वहीं पडाव किया और राजाने सकल संघके साथ शत्रुंजयको दण्डवत् नमस्कार करके पञ्चाङ्ग प्रणाम किया। उस दिन तीर्थदर्शन निमित्त उपवास किया गया और सोने चांदिके फुलोंसे और मोतियोंसे शत्रुंजयके वधाया गया। कुङ्कुम और चंदनादिसे अष्टमंगलका आलेखन किया गया और उनपर अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे भरे हुए थाल रक्खे गये। वहां पर फिर पूजा पढाई गई, आचार्यका व्याख्यान सुना गया और रात्रिजागरणका उत्सव मनाया गया। राजराणी भूपल देवी, राजपुत्री लील्हू कुमारी और अन्य सब सामंत वगैरहकी स्त्रिओंने भी सोनेके थालोंमें मोती और अक्षत भरकर पर्वतको वधाया। इस प्रकार उस दिन प्रथम तीर्थदर्शनके सब कृत्य करके दूसरे दिन संघने उपवासका पारणा किया और तदर्थ उत्सव मनाया गया। तीसरे दिन संघ प्रयाण करके शत्रुंजयकी तलहट्टीमें पहुंचा। वहां पर पादलिप्तपुर (पालीताना) में राजाने पहले ही पार्श्वनाथका मन्दिर बनवा रक्खा था, जिस पर उस समय सुवर्णनिर्मित कलश, दण्ड और ध्वज आदिका आरोपण कर विधिपूर्वक स्नात्र महोत्सव कराया। उसके बाद अपनी दाहिनी बाजूमें हेमचन्द्रसूरिको साथ लेकर, सामंत, मंत्री, सेठ, साहुकार इत्यादि सबके साथ शत्रुंजय पर चढने लगा। मार्गमें जितने वृक्ष आते थे उन सब पर वस्त्रखण्ड चढवाता हुआ और प्रत्येक स्थान पर सुवर्ण, पुष्प, चंदन इत्यादिसे पूजन करता हुआ, मरुदेवा नामक शिखर उपर पहुंचा। वहांपर जगन्माता स्वरूप मरुदेवाकी, तथा शान्तिनाथ और कपर्दि यक्षादिककी पूजा-अर्चा कर प्रथम प्रतोली (पोल) पर पहुंचा। वहां पर अनेक याचक जन खडे थे जिनको यथायोग्य दान देकर आगे बढा और युगादिदेव आदिनाथके मुख्य मन्दिरका द्वार दिखाई देते ही सवासेर प्रमाण मोतियोंसे उसे वधाया। तदनन्तर मन्दिरको तीन प्रदक्षिणा कर गर्भागारमें गया और वहां पर युगादि देवकी प्रशमरसपरिपूर्ण भव्य मूर्तिके दर्शन कर परम उल्लसित हुआ और नौ लाख सुवर्णके मूल्यवाले नौ हार चढा कर उस मूर्तिकी नवांग पूजा की। तदनन्तर संघपतिके लिये जो जो तीर्थ कृत्य बतलाये गये हैं उन सबका उसने यथाविधि पालन किया। इत्यादि।

पाठक कुमारपालकी यात्राके इस वर्णनका ऊपर पहले दिये गये श्राद्धविधिके संघवर्णनके साथ मिलान करेंगे तो मालूम हो जायगा कि संघके निकालनेका जो वर्णन ग्रन्थकारोंने दिया है वह केवल वर्णनमात्र ही नहीं है परंतु उसके अनुसार यथार्थ आचरण भी होता रहा है। और यह आचरण उस पुराणे जमाने ही में होता था सो भी बात नहीं है। वर्तमानमें भी ऐसे संघ निकालनेवाले यथाशक्ति और यथासाधन उक्त विधिका

पालन करते रहते हैं। इस प्रकारके छोटे बडे दो चार संघोंके देखनेका तथा उनके साथ जा कर यात्रा करनेका इस लेखकको भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिनमें इस वर्णनका बहुत कुछ प्रत्यक्ष अनुभव भी मिला है। अस्तु।

कहते हैं, इसी तरह पहले गोपगिरि (गवालियर) के आम नामक राजाने बप्पभट्टिसूरिके[1] उपदेशसे शत्रुंजयकी यात्राके लिये एक संघ निकाला था जिसमें १ लाख पौष्टिक,[2] १ लाख घोडे, ७०० हाथी, २० हजार ऊंट, ३ लाख प्यादे और २० हजार श्रावक-कुटुंब थे। (देखो रत्नमन्दिर गणिरचित उपदेशतरंगिणी, पृ० २४८)

विक्रमकी १४ वीं शताब्दीमें थारापद्र[3] नगरमें आभू नामक एक श्रीमालज्ञातीय बहुत बडा श्रावक हो गया है। इसको 'पश्चिममण्डलिक' की पदवी मिली थी। इसने शत्रुंजयकी यात्राके लिये जो संघ निकाला उसमें ७०० तो मंदिर और १०५० जिन मूर्तियां थी! अन्य समुदाय इस प्रकार थाः— ४ हजार गाडियां, ५ हजार घोडे, २२ सौ ऊंट, ९० सुखासन' ९९ श्रीकरी, ७ प्रपा, पानीसे भरी हुई मशकें उठा कर चलनेवाले ४२ बैल और ३० भैंसे, १०० भोजन बनानेके बडे बडे कडाह, १०० हलवाई, १०० रसोय, २०० माली, १०० तंबोली, १३६ हाट, १४ लुहार, और १६ सुतार थे। ३६ आचार्य थे। सब मिलकर १२ करोडका[4] उसके संघमें खर्च हुआ था।

महामंत्री वस्तुपालने १२ वार संघ निकाल कर शत्रुंजयकी यात्रायें की थीं। जिनमें सं. १२८५ में जो यात्रा की उसके साथमें २४ तो हाथीदांतके बने हुए और १२० चंदन आदि लकडीके बने हुए मंदिर थे। ४५ सौ गाडियां, १८ सौ वाहिनियां, ७०० सुखासन, ५०० पालखियां, ७० आचार्य, २ हजार श्वेताम्बर यति, ११ सौ दिगम्बर भट्टारकादि, १९०० श्रीकरी, ४ हजार घोडे, २ हजार ऊंट, और सात लाख मनुष्य थे[1]।

वस्तुपालकी इस अनुपम तीर्थयात्राका वर्णन, उसके समकालीन और सुहृद् ऐसे बडे बडे कवियोंने बहुत विस्तृत और भव्य रीतिसे किया है[2]। उदाहरणके लिये गुर्जरेश्वर पुरोहित सोमेश्वर महाकवि रचित कीर्तिकौमुदी नामक काव्यके कुछ पद्य यहां पर उद्धृत कर दिये जाते हैंः—

चिकीर्षिता श्रीसचिवेन तीर्थ-
यात्राऽथ सोऽयं शरदाऽऽसमेनः।
महात्मनामीहितकार्यसिद्धौ
विधिर्विधत्ते हि सदानुकूल्यम्॥ १
पाथेयवन्तः पथि योग्ययुग्याः
सोपानहः सोदकभाजनाश्च।
श्रीवस्तुपालेन समं जनौघाः
प्रयाणकाय प्रवणा बभूवुः॥४
आकारितस्तेन कृतादरेण
दूरादपि श्राद्धजनः समेतः।
ययुस्तदीयानि पुनर्यशांसि
दिगन्तरेभ्योऽपि दिगन्तराणि॥ ५
समं समग्रैरपि बन्धुवर्गै-
र्निसर्गबन्धुर्विबुधव्रजस्य।
शुभे मुहूर्तेऽथ शुभैर्निमित्तै-
र्मन्त्री स्वनाथानुमतः प्रतस्थे॥ ६
रथैस्तुरंगैः करभैर्महोक्षै

---

१ बप्पभट्टीसूरिका स्वर्गवास संवत ८९५ में हुआ था। आमराजके लिये देखो मेरा शत्रुंजय तीर्थोद्धार प्रबन्ध, पृ. ४२ की टिप्पणी।

२ पुराने जमानेमें बनजारे लोग जिन बैलों पर माल लद कर आते जातेथे उनको पौष्टिक कहते थे। गुजरातीमें उसे पोठ कहते हैं। मनुष्य भी इन बैलों पर स्वारी करते थे।

३ यह प्राचीन प्रसिद्ध नगर पालनपुर एजन्सीमें आया हुआ है। आजकल इसे थराद कहते हैं।

४ देखो, उपदेशतरंगिणी, पृ० २४५, तथा सुकृतसागर काव्य, पृष्ठ ५६।

१ उपदेशतरंगिणी, पृ० २४७.

२ देखो, सोमेश्वररचित कीर्तिकौमुदी, सर्ग ९; ठक्कुर अरिसिंह रचित सुकृतसंकीर्तनकाव्य, सर्ग ५; बालचंद्रसूरि रचित वसंतविलास महाकाव्य, सर्ग १०-११-१२-१३; और उदयप्रभसूरिकृत धर्माभ्युदयमहाकाव्य, सर्ग १५, इत्यादि।

जग्मुस्तदा केऽपि कथंचनापि ।
मन्त्रीश्वरे धर्मधराधुरीणे
तस्मिन् विशश्राम भरस्तु तेषाम् ॥ १०
न वाहनं यस्य स तस्य वाहनं
नासीद्धनं यस्य स तस्य वित्तम् ।
न चीवरं यस्य स तस्य वस्त्रं
कल्पद्रुकल्पः प्रददौ पृथिव्याम् ॥ ११
भुङ्क्ते स्म सर्वेष्वपि भुक्तवत्सु
शेते स्म सुप्तेषु स यात्रिकेषु ।
प्रबुध्यते स्म प्रथमं तदित्थं
संघप्रभुत्वव्रतमाचचार ॥ १२
प्रभूतभोज्यानि बहूदकानि
सुगोरसान्युन्मदमानवानि ।
तस्यातिदुर्गेऽपि पथि प्रयाणा-
न्युद्यानलीलासदृशान्यभूवन् ॥ १३
यात्राप्रसंगेषु जगाम येषु
पुरेषु पौरोच्छ्रिततोरणेषु ।
तेषामधीशैः सविशेषमेष
संमान्यमानः सममानयत्तान् ॥ १४
अभ्यर्थ्यमानः पथिकैरनेकै-
र्वस्तून्यनेकान्यपि वस्तुपालः ।
तेभ्यः प्रभूतानि पथि प्रयच्छ-
न्नाहं करोति स्म न कुप्यति स्म ॥ १५
पुरश्च पृष्ठेऽपि च पार्श्वयोश्च
परिस्फुरन्तः खरहेतिहस्ताः ।
यात्राजनं वर्त्मनि तस्य शम्य-
दश्वादिरूढाः सुभटा ररक्षुः ॥ १८
समुद्धृतैर्जीर्णजिनेन्द्रहर्म्यै-
र्नवैः सरोभिश्च सरोजरम्यैः ।
प्रस्थानमार्गः सचिवस्य सोऽभू-
दजानतामप्युपलक्षणीयः ॥ १९
यावन्ति बिम्बानि जिनेश्वराणां
श्वेताम्बराणां च कदम्बकानि ।
मार्गेषु तेषां मुपिताश्रितार्तिः
पूजां स निर्वर्त्य ततः प्रतस्थे ॥ २०
स पंचपैर्निर्विषयप्रपञ्च—
प्रयाणकैः प्रीणितभव्यलोकः ।
धराधरं धर्मधुरंधरश्री-
शत्रुंजयं शत्रुजयी जगाम ॥ २१

—कीर्तिकौमुदी, सर्ग ९ ।

इन श्लोकोंका भावार्थ यह है कि-शरत्कालके आने पर मंत्री वस्तुपालने तीर्थयात्राके लिये तैयारी की । उसके साथ गांवके अन्यान्य लोक भी भत्ता, वाहन, जलादिके वर्तन इत्यादि मार्गमें आवश्यक ऐसी सब चीजें ले ले कर तैयार हुए । मंत्रीने दूर दूर देशोंके श्रावकोंको भी संघमें आनेके लिये आदर पूर्वक आमंत्रण किया था इससे वे भी सब लोक आ पहुंचे । इस प्रकार सब लोगोंके तैयार हो जाने पर, अपने कुटुंबी, सगे, सम्बन्धी, स्नेही इत्यादि सब जनोंके साथ, राजाकी आज्ञापूर्वक, मंत्रीने शुभ मुहूर्तमें प्रयाण किया । यात्रियोंमेंसे कोई रथोंपर, कोई घोडोंपर, कोई ऊंटोंपर, कोई बैलोंपर, इस तरह जुदा जुदा वाहनों पर सवार होकर चलते थे, पर उन सबका भार मंत्रीके शिरपर था । साथ चलनेवाले यात्रियोंमेंसे जिसके पास वाहन नहीं था उसको वाहन देकर, जिसके पास धन नहीं था उसको धन देकर और जिसके पास वस्त्र नहीं था उसे वस्त्र देकर मंत्रीने उस समय साक्षात् कल्पवृक्षके समान आचरण किया था । संघमें सब मनुष्योंके भोजन कर लेनेपर मंत्री भोजन करता था, सबके सोजाने बाद सोता था और सबके ऊठनेके पहले ऊठता था—इस प्रकार संघकी संपूर्ण प्रतिपालना करता था । यात्रियोंको हमेशा उत्तम प्रकारका भोजन कराया जाता था, मीठा पानी पिलाया जाता था और दूध-दहीं आदि गोरस खिलाया जाता था । इस कारण वह विषम मार्गकी मुसाफरी भी लोगोंको उद्यानलीलाके जैसी आनंददायक हो गई थी । जिन जिन गांवो-नगरोंमें वह संघ पहुंचता था वे सब गांव-नगर वहांके निवासियोंकी ओरसे ध्वजा-तोरणादिसे खूब सजाये जाते थे और वहांके अधिकारी वगैरह सब जन आदरपूर्वक उस संघकी पेशवाईमें आते थे । स्थान स्थानमें अनेक याचक जन आकर मंत्रीके पास अनेक प्रकारकी याचना करते थे और वह सबको यथायोग्य दान देकर संतुष्ट करता था—परंतु इस विषयमें न कभी वह अहंकार ही प्रद-

शित करता था और न तिरस्कार ही। रास्तेमें चलता हुआ वह संघ आगे, पीछे और अगल-बगलमें, अर्थात् चारों ओर, हाथोंमें शस्त्र लिये हुए घोडे सवारोंसे संरक्षित रहता था। मार्गमें जितने भी जीर्ण-शीर्ण मन्दिर और तालाव आदि जलाशय मिलते थे उन सबको ठीक-ठाक या नवीन बनवाता हुआ वह संघ चला जाता था। इस कारण उस रास्तेसे निकलकर जानेवाले अज्ञात जनोंको भी चिरकाल तक उस संघके प्रयाणका परिचय मिलता रहता था। इसी तरह रास्तेमें जितने मन्दिर आते और उनमें जितनी जिनमूर्तियां होती थीं उन सबकी पूजा-अर्चा करवाई जाती थी। एवं रीत्या प्रयाण करता हुआ आंतर और वाह्य दोनों प्रकारके शत्रुओं ऊपर जय प्राप्त करनेवाला वह महामंत्री ५—६ ही दिनमें शत्रुंजय पर्वतपर पहुंच गया था। इत्यादि।

विक्रमकी १५ वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें, सं० गुणराज नामका एक प्रसिद्ध धनिक श्रावक हो गया है जो कर्णावतीका निवासी था। उसने शत्रुंजय, गिरनार, आवू, राणकपूर, मांडव, ईडरगढ आदि गुजरात, काठियावाड, मेवाड, मारवाड, मालवा, वागड इत्यादि देशोंके प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थोंकी यात्रा निमित्त वहुत बड़ा संघ निकाला था। इस संघमें मुख्य आचार्य तपागच्छके सोमसुंदर सूरि थे। उन्हींके उपदेशसे यह संघ निकला था। इस संघका विस्तृत वर्णन सोमसौभाग्य नामक काव्यके ८ वें सर्गमें किया हुआ है। काव्यका बनानेवाला कवि प्रतिष्ठासोम स्वयं सोमसुंदर सूरिका हस्तदीक्षित शिष्य था। इस लिए उसका यह वर्णन प्रायः आंखों देखा कहा जा सकता है।

जिज्ञासु पाठकोंको तो इस बारेमें खुद उक्त काव्य ही को पढ़ना चाहिए। परंतु कुछ नमूना दिखानेके लिये उसके थोडेसे पद्य यहांपर भी दे दिये जाते हैं:—

> दीपालिकापर्व समाययौ मुदां
> साम्राज्यदानप्रतिभूनिभं भुवि ।
> श्रीतीर्थयात्राकृतये कृती तदा
> महोद्यमं निर्मितवान् महेभ्यराट् ॥
>
> सज्जीक्रियन्ते स्म मनोरथैः समं
> रथा महेभ्यैः स्वगृहेष्वयोमयाः ।
> सुखासनप्रोद्धुरसिंहविष्टरा-
> दीन्यै गरिष्ठं भुवि तैर्विधापितम् ॥
>
> परःसहस्राश्चतुरास्तुरंगमा
> आत्ता उदात्ता हृदयंगमाः पुनः ।
> द्रव्यैःक्रियन्ते स्म मया महोमया
> अग्रेसरा वेगभृतो च वेसराः ॥
>
> अहिम्मदश्रीयुतपातशाहिराट्
> तत्राभृतप्रीतमना मनीषिणम् ।
> दिव्याम्बरैर्य किल पर्यधापयत्
> कवाहिमुख्यैः सह भूरिभिर्जनैः ॥
>
> समार्पयद् द्वारगतिं निजां च तं
> वरं नफेरीप्रमुखं नृपोचितम् ।
> परःसहस्रान् सुभटान् महोद्भटान्
> प्रोन्मादिनस्तानमितांश्च सादिनः ॥
>
> श्रीतीर्थयात्रास्फुरमाणमौक्तिकं
> ददौ सदौचित्यकरं च यस्य तत् ।
> स मार्गणप्राणिगणस्य कामितं
> संपूरयन् श्रीगुणराजसंघराट् ॥
>
> भव्ये मुहूर्ते गुरुप्रभावभावितः
> संघान्वितः सौवपुराच्चचाल सः ।
> कुंभः शुभाम्भोभरितोऽस्य संमुखो
> वभूव मार्गे सधवाशिरःस्थितः ॥
>
> इति प्रकृष्टैः शकुनैः प्रमातिगैः
> संसूचितस्वोज्ज्वलमंगलोदयः ।
> श्रीवीरमग्राम इति प्रसिद्धिमत्
> पुरं ययौ श्रीगुणराजसाधुराट् ॥
>
> तस्मिन्मिलन्ति स्म पुरे नरेश्वरो-
> द्धुरा नराः पुण्यपराश्चतुर्दिशाम् ।
> प्रवर्द्धते स्मातवसंघ उच्चकै-
> र्दिने दिने वार्द्धिरिवेन्दुदर्शने ॥
>
> देवालयाः श्रीनिलया दशाऽऽकृशाः
> सौवर्णदण्डध्वजकुम्भशोभिताः ।
> चमत्कृताशेषजगत्त्रया स्फुर-
> च्चित्रैर्विचित्रैर्वरशिल्पिकल्पितैः ॥
>
> जैनेन्द्रबिम्बैः सहिता महोच्छ्रिता-
> स्तत्रैव श्रीभिः सुभगंभविष्णवः ।

रथाधिरूढा दृढबन्धबन्धुराः
पथि प्रचेलुः त्रिदशाचलाचलाः॥
तत्पृष्ठतः शिष्टगरिष्ठशेखरः
खरांशुभास्वद् द्युतिसन्ततिस्ततः ।
पुराच्चचालाचलकन्दरावली-
र्वाद्यैः प्रकुर्वन् प्रतिशब्दमण्डिताः ॥
श्रीश्रीकरीशोभितपृष्ठयो लसत्-
सुखासनक्ष्मापतिवाहनस्थिता: ।
साम्यं दधाना निविडं विडौजसो
महेभ्यराजस्तदनु प्रतस्थिरे ॥
तरंगरंगत्तुरगाङ्घ्रिसत्खुरैः
खरैश्चलत्स्यन्दनचक्रमण्डलैः ।
भृशं समुत्खातमिलारजोऽगितः
प्राच्छादयत्तापनबिम्बमम्बरं ॥
तदाभुजप्रोत्कटसद्भटावली-
हक्कानिनादैर्हयराजिहेषितैः ।
भेरी-नफेरी-स्वरनायिकास्वरैः
शृगालवत्कालकलिर्ननाश सः ॥
श्रीसंघसत्कैः शकटैर्भरोत्कटै-
र्निपीडितो मूर्ध्नि स शेषपन्नगः ।
कष्टेन पातालतले स्थितस्तदा
कुलाचलाश्चेलुरलं च भारिताः ॥
सुखासन-स्यन्दन-राजवाहन-
श्रीवाहिनीनां वरवाजिनां नृणाम् ।
कश्चिद्विपश्चिद् गुणराजसंघराट्
संघेन संख्यामकरोन्नरोत्तमः ॥
श्रीमन्महीराजगजौ गजोद्धुरः
कालूश्च बालाह्वय ईश्वरः कृती ।
श्रीवाचसूनोस्तनया नयान्विताः
पंचेपुरूपाधिकरूपसम्पदः ॥
पंचाप्यमी पंचमुखाभविक्रमाः
क्रमाञ्जनम्राक्षितिपा भटान्विताः ।
पश्चात्पुरस्ताच्च सृजन्ति यत्नतः
श्रीसंघरक्षां पथि सत्पथस्थिताः ॥
पुरे पुरे श्रीमलिकाश्च राणकाः
सोपायनाः सम्मुखमागताः समे ।
चक्रुः प्रणामं गुणराजनामभृत्-
संघेशिलुर्भूतलरुग्नमौलयः ॥

किं संप्रतिर्भूपतिरेष शासनं
विभासयन् जैनमखण्डशासनः ।
कुमारपालः किमु निर्मितामित-
प्रभावनः पावनपुण्यभावनः ॥
किं वस्तुपालोऽत्र मनोरथान् पृथून्
कृतार्थयन्नार्थिजनस्य शस्यधीः ।
इत्थं सृजन्नूहसमूहमंगिनां
धंधूकके संघपतिः समागमत् ॥

इन श्लोकोंका तात्पर्य यह है कि--जब हर्षके साम्राज्यका दान करनेवाला ऐसा दीपालिका पर्व आया तब-अर्थात् चातुर्मासकी समाप्तिके समय पर--गुणराज सेठने तीर्थयात्राके लिये खूब जबरदस्त तैयारी करनी शुरू की। उसके साथ और भी बडे बडे धनिक लोक मनोरथोंके साथ ही अपने अपने घरोंमें रथों वगैरहको सजाने लगे। तथा सुखासन, सिंहासन आदि जुदा जुदा तरहके वाहन बनाने लगे। हजारों ही ऊंची जातिके घोडे तैयार किये जाने लगे तथा खच्चर और ऊंट सामानसे लदे जाने लगे।

यों तैयारी कर वह चतुर सेठ अनेक प्रकारकी बहुमूल्य भैंटें लेकर अपना राजकर्ता जो अहम्मद बादशाह था उसके पास गया और वे भैंटें उसके सामने रख कर उसको खूब खुश किया।

बादशाहने भी बदलेमें, अपने कयाहि (?) आदि सहचारियोंके साथ, गुणराज सेठको आदरपूर्वक किंमती सरपाव देकर उसका उचित सन्मान किया। इसके उपरांत बादशाहने सेठको संघमें ले जानेके लिये अपना निजका जो बादशाही खेमा था वह समर्पण किया और नफेरी आदि शाही बाजे भी --कि जो खास राजाओंहीके आगे बजाये जा सकते हैं--बजानेके लिये देकर सेठका बहुमान किया। संघकी रक्षाके लिये हजारों ही प्यादे और घोडेसवार सिपाही भी बादशाहने उसके साथ भेजे।

इस प्रकार यात्राके लिये शाही फरमान लेकर, सकल समुदायके साथ, भव्य मुहूर्तमें, याचकगणको इच्छित दान देते हुए, शुभ शकुनपूर्वक गुणराज सेठने अपने नगरसे प्रस्थान किया।

कर्णावतीसे रवाना होकर संघ वीरमगांव प

हुंचा जहां चारों दिशाओंमेंसे असंख्य मनुष्य आ आकर उस संघमें शामिल हुए। फिर शुक्लपक्षके चंद्रकी तरह दिन प्रतिदिन वह समुदाय इस प्रकार अन्यान्य स्थानोंसे आनेवाले जनसमूहसे खूब वढता गया।

संघमें सबसे आगे रथारूढ देवालय (मन्दिर) चलते थे, जो खूब ऊंचे होकर सोनेके कलश और ध्वजा दंडादिसे अलंकृत थे, कुशल कारीगरोंकी की हुई अनेक प्रकारकी चित्र विचित्र रचनाओंके कारण देखनेवालेको चमत्कृत बनाते थे और जिनके अंदर भव्य आकृतिवाली जिन प्रतिमायें सुशोभित थीं।

देवालयोंके पीछे पीछे, सूर्यके समान तेजस्वी ऐसा गुणराज सेठ चलता था जिसके आगे वजनेवाले वाजोंके प्रतिध्वनिसे रास्तेमें आनेवाले वडे वडे पहाड शद्वायमान हो जाते थे। संघपतिके पीछे पीछे, संघमेंके अन्यान्य वडे वडे धनाढ्य लोक चलते थे जो राजाओंके उचित ऐसे सुखासनोंमें बैठे हुए थे और जिनकी अगल-वगलमें नोकर लोक अबदागिरीयां लेकर चलते थे। अन्य वाकीके सैंकडों ही लोक घोडे जुडे हुए रथोंमें बैठे हुए चलते थे कि, जिन रथोंके घोडोंकी खुरियोंसे तथा पहियोंसे उडती हुई धूलके कारण सारा आकाश ढंकसा जाता था।

सुभटोंके हुंकारोंसे, घोडोंकी हिनहिनाटोंसे और भेरी नफेरी आदि वाजोंके घोर शब्दसे, देखनेवालेको मानों यह प्रतीत होता था कि कलिकाल अब इस जगत्‌मेंसे नष्ट हो गया है और फिर सत्‌युगका संचार हो रहा है। उस संघके साथ इतनी गाडियां थीं कि जिनके भारसे दवकर ही मानों शेषनाग पातालमें चला गया है और कुलाचल कम्पित हो रहे हैं। संघके साथ इतने रथ, सुखासन, पालखियां, घोडे और मनुष्य आदि थे कि जिनकी संख्या कोई वडा विद्वान् भी नहीं कर सकता था।

संघपति गुणराज सेठके महीराज, गजराज, काल्हू, वाला और ईश्वर नामके पांच पुत्र थे, जो सिंहके समान पराक्रमी और कामके समान रूपवान् थे। ये पांचों पुत्र संघकी रक्षासंबंधी सारी व्यवस्था रखते थे और सुभटोंके साथ इनमेंसे कोई संघके आगे, कोई पीछे और कोई अगलबगलमें चलता था। इनका पराक्रम और तेज इतना था कि राजा और राणा भी आकर इनके पैरोंमें पडते थे।

जिस जिस गांव और नगरमें सं० गुणराजका वह संघ पहुंचता था वहां के मलिक और राणक आदि सब अधिकारी लोक भेंटें ले लेकर संघके सामने आते थे और जमीनपर सिर टेककर उसको प्रणाम करते थे।

गुणराज सेठके इस महान् संघको देखकर लोकोंके मनमें, पुराणे ग्रन्थोंमें वर्णन किये हुए संप्रतिराजा, कुमारपालराजा और महामंत्री वस्तुपाल आदिके संघोंका स्मरण हो आता था और क्षणभर उनको यही भास हो जाता था कि क्या यह राजा संप्रति, या कुमारपाल, अथवा मंत्री वस्तुपाल ही तो संघ लेकर नहीं आ रहा है? इस प्रकार महान् ठाठके साथ चलता हुआ गुणराजका वह संघ क्रमसे धुंधुका शहरमें पहुंचा। इत्यादि।

खरतर गच्छके महोपाध्याय जयसोमके उपदेशसे सिंधके फरीदपुर नगरसे, वि. सं. १४८४ में, पंजाबके प्रसिद्ध प्राचीन स्थान कांगडेके जैन मंदिरोंकी यात्राके लिये जो संघ निकला था उसका बहुत ही मनोरंजक वर्णन, हमारी संपादन की हुई विज्ञप्ति-त्रिवेणी नामक पुस्तकमें किया हुआ है, जिसमेंका कुछ भाग प्रकृतोपयोगी होनेसे यहां पर दिया जाता है।

"संघको चलते समय वहुत अच्छे और अनुकूल शकुन हुए। फरीदपुरसे थोडी ही दूरी पर विपासा (व्यासा) नदी थी। उसके किनारोंपर, जहां जाम्बु, कदम्ब, नीम्ब, खजूर आदि वृक्षोंकी गहरी घटा जमी हुई थी और नदीके कल्लोलोंसे ऊठी हुई ठंडी वायु मन्द मन्द रीतिसे चली आती थी, ऐसे चांदिके जैसे चमकिले रेतीके मैदानमें संघने अपने प्रयाणका पहला पडाव किया। दूसरे दिन नदीको पार करके जालंधरकी ओर संघने प्रस्थान किया। संघमें सबसे आगे सिपाही चलते थे जो मार्गमें रक्षणके निमित्त लिये गये थे। उनमेंसे किसीके

हाथमें तलवार थी तो किसीके हाथमें खड्ग था। कोई धनुष्य लेकर चलता था तो कोई जबरदस्त लठ्ठ उठाये हुआ था। इस प्रकार सबसे आगे उछलते, कूदते और गर्जते हुए सिपाही चले जाते थे। उनके पीछे बडी तेजीके साथ चलनेवाले ऐसे बडे बडे बैल चलते थे जिन पर सब प्रकारका मार्गोपयोगी सामान भरा हुआ था। उनके बाद संघके लोक चलते थे जो कितने एक गाडी घोडों आदि वाहनों पर बैठे हुए थे और कई एक देव-गुरु-भक्ति निमित्त पैदल ही चलते थे। कितने ही धर्मी जन तो साधुओंकी समान नंगे ही पैर मुसाफरी करते थे। इस प्रकार अविच्छिन्न प्रयाण करता हुआ और रास्तेमें आनेवाले गाँवों को लांघता हुआ संघ निश्चिन्दीपुर के पास के मैदानमें, सरोवर के किनारे आ कर ठहरा। सघके आनेकी खबर सारे गाँवमें फैली और मनुष्योंके झूंडके झूंड उसे देखनेके लिये आने लगे। गाँव का मालिक जो सुरत्राण (सुलतान) करके था वह भी अपने दिवान के साथ एक ऊंचे घोडे पर चढ कर आया, और जन्मभरमें कभी नहीं देखे हुए ऐसे साधुओंको देखकर उसे बडा विस्मय हुआ। उपाध्यायजीने उसे रोचक धर्मोपदेश सुनाया, जिसे सुन कर नगरके लोकोंके साथ वह बडा खुश हुआ और साधुओंकी स्तुति कर उसने सादर प्रणाम किया। बादमें संघपति सोमाका सम्मान कर अपने स्थान पर गया। संघ वहां से प्रयाण कर क्रमसे तलपाटक पहुंचा। वहां पर गुरुओंको वन्दन करने के लिये देवपालपुरका श्रावकसमुदाय आया और अपने गाँवमें आनेके लिये संघको अत्याग्रह करने लगा। उन लोकों को किसी तरह समझा-बुझाकर संघने वहां से आगे प्रयाण किया और विपाशा (व्यासा) नदीके किनारे किनारे होता हुआ क्रमसे मध्य देशमें पहुंचा। जगह जगह ठहरता हुआ संघ इस देश को पार कर रहा था, कि इतनेमें एक दिन, एक तरफसे पोपरेश यशोरथके सैन्यका और दूसरी ओरसे शकन्दर के सैन्यका, " भगो, दोडो, यह फौज आई, वह फौज आई," इस प्रकारका चारों तरफसे कोलाहल सुनाई दिया। इसे सुनकर संघके होंस ऊड गये। सब दिङ्मूढ हो गये। यात्रीलोक दिलमें बडे घबराये और अब क्या किया जाय इसकी फिक्रमें निश्चेष्टसे हो रहे। किसी प्रकार होंस संभालकर और परमात्माका ध्यान धर संघ पीछा लौटा और विपाशा के तटका आश्रय लिया। नावों में बैठ कर जल्दी से उस को पार किया और कुंगुद नाम के घाट में हो कर मध्य, जांगल, जालन्धर और काश्मीर इन चार देशोंकी सीमाके मध्य में रहे हुए हरियाणा नामके स्थान में पहुंचा। इस स्थलको निरुपद्रव जान कर वहां पर पडाव डाला। वहीं पर, कानुक यक्षके मंदिर के नजदीक, शुचि और धान्यप्रधान स्थान में, चैत्र सुदि एकादशी के रोज सर्वोत्तम समय में, नाना प्रकार के वाद्योंके बजने पर और भाट-चारणों के, बिरुदावली बोलने पर, सब संघने इकट्ठा हो कर, साधुश्रेष्ठ सोमा को, उसके निषेध करनेपर भी, संघाधिपतिका पद दिया। मल्लिकवाहनके सं० मागटके पौत्र और सा० देवा के पुत्र उद्धर को महाधर पद दिया गया। सा० नीवा, सा० रूपा और सा० भोजा को भी महाधर पद से अलंकृत किया गया। सैलहस्त्य का विरुद दुच्चासगोत्रीय सा० जिनदत्त को समर्पण किया गया। इस प्रकार वहां पर पद्वीदान करनेके साथ उन उन मनुष्योंने संघ की, भोजन-वस्त्र-आभूषणादि विविध वस्तुओं द्वारा भक्ति और पूजा कर याचक लोकों को भी खूब दान दिया। संघके इस कार्यको देख कर मानों खुश हुआ हुआ और उस के गुणों का गान करनेके लिये ही मानों गर्जना करता हुआ दूसरे दिन खूब जोर से मेघ वर्षने लगा। बेर बेर जितने बडे बडे ओले बादल में से गिरने लगे और झाडों तथा झूंपडीओं को उखाड कर फेंक देनेवाला प्रचण्ड पवन चलने लगा। इस जलवृष्टिके कारण संघ को वहां पर पाँच दिन तक पडाव रखना पडा। ६ वें दिन सवेरे ही वहां से कूच की। सपादलक्षपर्वत की तंग घाटियों को लांघता हुआ, सघन झाडियों को पार करता हुआ, नाना प्रकारके पार्वतीय प्रदेशों को आश्चर्य की दृष्टि से देखता हुआ और पहाडी मनुष्योंके आचार—विचारोंका

अनुभव करता हुआ संघ फिर विपाशाके तट पर पहुंचा। उसे सुखपूर्वक ऊतर कर, अनेक बडे बडे गाँवोंके बीच होता हुआ, और तत्तद् गाँवों के लोकों और स्वामियों को मिलता हुआ, क्रम से पाताल-गंगा के तट ऊपर पहुंचा। उसे भी निरायास पार कर क्रम से आगे बढते हुए और पहाडों की चोटियों को पैरों नीचे कुचलते हुए संघ ने दूरसे सोनेके कलशवाले प्रासादोंकी पंक्तिवाला नगरकोट्ट, कि जिसका दूसरा नाम सुशर्मपुर है, देखा। उसे देख कर संघ-जनोंने तीर्थके प्रथम-दर्शनसे उत्पन्न होने वाले आनंदानुसार, दान धर्मादि सुकृत्यों द्वारा अपनी तीर्थभक्ति प्रकट की। नगरकोट्टके नीचे बाणगंगा नदी बहती है जिसे ऊतर कर संघ गाँवमें जानेकी तैयारी कर रहा था कि इतने में उसका आगमन सुन कर गाँवका जैनसमुदाय, सुन्दर वस्त्राभूषण पहन कर, स्वागत करनेके लिये सामने आया। अनेक प्रकारके वादित्रों और जयजयारवोंके प्रचंड घोषपूर्वक महान् उत्सव के साथ, नगर में प्रवेश किया। सहर के प्रसिद्ध प्रसिद्ध मुहल्लों और बाजारोंमें घूमता हुआ संघ, साधु क्षीमसिंहके बनाये हुए शान्तिनाथदेव के मंदिर के सिंहद्वार पर पहुंचा। 'निसीही निसीही नमो जिणाणं' इस वाक्य को तीन वार बोलता हुआ जिनालयमें जा कर, खरतरगच्छके आचार्य श्रीजिनेश्वरसूरिकी प्रतिष्ठित की हुई शान्तिजिनकी प्रतिमा का दर्शन किया। तीन वार प्रदक्षिणा दे कर, नाना प्रकारके स्तुति—स्तोत्रों द्वारा अत्यंत आनन्दपूर्वक प्रभुकी पर्युपासना की। इस प्रकार संवत् १४८४ वर्षके ज्येष्ठ सुदि पंचमीके दिन, अपनी चिरकाल की दर्शनोत्कण्ठाको पूर्ण कर फरीदपुरका संघ कृतकृत्य हुआ। शान्तिजिन के दर्शन कर संघ फिर नरेन्द्र रूपचन्द्र के बनाये हुए मंदिर में गया और उस में विराजित सुवर्णमय श्रीमहावीरजिन बिंबको पूर्ववत् वन्दन-नमन कर, देवल के दिखाये हुए मार्गसे युगादिजिनके तीसरे मंदिर में गया। इस मंदिरमें भी उसी तरह परमात्माकी उपासना-स्तवना कर निज जन्म को सफल किया।

(विज्ञप्तित्रिवेणि, प्रस्तावना, पृ० ३७—३९)

इस प्रकार और भी अनेक ग्रन्थोंमें अनेक संघोंका वर्णन मिलता है। इस लेखमें हमारा उद्देश सारे संघोंका इतिहास लिखनेका नहीं है, परंतु संघ किस तरहसे निकाले जाते हैं उसका स्वरूप बतलानेका है। इस लिये नमूनेके तौर इतने वर्णन दे कर इस विषयको समाप्त किया जाता है। संघोंका क्रमवार इतिहास हम कभी भविष्यमें लिखना चाहते हैं।

जेसलमेरके पटवोंके संघका वर्णन।

ऊपर हमने 'तीर्थयात्राके लिये निकलनेवाले संघोंका वर्णन' दिया है। इस प्रकारका एक बडा भारी संघ गत शताब्दीके अंतमें, मारवाडके जेसलमेर नगरमें रहनेवाले पटवा नामसे प्रसिद्ध कुटुंबवाले ओसवालोंने निकाला था। इस संघका वर्णन, उसी कुटुंबका बनाया हुआ, जेसलमेरके पास अमरसागर नामक स्थानमें जो जैन मंदिर है उसमें एक शिला पर, उसी समयका लिखा हुआ है। यह शिलालेख मारवाडी भाषामें और देवनागरी लिपिमें लिखा गया है। नीचे इस लेखकी ज्यों कि त्यों नकल दी जाती है। इस लेख की एक कापी प्रवर्तक श्रीकान्तिविजयजी महाराजके शास्त्रसंग्रहमेंसे मिली है; जो उन्होंने किसी मारवाडी लहियेके पास लिखवाई है और दूसरी नकल, वडोदाके राजकीय पुस्तकालयके संस्कृत विभागके सद्गत अध्यक्ष श्रीयुत चिमनलाल डाह्याभाई दलाल एम्. ए. के पाससे मिली है जो उन्होंने मेरे लिये जेसलमेरके किसी यतिके पाससे लिख मंगवाई थी।

॥ ओं नमः ॥

। दूहा ।

रिषभादिक चउवीस जिन पुण्डरीक गणधार ।
मन वच काया एक कर प्रणमु वारंवार ॥ १
विघन हरण संपतिकरण श्रीजिनदत्तसुरिंद ।
कुशल करण कुशलेश गुरु वन्दु खरतर इंद ॥ २
जाके नाम प्रभावतै प्रगटे जय २ कार ।
सानिधकारी परम गुरु सदा रहो निरधार ॥ ३

संवत् १८९१ रा मिति आषाढ सुदि ५ दिने श्रीजेसलमेरु नगरे महाराजाधिराज महारावलजी श्री १०८ श्रीगजसिंघजी राणावत श्रीरूपजी वापजी विजयराज्ये वृहत्खरतर भट्टारकगच्छे जंगमयुगप्रधान भट्टारक श्रीजिनहर्षसूरिभिः पट्टप्रभाकर जं । यु । भ । श्री १०८ श्री जिनमहेन्द्रसूरि उपदेशात् श्रीबाफणागोत्रे देवराजजी तत्पुत्र गुमानचंदजी— भार्या जेतां । तत्पुत्र ५–(१) बहादरमलजी--भार्या चतुरां । (२) सवाईरामजी-- भार्या जीवां । (३) मगनीरामजी--भार्या परतापां । (४) जोरावरमलजी--भार्या चोथां । (५) प्रतापचंदजी--भार्या मानां । एवं बहादरमलजी तत्पुत्र (१) दांनमलजी (२) सवाईरामजी तत्पुत्र सामसिंघ, माणकचंद । सामसिंहपुत्र रतनलाल । (३) मगनीरामजी तत्पुत्र अमृतसिंघजी । तत्पुत्र २ पूनमचंद दीपचंद । (४) जोरावरमलजी तत्पुत्र २ सुरतांनमल चंनणमल । सुरतानमल पुत्र २ गंभीरचंद्र इंद्रचंद्र । (५) प्रताप चंदजी पुत्र ३ हिमतराम-जेठमल-नथमल । हिमतरामपुत्र जीवण । जेठमल पूत्र मूलो । गुमानचंदजी पुत्र्यां २ झबू-वीजू । सवाई रामजी पुत्र्यां ३ सिरदारी-सिणगारी-नांनुडी । मगनीरामजी तत्पुत्र्यां २ हरकवर-हस्तू । सपरिवार सहितेन सिद्धाचलजीरो संघ काढयो । जिणरी विगत—

जेशलमेर उदैपुर कोटैसुं कुंकुमपत्र्यां सर्व देसावरांमे दीनी । च्यार २ जमण कीया नालेर दीया पछै संघ पाली मेलो हूवो । उठे जीमण ४ कीया । संघतिलक करायो । मिति महासुदि १३ दिने भ । श्रीजिनमहेन्द्रसूरिजी श्रीचतुर्विधसंघसमक्षे दीयो । पछे संघ प्रयाण कीयो । मार्गमें देशना सुणतां पूजा पडिक्कमणादि करतां साते क्षेत्रांमें द्रव्य लगावतां जायगा २ सामेला होतां रथजात्रा प्रमुख महोच्छव करतां । श्रीपंचतीर्थीजी वांभणवाडजी आवूजी जीरावलेजी तारंगेजी संखेश्वरजी पंचासरजी गिरनारजी तथा मारगमांहे सहरांरा गामांरा सर्व देहरा जुहारया । इणमांत सर्व ठीकाणें मंदिर २ दीठ चढापो कीयो । मुगट कुंडल हार कंठी भुजबंध कडा श्रीफल नगदी चंद्रवा पुठीया इत्यादिक मोटा तीर्थमाथे चढापो घणो हुवो । गहणो सर्व जडाउ हो सर्व ठिकाणें लांहण जामण कीया सहसावनरा पगथीया कराया । उठेसु सात कोष ठेरे—गामसुं श्रीसिद्धगिरीजी मोरयांसुं वधायनें पाली- ताणें बड़ा हगामसुं गाजावाजतां तलेटीरो मंदिर जुहार डेरां दाखल हुवा । दुजे दिन मिती

वेशाख सुदी १४ दिने शांतिक पुष्टिक हुतां श्रीसिद्धगिरीजी पर्वतपर चढ्या, श्रीमुलनायक चोमुखोजी खरतरवशीरा त्था दुजी वश्यां सर्व जुहारी मास सवा रया। उठे चढापो घणो हुवो। अढाइ लाख जात्री मेला हुवा। पुरब, मारवाड़, मेवाड़, गुजरात, ढुंढाड़, हाडोती, कच्छभुज, मालवो, दक्षण, सिंध, पंजाब प्रमुख देशांरा। उठे लांण रू० १ सेर १ मिश्री घर दीठ दीवी जीमण ५ संघव्यां मोटा कीया जीमण १ बाई बीजु कीयो ओर जीमण पण घणा हुवा। श्रीचोमुखाजीरे वारणे आलामे गोमुख यक्ष चक्रेश्वरीरी प्रतिष्ठा करायनें पधराइ चोमुखाजीरो सिखर सुधरायो एक नवो मंदिर करावण वास्ते नींव भराई। जुना मंदिरांरा जीर्णोद्धार कराया जन्म सफल कीयो। गुरुभक्ति इंण मुजब कीवी। इग्यारे श्रीपूज्यजी था २१०० साधु साध्वी प्रमुख चौरासी गछांरा। तिहां, प्रथम स्वगछरा श्रीपूज्यजीरी भक्ति साचवी। हजार ५ रो नगद माल दीयो दूजो खरच भर दीयो पछे अनुक्रमें सारा दुजा श्रीपुजांरी साधु साध्वीयांरी भक्ति साचवी। आहार पांणी गाड़ीयांरो भाडो तंबु चीवरो ठांणे दीठ रू ४१ दीया नगद। दुशाला वालांनें दुशाला दीया। सेवग ५०० हा। जिणांनें जणें दीठ रू० २१ दीया। रोटी खरच अलग। पहेरणारा मोजा ओषध खरची सारू रुपीया चाहीज्या जिणांनें दीया। पछे। भ। श्रीजिनमहेंद्रसुरिजी पासे सिंघव्यां २१ संघमाला पहरी जिणमें माला २ गुमास्ते सालगराम महेश्वरीनें पहराइ। पछे बडा आडंबरसुं तलेटीरो मंदिर जुहार डेरां दाखिल हुवा। जाचकांनें दान दीनो। पछे जीमण १ कीयो। साधर्म्योनें सिरपाव दीया। राजा डेरे आयो। जिणनें हाथी सिरपावमें दीयो। दुजा मार्गमें राजवी नवाब प्रमुख आया डेरे, जिणांनें, राजमुजब सिरपाव दीया। श्रीमुलनायकजीरे भंडाररे ताला ३ गुजरातीयांरा था सु चोथो तालो संघव्यां आपरो दियो। सदावर्त सरू हेईज। ईसा २ मोटा काम करचा पछे संघ कुशलक्षेमसुं अनुंक्रमें राधणपुर आयो। जठे अंगरेज श्रीगोड़ीजीरा दर्शण करणनें आयो। उठे पांणीं नही थो सुं गेबाउ नदी नींसरी। श्रीगोडीजीनें हाथीरे होदे विराजमान कर संघनें दरशण दिन ७ इकलग करायो चढापेरा साढा तीन लाख रूपीया आया सवा महीनो रया, जीमण घणा हुवा। श्रीगोडीजीरे विराजणने बडो चोतडो पक्को करायो ऊपर छतरी बणाई। घणो द्रव्य खर्च्यो बडो जश आयो अक्षत नाम कीयो। साथे गुमास्तो महेश्वरी शालगरांम हो जिणनें जैनरा शिवरा सर्व तीर्थ कराया। पछे अनुंक्रमें संघ पाली आयो। जीमण १ करनें दानमलजी कोटे गया पछे भाइ ४ जेसलमेर आया। डेरा दरवाजे बाहर कीया पछे सामेलो बडा ठाठसुं हुवो। श्रीरावलजी सांमा पधाऱ्या। हाथीरे होदे, संघव्यांनें श्रीरावलजी आपरे पुठे बेषाणनें सारा शहिरमें हुय देहरा जुहार ऊपाश्रये आय हवेल्यां दाखल हुवा। पछे सर्व महेश्वरी वगैरे छत्तीस पांनने लुगायां समेत पांच पकवानसुं जीमाया। ब्राह्मणाने जणे दीठ रू० १ दक्षणारो दीयो पछे श्रीराउलजी जनांनें सहित संघव्यांरे हवेली पधाऱ्या। रूपीयांसुं चोतरो कीयो। सिरपेच कंठी मोत्यांकी कडा जडाउ दुशालां नगदी हाथी घोडा पालखी निजर कीया। पाछा श्रीरावलजी इण मुजब हीज शिरपाव दीयो। एक लोद्रवोजी गाम तांबापत्रां पट्टे दीयो इतो इजारो कीयो।

आगे पिण इणांरी हवेली—उदेपुर राणाजी, कोटेरा महारावजी, बीकानेररा किषनगढरा बुंदीरा राजाजी इन्दोररा हुलकरजी प्रमुख सर्व देशांरा राजवी जनानें समेत इणारे घरे पधाऱ्या देणो लेणो हजारांरो कीयो। दिल्लिरे पातसाहरी अंगरेजारे पातसाहरी दीयोडी सेठ पदवी हे सो विक्षातही ज हे। पछे संघरी लाहण न्यातमें दीवी पुतली १ सोनेकी वाली १ मीश्री सेर १ घर दीठ दीवी। जीमण कीया पछे सेरमें ठावाठावांनें सीरपाव दीया। यढमांहेलां मंदिरां लोद्रवे ऊपाश्रये वडो चढापो कीयो इण मुजवही ज उदयपुर कोटे देणो लेणो कीयो। संघमें देहरासररो रथ हो जणरा इकावन सो लागा। त्रगडा सोनें रूपेरा २ जिणरा दश हजार लागा मंदिररा सोने रूपेरी वासणांरा १५ हजार लागा। दुजा फुटकर सराजांमरा लाख १ रू० लागा।

हवे संघमें जावतो हो जिणरी वीगत—तोफां ४, पलटनरा लोग ४०००, अशवार १५००, नगारे नींशाण समेत। उदैपुर राणाजीरा असवार ५०० नगारे निसाणे समेत। कोटेरा महारावजीरा अशवार १०० नगारे नीसाण समेत। जोधपुररे राजाजीरा असवार ५० नगारे नींसाण समेत। पायदल १०० जेसलमेररा रावलजीरा, असवार २०० टुंकरे नबाबरा, असवार ४०० फुटकर असवार २०० घरु ओर अंगरेजी जावतो, चपडासी तिलंगा सोनेरी रूपेरी घोटेवाला जायगा २ परवानां बोलावा एवं पालख्या ७ हाथी ४ म्याना ५१ रथ १००, गाड्यां ४००, उंठ १५००, इतरातो संवऱ्यांरा घरु। संघरी, गाड्यां उंठ प्रमुख न्यारा, सर्व खरचरा, २३०००००, तेवीसलाख रू० लागा ॥

इति संघरी संक्षेप प्रशस्ती लिखी।

ओर—पण ठीकाणे २ धर्मरा काम करया सो संक्षेपे लिखीये छै—श्री धुलेवेजीरे वारणें नोबत खांनो करायो गहणो चढायो, लाख १ लागा। मक्षीजीरे मंदिररो जीर्णोद्धार करायो। उदेपुरमें मंदिर, दादासाहिबरी छतरी, धर्मशाला कराइ। कोटेमें मंदिर धर्मशाला दादासाहिबरी छतरी कराइ। जेसलमेरमें अमरसागरमें बाग करायो जिणमें मंदिर करायो जयवंतोरो उपाश्रय करायो लोद्रवेमें धर्मशाला कराइ, गढमाथे जमी मंदिरके लिये लीवी बीकानेरमें दादासाहिबरी छतरी कराई इत्यादिक ठीकाणें २ धर्मरा आहीठाण कराया श्रीपुज्यजीरा चोमासा जायगा २ कराया पुस्तकांरा भंडार कराया भगवतिजी प्रमुख सुण्या प्रश्न दीठ २ मोती धऱ्या। कोटामें दोय लाख रूप्यादेकर बंदीखानो छोडायो बीज पांचम आठम इग्यारस चउदशरा उजमणा कीना इत्यादिक काम धरमरा कीया ओर कर रयाहे। इत्यलम् ॥

सवइयो ३१ सो—

शोभनीक जे साणमें बाफणा गुमानचंद ताके सुत पांच पांडव समान हे।
संपदामें अचल बुद्धिमें प्रबल रावराणाही मानें जाकी कान हे।
देवगुरु धर्मरागी पुन्यवंत वडभागी जगत सहु बात मानें प्रमान हे।
देशहु विदेशमांह कीरत प्रकाश कीयो सेठ सउ हेठ कवि कर्त बखानहे ॥ १ ॥

दुहा—

अठारसे छनुंवे जेठमास सुदि दोय ।
लेख लिख्यो अति चुंपपुं भविपण वांचो जोय ॥ १ ॥
सकल सुरि शिर मुगटमणि श्रीजिनमहेंद्रसुरिंद ।
चरणकमल तिनके सदा सेवे भिवियण वृंद ॥ २ ॥
कीनो आग्रहथकी जेसलमेरु चोमास ।
संघ सहु भक्ति करे चढते चित्त उल्लास ॥ ३ ॥
ताकी आज्ञा पाय करि धरि दिलमें आणंद ।
ज्युं थी त्युं रचना रची मुनि केसरीचंद ॥ ५ ॥
भुलो जो परमादमें अक्षर घटही बाध ।
लिखत खोट आइ हुवे, सो खमीयो अपराध ॥ ५ ॥

॥ इति प्रशस्ति सम्पूर्णम् ॥

के निकालनेवालेके वंशज आज भी माजूद हैं और मालवाके रतलाम वगैरह शहरोंमें उनकी वडी वडी दुकानें चलती हैं । इस संघके जैसा वडा संघ, इसके बाद जैन समाजमेंसे फिर कोई नहीं निकला और शायद अब कोई निकाले वैसी आशा भी नहीं है ।

इस कुटुंबने संवत् १९२८ में, जेसलमेरमें जो एक वडा भारी प्रतिष्ठामहोत्सव किया था उसका लेख भी उपर्युक्त लेखवाले मंदिरमें लगा हुआ है । यह लेख कुछ संस्कृत और कुछ मारवाडी भाषामें है । संग्रहकी दृष्टिसे इस लेखको भी यहांपर प्रकट कर दिया जाता है ।

" स्वस्ति श्रीविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १९२८ शालीवाहनकृत शाके १७९३ प्रवर्तमाने मासोत्तममासे माघमासे धवलपक्षे त्रयोदश्यां तिथौ गुरुवासरे महाराजाधिराज महारावलजी श्री श्री १००८ श्री वैरीशालजी विजयराज्ये श्रीमज्जेसलमेरुवास्तव्य ओसवंशे बाफना गोत्रीय संघवी सेठ गुमानचंदजी तत्पुत्र प्रतापचन्द्रजी तत्पुत्र हिमतरामजी जेठमलजी नथमलजी सागरमलजी उमेदमलजी तत्परिवार मूलचंद सगतमल केसरीमल रिषभदास मांगीदास भगवानदास भीखचंद चिंतामणदास लुणकिरण मनालाल कन्हैयालाल सपरिवारयुतेन आत्मपरकल्याणार्थं श्रीसम्यक्त्वोद्दीपनार्थं च श्री जेसलमेरुनगरसत्क अमरसागरसमीपवर्तिनि समीचीनाऽऽरामस्थाने श्रीरिषभदेवजिनमंदिरं नवीनं कारापितं तत्र श्री आदिनाथ बिंबं प्राचीन बृहत्खरतरगणनाथेन प्रतिष्ठितं तत् श्रीजिनमहेन्द्रसूरि पदपंकजसेविना बृहत्खरतरगणाधीश्वरेण चतुर्विधसंघसहितेन श्रीजिनमुक्तसूरीणां विधिपूर्वमहता महोत्सवेन शोभनलग्ने श्रीमूलनायकचैत्ये स्थापितं । पुनः अनेक बिंबानामंजनशिलाका कारिता । पुनर्द्वितीयभुमिप्रासादे स्वप्रतिष्ठित श्री पार्श्वनाथबिंब मुलनायकस्थापितं पुनर्वीश विहरमान प्रतिष्ठा कृतं मंदिरस्य दक्षिणपार्श्वे दादासाहिब कुशलसूरि गुरुमूर्ति स्थापनकृता । तथाच जिनदत्तसूरि कुशलसूरि चरणपादुका पुनरपि श्रीजिनहर्षसूरि महेन्द्रसूरि चरणपादुका स्थापिता ।

भाई सवाईरामजीके घरका आया । रतलामसुं चि० सोभागमल चांदमल सौभाग्यमलकी माजी वगेरे आया । उदेपुरसुं चि० सिरदारमल तथा इणांरी माजी वगेरे आया । ओर

पण घणे देशावरांसु संघ आयो । स्वामीवच्छल प्रमुखकरी ३ श्रीसंघकी भक्ति करी । तथा पांच शिष्यांने श्रीपूज्यजी म्हाराजके हांथसें दीक्षा देराइ । दिन १५ तक वडो ठाठ उछव नित्य नवीन पूजा प्रभावना हुइ । श्रीदरबार साहिब पधान्या । तोफांका फेर हुवा । सेठांके पगमें सोनो बगसीयो । फेर श्रीसंघसमेत जेसलमेर आया उजमणा प्रमुख कीना । श्री-पूज्यजी महाराजकी पधरावणी २ कीनी जिणमें हजारा रुपीयांको माल असबाब भेट कीनो । उपाध्याय वगेरे ठावा ठावा ठाणानें रोकडा शालजोडी इत्यादि यथायोग्य दीना । उपाध्याय साहिबचंदजी गणि । पं. । प्र. । भेरजी गणि पं. प्र. अमरचंदजी गणि प्रमुख ठाणा ४१ था । ठाणें दीठ रू. १० दश रोकडा थांन प्रत्येके दीना । परगच्छीय यति-यांको सतकार अछीतरे कीनो । श्रीसरकारकी पधरामणी कीनी । घोडा लवाजमो नजर कीनो । मुसद्दी वगेरे सर्वनें यथायोग्य शिरोपाव दीना ॥

श्रीजिनभद्रसूरि शाखायां पं. प्र. श्रीमयाचंदजी गणि तत्शिष्य पं. सरूपचंदजी मुनि जेसलमेरु आदेशिना इयं प्रशस्ति रचिता ।

शिलावट विरामके हाथसुं श्रीमंदिरजी वणिया जिणके परिवारने सोनेकी कंठियां तथा कडीकी जोडियां मंदील डुपट्टा थांन वगेरे शिरपाव दीना ॥

श्रीमंदिरके मूल गुंभारेमें आसेपासे दक्षणकी तर्फ परतापचंदजीकी खडी मूर्ति छे। उत्तरकी परतापचंदजीकी भार्याकी खडी मूरती छे । निजमंदिरके सामनें पूर्वकी तर्फ पश्चिममुखी चोतरो कराय जिण ऊपर परतापचन्दजीकी तथा भार्यासहित सपरिवार सही-तकी मुरतीयां स्थापित किनीं ।

सम्वत् १९४५ मिति मार्गसिर सुदी २ वार बुध । दशकत सगतमल जेठमलांणी वाफनाका । शुभं ।

दुहा—अष्टकर्म वन दाहके भये सिद्धजिनचंद ।
ता सम जो अप्पा गिणे ताकुं वंदे चंद ॥
कर्मरोग ओपधसमी ग्यानसुधारस वृष्टि ।
शिवसुख अमृत वेलडी जय जय सम्यक्दृष्टि ॥
एहीज सद्गुरु सीख छे एहीज शिवपुर माग ।
लेजो निज ग्यानादि गुण करजो परगुण भाग ॥
भेद ग्यान श्रवण भयो समरस निरमलनीर ।
अन्तर धोबी आतमा धोवे निजगुण चीर ॥
कर दुःख अंगुरी नेनदुःख तन दुःख सहज समान ।
लिख्यो जात हैं कठणसु शठ मानत आशान ॥

॥ इत्यलम् ॥

शोक समाचार।

[१]

जैन साहित्य संशोधकके पाठकोंको यह समाचार देते हुए हमें बडा दुःख होता है कि, कलकत्ता नगरके प्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय डॉ. सतीशचन्द्र विद्याभूषणजीका गत तारीख २५ अप्रेलको असमयहीमें स्वर्गवास हो गया। विद्याभूषणजी भारतवर्षके नामी विद्वानोंमेंसे एक थे। आप अंग्रेजी भाषाके तो आचार्य (एम्. ए) थे ही, साथमें संस्कृत, प्राकृत, पाली, तिब्बती आदि भाषाओंके भी उत्तम ज्ञाता थे। ब्राह्मण, बौद्ध और जैन धर्मके दर्शन शास्त्रोंमें आपकी उल्लेख योग्य गति थी और पुरातत्त्व शास्त्रके आप अच्छे पण्डित थे। आप स्वभावके बडे सरल और हृदयसे पूरे निष्पक्षपात थे। ज्ञानार्जन करना ही आपका परम ध्येय था। आपका विद्याव्यासंग आश्चर्यजनक था। अंग्रेजीकी एम्. ए. परीक्षाके पास करनेके पहले ही संस्कृत भाषामें आपने इतनी व्युत्पत्ति कर ली थी कि जिससे नवद्वीप-विबुध-जन-सभाने प्रसन्न होकर आपको 'विद्याभूषण' की पद्वी प्रदान की थी। एम्. ए. पास करनेके बाद कुछ काल तक आप कृष्णनगर कालेजमें संस्कृतके प्रोफेसर रहे। इसी समयके मध्यमें आपने काव्य और न्यायशास्त्रका अभ्यास भी आगे बढाया; और साथमें तिब्बती भाषाका ज्ञान भी संपादन किया। आपकी इस योग्यताको देखकर बंगालकी सरकारने आपको तिब्बती भाषका अनुवादक नियत किया और साथमें उसका एक शब्दकोष बनानेका काम दिया। यह काम आपने बडी योग्यताके साथ समाप्त किया। इससे सरकारने आपको फिर कलकत्ता-संस्कृतकालेजके अध्यापकके पदपर नियुक्त किया। वहां आपने अध्यापकी करते हुए पाली भाषाके अध्ययनका प्रारंभ किया और सन् १९०१ में उसकी एम्. ए. की परीक्षा देकर उसमें प्रथम श्रेणिमें प्रथम नम्बर प्राप्त किया। आपके इन परीक्षापत्रोंकी जांच करनेवाला उस समयमें भारतमें वैसा कोई विद्वान् नहीं था इस लिये वे पत्र लन्दनविश्वविद्यालयके पालीभाषा और बौद्ध साहित्यके प्रधानाध्यापक महाशय रीज डेवडिके पास भेजे गये थे। इन परीक्षक महाशयने सतीश चन्द्रजीके वे परीक्षापत्र पढकर कलकत्ता युनिवर्सिटीके रजीस्ट्रारको लिखा कि—इनका पाली भाषाका ज्ञान सर्वोत्तम दर्जेका है। इसके बाद आपकी वहांसे बदली हुई और फिर आप प्रेसीडेन्सी कालेजके सिनियर प्रोफेसर बनाये गये।

सन् १९०५ में जब बौद्ध तीर्थोंकी यात्रा करनेके लिये बी-सी-लामा हिन्दुस्थानमें आये तब भारतसरकारने आपको लामा महोदयके साथ घूम कर उन्हें भारतके बौद्ध तीर्थोंका ऐतिहासिक महत्त्व समझानेका काम दिया। आपने यह काम इतनी उत्तमताके साथ किया कि जिससे लामा महाशयने खुष होकर, प्रेमोपहारके रूपमें आपको एक रेशमी चादर—जिसे वे लोग 'खाताग' करते हैं—समर्पित की। आपकी इस प्रकारकी सब विषयोंमें निपुणता देखकर भारत सरकारने आपको महामहोपाध्यायकी उत्तम पाण्डित्य और सम्मानसूचक पद्वी प्रदान की।

इसी अरसेमें आपने 'मिडिवल स्कूल आफ दि इन्डियन लॉजिक' नामक जैन न्याय और बौद्ध न्यायके इतिहास विषयकी प्रसिद्ध पुस्तक लिखी जिसके कारण कलकत्ता युनिवर्सिटीने आपको 'डाक्टर आफ फिलासफी' की प्रधान उपाधिसे सम्मानित किया।

सन् १९०९ में, बंगाल सरकारने आपको बौद्ध धर्मका सविशेष प्रत्यक्ष ज्ञान संपादन करनेके लिये लंका भेजा। वहां पर, सुमंगल स्थविर—जो लंकाके प्रधान बौद्ध स्थविर और कोलंबोके विद्योदय कालेजके अध्यक्ष थे—के पास उस विषयका तलस्पर्शी ज्ञान संपादन किया। वहांसे फिर आप बनारस पहुंचे और वहां पर न्याय आदि दर्शन शास्त्रोंमें उत्तीर्णता प्राप्त की।

फिर १९१० में आप कलकत्ता संस्कृत कालेजके प्रधानाध्यापक बनाये गये और तबसे आखिर तक आप इसी पद पर प्रतिष्ठित रहे। इसके सिवाय, साहित्य और शिक्षा विषयक अने सभा-सोसाटि-

योंके आप अध्यक्ष और सदस्य आदि समय समय पर नियुक्त किये गये थे।

कलकत्तेमें, शास्त्रविशारद जैनाचार्य विजयधर्म-सूरिजीसे आपकी मुलाखात हो गई थी जिससे आपको जैनसाहित्यसे भी बहुत कुछ परिचय मिल गया था। आप उक्त जैनाचार्यजीके बडे प्रशंसक थे और उनकी प्रेरणासे आपने कलकत्ता-विश्वविद्यालयके पठनक्रममें जैनसाहित्यको भी कुछ स्थान दिलाया था। जैन न्यायके इतिहास विषयक उपर्युक्त पुस्तकके सिवाय जैनसाहित्यके प्रथम तर्क ग्रन्थ न्यायावतारका आपने अंग्रेजीमें अनुवाद भी किया है। भारतके दर्शन शास्त्रोंके इतिहासमें आपको बडा रस था और इस लिये इस विषयमें आपने अंग्रेजी और आपनी मातृभाषा बंगलामें अनेक छोटे बडे निबन्ध लिखे हैं।

जैन साहित्यविषयक आपका प्रेम देख जैन स-माजने भी आपका यथोचित गौरव किया था। सन् १९१३ में बनारसमें जो अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभाका अधिवेशन हुआ था उसके आप अध्यक्ष बनाये गये थे और सभाने आपको 'जैनसिद्धान्त महोदधि'की उपाधि समर्पित कर सत्कृत किया था। इसके अगले वर्ष जब जोधपुरमें जैनसाहित्य सम्मेलन हुआ तब भी आप उसके सभापति नियत किये गये थे।

गतवर्ष जब यहां पर (पूनेमें) 'प्रथम प्राच्यवि-द्यापरिषद्' हुई थी तब आप यहां पर भी आये थे और परिषद्के पालीभाषा और बौद्धसाहित्य विषय-क विभागके अध्यक्ष बनाये गये थे। उस समय हमारी भी आपसे भेंट हुई थी और परिषद्में जब हरिभद्रसूरिका समय निर्णय विषयक हमारा लेख पढा गया तब खास तौरसे उसे सुननेके लिये आप वहां पर उपस्थित हुए थे। हरिभद्रसूरिके समयके विषयमें आपका और हमारा मतभेद था। इस लिये इस विषयमें खास चर्चा करनेके लिये, उक्त परि-षद्की समाप्तिके दिन आप उत्कंठापूर्वक हमारे स्थानपर भी आये थे; और बहुतसी बातचीत कर बडे प्रसन्न हुए थे। चलते समय आप हमसे आग्रह कर गये थे कि, जब हमारा उक्त निबन्ध छपकर प्रकाशित हो जाय तो तुरन्त उसकी एक प्रति आपके पास भेज दी जाय, कि, जिससे आप आपनी जैन न्यायके इतिहास विषयक उपर्युक्त पुस्तककी दूसरी आवृत्तिमें, जो वर्तमानमें छप रही है, हरिभद्र सूरिके समयवाला उल्लेख ठीक सं-शोधित कर दिया जा सके। परन्तु खेद है कि, हमारे उस निबन्धके प्रकाशित होनेके पहले ही, गत २५ अप्रेलको आप इस क्षणभंगुर संसारको छोडकर स्वर्गमें जा बसे।

आपकी इस अकालमृत्युसे भारतवर्षके विद्या-व्यसनी विद्वानोंमेंसे एक बडी भारी व्यक्ति अदृश्य हो गई और जैन साहित्यका एक प्रतिष्ठित और प्रामाणिक पण्डित लुप्त हो गया!

[२]

हमें इन पंक्तियोंके लिखते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि, इस पत्रके प्रथम अंकमें, जिन प्रो० सी. वी. राजवाडेका 'जैनधर्मका अध्ययन' शीर्षक लेख प्रकट हुआ है और जिनका संक्षिप्त परिचय हमने उसी अंकके 'सम्पादकीयविचार' वाले एक नोट-में दिया है, वे आज इस संसारमें नहीं है। गत ८ मईको नासिकमें जहां, पर आरोग्यप्राप्तिके लिये पि-छले कुछ महिनोंसे आप विश्रान्ति ले रहे थे, आपका शरीरपात हो गया। जैन साहित्य संशोधकके गतांकमें प्रकाशित उक्त लेख और हमारे नोटको आप देख भी नहीं पाये। यह किसको कल्पना थी कि इस प्रस्तुत अंकमें हमें अपने पाठकोंको आपका कोई विशिष्ट लेख भेंट करनेके बदले आपकी मृत्युके लिये दुःखोद्गार भेंट करने पडेंगे। कालस्य कुटिला गतिः।

राजवाडेजी बडे बुद्धिशाली और एक होनहार विद्वान् थे। आपको ग्रेज्युएट हुए अभी पूरे १० वर्ष भी नहीं हुए थे। सन् १९१२ में यहां (पूना) के फर्ग्युसन कालेजमें अध्ययन समाप्त कर आपने बी. एस्. सी. की डिग्री प्राप्त की और १९१४ में पाली और अंग्रेजीकी एम्. ए. परीक्षा पास की। इसके बाद तुरन्त ही आप बरोडा कालेजमें पाली और अंग्रेजीके प्रोफेसर नियुक्त हुए। वहां आपने अपने अध्यापन कार्यके सिवाय पालीसाहित्यके

प्रकाशनका कार्य भी शुरू किया। आपकी यह बडी उत्कट इच्छा थी कि समग्र पाली साहित्य देवनागरी लिपिमें छपाकर प्रकट किया जाय, ताकि जिससे भारतवासी,—जो आज पिछले डेढ हजार वर्षसे इस अनन्यतुल्य साहित्यका परिचय भुले हुए हैं—पुनः परिचय प्राप्त कर सकें और उसके द्वारा सम्यक्‌ सम्बुद्ध भगवान्‌ गौतम बुद्धके अमूल्य उपदेशोंका आस्वादन कर सकें। इससे आपने सबसे पहले 'हत्थवनगल्लविहारवंस' नामकी एक छोटीसी पाली पुस्तिका छपाई और उसके बाद 'मज्झिमानिकाय'का एक भाग प्रकट किया। इसी बीचमें आपने विविध परिशिष्ट और उपयुक्त टिप्पणियोंके साथ 'दीर्घनिकाय' का समग्र अनुवाद भी अपनी मातृभाषा मराठीमें किया। इसका एक भाग बडौदा राज्यकी औरसे प्रकाशित होनेवाली ग्रन्थमालामें प्रकट भी हो चुका है। आप शीघ्र ही, अपने सहाध्यायी और सहकारी प्रो० बापट (फर्ग्यूसनकालेज, पूना) और प्रो० भागवत (सेंट झेवियर कालेज बम्बई) के संयुक्त परिश्रमसे प्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ विसुद्धिमग्गकी एक सर्वोत्तम देवनागरी आवृत्ति प्रकट करनेकी तैयारी कर रहे थे।

आपका विद्याव्यासंग बडा उत्कट था। अंग्रेजीके आप आचार्य थे ही; साथमें आप जर्मन और फ्रेंच भाषाओंका भी अपेक्षित ज्ञान रखते थे। भारतीय भाषाओंमें संस्कृत, पाली, प्राकृत जैसी प्राचीन और शास्त्रीय भाषाओंका यथेष्ट अध्ययन कर आपने बंगाली, गुजराती, हिन्दी जैसी वर्तमान देशभाषाओंमें भी आवश्यकीय प्रवेश कर लिया था।

जबसे आपका हमारे साथ परिचय हुआ तबसे जैनसाहित्यका विशिष्ट अध्ययन करनेकी भी आपकी तीव्र लालसा हो गई थी। जैनसाहित्यसंशोधकके लिये आपने जैन और बौद्ध साहित्य विषयक तुलनात्मक लेखमालाके लिखनेका सोत्साह स्वीकार किया था। जैन-ग्रन्थोंके प्राप्त करनेकी आप कितनी उत्कट आकांक्षा रखते थे इसका परिचय तो पाठकोंको हमने गतांकमें जो नोट दिया है उसीसे मिल सकेगा। भावनगरसे हमारे एक सज्जन (श्रीयुत हीरालाल अमृतलाल शाह) ने कुछ जैन ग्रन्थ जब आपके पास नाशिक भेजे, तब आप अधिक अस्वस्थ होनेके कारण आपके सम्बन्धियोंने उन ग्रन्थोंका आपसे जिकर न करके ज्यों के त्यों एक किनारे रख दिये। पीछेसे जब आपको उसकी खबर लगी तब आप बहुत अधीर हो ऊठे और विना उन ग्रन्थोंके दर्शन किये और पन्ने उलट-पुलट किये आपको चेन नहीं पडा। उन ग्रन्थोंको देखते ही आपने हमको, वैसी अस्वस्थतामें भी एक पत्र लिखा और पुस्तकोंकी प्राप्तिके लिये प्रसन्नता प्रकट की। इसीका नाम सच्चा विद्याव्यासंग है।

क्रूर कालने इस प्रकार असमयहीमें आपको ऊठा ले जा कर भारतवर्षके एक तेजस्वी विद्वत्तारत्नको उदित होनेके पहले ही अस्तंगत कर दिया। आपकी अमर आत्माको अक्षय शांति मिले यही हमारी आपके लिये अन्तिम प्रार्थना है।

[३]

गत जुलाई मासकी अंतिमरात्रि भारतवर्षके इतिहासमें बडी दुःख और खेदजनक रात्रि मानी जायगी। क्यों कि उस कालरात्रिके दुःखोत्पादक अधम वातावरणने भारतके अद्वितीय प्रतापवान्‌ और प्रकाशपूर्ण प्रदीपको सदाके लिये निर्वाणावस्थामें पहुंचा दिया। हम ये शब्द अपने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक महोदयकी मृत्युको लक्ष्य कर कह रहे हैं। लोकमान्यका अधिक परिचय देनेकी कोई आवश्यकता नहीं क्यों कि भारतमें ऐसा कोई अभागा प्राणि नहीं है जो लोकमान्यको थोडा बहुत नहीं जानता हो। और बाकी यों आपका पूर्ण परिचय देनेकी शक्ति भी किसमें है। चाहे जितना भी लंबा परिचय लिखा जाय तो भी वह हमेशा अपूर्ण ही रहेगा।

आपमें जिन अनेकानेक उत्तमोत्तम शक्तियोंने आकर निवास किया था, उनमेंसे एक एक शक्ति ही मनुष्यको संसारमें पूज्य और मान्य बना सकती है, तो फिर ऐसी अनेक शक्तियोंके केन्द्रभूत बने हुए आपके महान्‌ व्यक्तित्वकी पूज्यता और मान्यताका तो माप ही कैसे किया जाय। आप क्या नहीं थे? आप प्रकाण्ड प्रतिभाशाली थे, उत्कृष्ट सदाचारी थे, परम परोपकारी थे, अगाध

धैर्यवान् थे, आदर्श कर्तव्यवान् थे, असाधारण ज्ञानवान् थे, महान् देशभक्त थे, अनुपम लोकप्रिय थे, सर्वोत्तम राष्ट्रसूत्रधार थे, गंभीर राजनीतिज्ञ थे, संपूर्ण स्वार्थत्यागी थे, निष्काम कर्मयोगी थे, धुरंधर साहित्य सेवी थे, उत्तम लेखक और निपुण वक्ता थे; सब कुछ थे और संपूर्ण रीतिसे थे।

जैन साहित्य संशोधकके कार्य क्षेत्रकी विशिष्टताको लक्ष्य कर, हम यहां पर आपकी अनेकानेक शक्तियोंमेंसे केवल उस एक ही शक्तिका संक्षिप्त उल्लेख करते हैं जिसके कारण आप संसारमें एक श्रेष्ठ विद्वान् माने गये। वह शक्ति आपकी अत्यंत सूक्ष्म संशोधक बुद्धि–गहन गवेषणा शक्ति थी। आपकी इस संशोधक बुद्धिका जर्मनी, इंग्लेंड और अमेरिकाके विद्वानों तकने गौरव किया है। विद्वानोंको आपकी इस शक्तिका प्रथम परिचय सन् १८९२ में मिला था। उस वर्ष लण्डन नगरमें होनेवाली 'प्राच्य विदोंकी आंतरराष्ट्रीय परिषद् (The International Congress of Orientalist) में वेदोंकी प्राचीनताके विषयमें आपने एक गहन गवेषणा और अत्यन्त अनुसन्धानपूर्ण मौलिक निबन्ध भेजा था जो फिर अगले वर्ष (सन् १८९३) 'ओरायन (ORION)'के नामसे पुस्तकरूपमें प्रकाशित किया गया था। इसपुस्तकमें आपने ज्योतिष शास्त्रके नियमानुसार नक्षत्रोंकी गति ऊपरसे यह बतलाया है कि, ऋग्वेदमें जो 'ओरायन=आग्राहायण नक्षत्र संबंधी ऋचायें मिलतीं हैं उनसे उनका रचना समय कमसे कम ई. स. से ४००० वर्ष पूर्व होना सिद्ध होता है। आपकी इस गवेषणाको पढ कर प्रो. मेक्षमुलर, विटनी, वेबर, बुल्हर और ब्लुमफील्ड जैसे प्रख्यात संशोधक विद्वानोंने आपकी शोधक बुद्धिकी उत्तम प्रशंसा की थी। डॉ. ब्लुमफील्डने तो आपकी इस गवेषणाको "विज्ञान और संस्कृतके जगत्में एक हलचल मचादेनेवाली घटना" बतलाई थी और कहा था कि "निस्सन्देह, इस पुस्तकसे साहित्य संसारके आगामी वर्षमें खूब सनसनी फैल जायगी। इस वर्ष, इतिहासको तिलककी खोजके फलको अपनाने ही में सारा समय लगा देना होगा।" तिलक महाशयके इस सिद्धान्तकी, जर्मनीके विद्वान् डॉ. जेकोबीके सिद्धान्तसे अचिन्त्य समानता हो गई थी। क्यों कि डॉ. जेकोबी भी अपनी स्वतंत्र गवेषणाद्वारा वेदोंका रचना समय लगभग वही स्थिर कर सके जो तिलक महाशयने किया। इससे पुरा तत्त्वज्ञोंमें आज यह सिद्धान्त तिलक-जेकोबी (Tilak-Jacobi theory) के संयुक्त नामसे व्यवहृत होने लगा है।

ऐसा ही अनुसन्धानात्मक दूसरा ग्रन्थ आपका 'वेदोंमें आर्योंका उत्तर ध्रुवनिवास (The Arctic Home in the Vedas)' है। यह ग्रन्थ सन् १८९७ में जब आपको दूसरी वार कारागृहवास मिला था तब लिखा गया था। वेद, ब्राह्मण आदि संस्कृत ग्रंथ, पारसियोंके जिन्द–अवेस्ता ग्रन्थ और पश्चिमीय विद्वानोंके लिखे हुए भूगर्भविद्या सम्बन्धी नवीन ग्रन्थोंका सूक्ष्म अध्ययन और मनन कर आपने इस ग्रन्थकी रचना की है। इस ग्रन्थमें आपने वेद, ब्राह्मण, पुराण, अवेस्ता इत्यादि शास्त्रोंके अनेकानेक प्रमाण देकर, यह प्रतिपादित किया है कि वेदकालीन आर्यलोग उत्तर ध्रुवके प्रदेशमें निवास करते थे। कारागृहमें बैठे बैठे, इस ग्रन्थके लिखनेके लिये अपेक्षित साधनोंके अध्ययन-मननकी अनुमति सरकारने आपको प्रो. मेक्षमुलरके अनुरोधसे दी थी। पीछेसे उन्हीं प्रोफेसर महोदयके विशेष परिश्रम और प्रयत्नसे सरकारने आपको असमय ही में बन्धनमुक्त भी कर दिया था। कारागृहमेंसे निकले बाद आपने उक्त प्रो. को एक कृतज्ञतापूर्ण पत्र लिखा जिसमें अपने किये हुए इस नवीन अनुसन्धानका कितनाएक उपयुक्त सार भी लिख भेजा। इस सारको पढ कर प्रोफेसर महाशयने तिलक महोदयको लिखा था कि "कितनीएक वैदिक ऋचाओंका अर्थ आपके बतलाए मुताबिक ठीक हो सकता है; परंतु कदाचित् उनके आधारपरसे निकाला हुआ सिद्धान्त भूस्तर शास्त्रके सिद्धान्तके साथ मेल नहीं खायगा, ऐसी मुझे शंका है।" खेद है कि तिलक महाशयके इस ग्रन्थके प्रकाशित होनेके पहले ही–यह ग्रंथ सन् १९०३ में प्रकाशित हुआ–प्रो. मेक्षमुलरका देहान्त

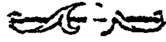
होगया, जिससे उनके अधिकारयुक्त अभिप्रायसे आपका यह ग्रन्थ वञ्चित रहा। परंतु, दूसरे विद्वानोंने आपकी इस कृतिका भी खूब सत्कार किया। बोस्टन विश्वविद्यालयके अध्यक्ष डॉ. वारिनने इस पुस्तकके विषयमें कहा था कि "इन्डो-इरानी विद्वानोंने जितनी पुस्तकें इस विषयपर आजतक लिखी हैं उन सबमें यह पुस्तक अधिक निश्चयात्मक है। जो कोई स्वर्गीय मि. नील की 'देव रात्रि (The night of Gods)' का और इस पुस्तकका पारायण कर लेगा वह संभवतः फिर कभी यह न पूछेगा कि आर्योंका आदिम निवासस्थान कहां है।"

आपको जब सन् १९०८ में तीसरी बार जेलयात्राका हुक्म हुआ तब मंडालेके एकान्तवासमें बैठ कर आपने वह गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र लिखा, जो आज भारतके प्रत्येक धर्मजिज्ञासु जनके घरमें विराजमान हो रहा है तथा प्रत्येक विद्वान् और विद्यार्थीके लिये एक अत्यावश्यक पाठ्य ग्रंथ बन रहा है। इस ग्रन्थमें आपने अपने जीवनके समग्र विचार स्रोतोंको एकत्र कर शास्त्र रूप महासरोवरके रूपमें बद्ध कर दिया है। पूर्वीय और पाश्चात्य तत्त्वज्ञानकी सभी मुख्य मुख्य विचार-श्रेणियोंका गंभीर मन्थन कर आपने इस अमूल्य ग्रन्थरत्नको प्रकट किया है। आपके नामको अजरामर बनानेवाला केवल यही एक ग्रन्थरत्न पर्याप्त है।

आपके देह विलयसे संसारका एक श्रेष्ठ और प्रखर ज्योतिःपूर्ण ज्ञानस्वरूप महानक्षत्र अस्त हो गया।



चित्र-परिचय।



१—गत अंकमें जो दर्शनीय चित्र दिये गये हैं उनमें पहला रंगीन चित्र पावापुरीके जलमंदिरका है। पावापुरी पटना जिलेकी सुवे विहार तहसील-का एक छोटासा गांव है। जैन समाजकी मान्यता अनुसार श्रमण भगवान् श्रीमहावीरदेवकी निर्वाण-भूमि यही पावापुरी है। इस लिये जैनियोंका यह एक परम पवित्र तीर्थस्थल है। इस गांवके पास एक कमलसरोवर नामका अच्छा तालाव है। इस तालाबमें हमेशा असंख्य कमलपत्र खिले रहते हैं इसलिये इसका नाम भी कमलसरोवर पड गया है। इस सरोवरके मध्यमें एक भव्य मंदिर बना-हुआ है, जिसमें संगमर्मरके बन हुए भगवान् म-हावीर स्वामीके पूजनीय चरणोंकी स्थापना की हुई है। मंदिर बडा खुबसूरत और दर्शनीय है। भावुक मनुष्योंके हृदयमें वहां पर जानेसे बडी भक्ति उत्पन्न होती है और कुछ काल तक वहां पर बैठ कर ध्यान धरनेसे अपूर्व शान्ति प्राप्त होती है।

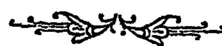
इसी मंदिरका वह सुन्दर चित्र है। चित्रमें मं-दिर, सरोवर, आसपासके किनारों पर लगे हुए वृक्ष, इत्यादि सभीका मनोहर दृश्य दिखाई दे रहा है। आरा निवासी उत्साही जैन युवक श्रीयुत कु-मार देवेंद्र प्रसादजीने अपनी ओरसेही वह चित्र जैनसाहित्यसंशोधकके पाठकोंको भेट किया है। तदर्थ आप साधुवादके पात्र हैं।

२—गतांकका दूसरा हाफटोन चित्र, भारत प्र-सिद्ध वीरभूमि चितोड नगरीके समीपमें रहा हुआ इतिहास प्रसिद्ध चितोडगढ (किला) मेंके एक अति प्राचीन जैन कीर्तिस्तंभ (Jain Tower.) का है। चितोडके किलेमें दो कीर्तिस्तंभ हैं जिनमें एक जो अधिक ऊंचा और विशेष प्रसिद्ध है वह १५ वीं शताब्दीमें सुप्रसिद्ध राणा कुंभा द्वारा ब-नाया गया है और इससे उसका असली नाम 'कुंभमेरु' है। दूसरा स्तंभ यह जैन कीर्तिस्तंभ है। 'कुंभमेरु' की अपेक्षा यह जैन कीर्तिस्तंभ बहुत प्राचीन है और पुरातत्त्वज्ञोंने ११ वीं या १२ वीं शताब्दीमें इसके बननेका अनुमान किया है। यह किसी दिगम्बर जैनका बनाया हुआ है। क्यों-कि इसमें जो जिनमूर्तिमां लगी हुई हैं वे दिग-म्बर हैं।

यह स्तंभ ८० फीट ऊंचा है। समुद्रकी सतहसे इसकी ऊंचाई १६०० फीट और नीचेकी जमीनसे ६०० फीट है। यह किलेकी सबसे ऊंची भूमिपर बना हुआ होनेसे इसका शिखर किलेमेंके सभी मकानोंसे ऊंचा दिखाई देता है। इसके शिखरका जीर्णोद्धार हाल हीमें-दस बारह वर्ष पहले-सर-कारने बडा खर्च करके करवाया है। सारे हिंदु-स्थानमें जैनियोंका यही एक मात्र महत्त्वका पुरात-न कीर्तिस्तंभ मौजूद है। इसका समग्र ऐतिहासिक वर्णन आगेके किसी अंकमें, एक स्वतंत्र लेख द्वारा पाठकोंको सुनायेंगे।

चित्रमें जो दो जुदा जुदा ब्लाक हैं उनमें दाहि-नी तरफवाला ब्लाक स्तंभकी उस अवस्थाका द-र्शन करा रहा है जब उसके शिखरका जीर्णोद्धार नहीं किया गया था। बांई तरफका दृश्य जीर्णो-द्धारके अनन्तरका है।

३—इस अंकमें करहेडाके पार्श्वनाथ जैन मंदि-रका चित्र दिया जाता है। यह गांव उदयपुर [मे-वाड] राज्यमें आया हुआ है और चितोड-उदय-पुर रेल्वे लाईनके बीचमें पडता है। गांव बिलकुल छोटासा मामुली है। गांवसे बहार, कुछ फासले पर यह मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर ५२ जिनालय है और बडा भव्य है। मन्दिरमें पार्श्वनाथ तीर्थंकर की मनोहर मूर्ति प्रतिष्ठित है। पुराने लेखोंमें इस गांवका नाम 'करहेटक' ऐसा लिखा हुआ मिल-ता है। यह मन्दिर १४ वीं शताब्दीके लगभगका बना हुआ अनुमान किया जाता है। ऐतिहासिक वर्णन फिर कभी दिया जायगा।





महामहोपाध्याय डॉ. सतीशचंद्र विद्याभूषण, एम. ए. पी. एच्. डी.।



स्वर्गीय श्रीमान् बाल गंगाधर तिलक ।

नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ।

जैन साहित्य संशोधक

भाग १] गुजराती लेख विभाग [अंक २

सोमप्रभाचार्य विरचित कुमारपाल प्रतिबोध ।

(ग्रन्थ परिचय)

[वडोदराना विद्याविलासी नृपति श्रीसयाजीराव गायकवाड सरकार तरफथी, 'गायकवाडस् ओरियन्टल सीरीझ' नामे ५-६ वर्षथी एक ग्रन्थमाला प्रकट थवा लागी छे जेनी अंदर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओमां लखाएला प्राचीन अने दुर्लभ्य ग्रन्थो प्रकाशित थाय छे. ए ग्रन्थमालाना मूल उत्पादक अने मुख्य संपादक स्वर्गस्थ विद्वान् श्रावक श्रीयुत चिमनलाल डाह्याभाई दलाले पाटण अने जेसलमेर (राजपूताना) नां जूना जैन पुस्तक भंडारोनुं सूक्ष्म निरीक्षण करी तेमांथी केटलाक उत्तम अने अलभ्य-दुर्लभ्य जैन ग्रंथो, उक्त सीरीझमां प्रकट करवा माटे खास चुंटी काढ्या हता. ए ग्रंथोमां सोमप्रभाचार्यरचित कुमारपाल प्रतिबोध नामनो पण एक प्राकृत भाषामय मोटो ग्रंथ छे जेनुं संपादन कार्य स्वर्गस्थ भाई दलाले घणा आग्रहपूर्वक मने सोप्युं हतुं. ए ग्रंथ हवे छपाईने तैयार थयो छे. एनी प्रस्तावना जे मारा तरफथी लखवामां आवी छे, ते जैन साहित्य संशोधकना वाचकोने खास वांचवा लायक होवाथी, अत्र प्रकट करवामां आवे छे. मूल पुस्तकमां आ प्रस्तावनानो इंग्रेजी अनुवाद तथा संस्कृतसार आपवामां आव्यो छे.—मुनि जिनविजय ।]

स्तुमस्त्रिसन्ध्यं प्रभुहेमसूरेरनन्यतुल्यामुपदेशशक्तिम् ।
अतीन्द्रियज्ञानविवर्जितोऽपि यः क्षोणिभर्तुर्व्यधित प्रबोधम् ॥
सत्त्वानुकम्पा न महीभुजां स्यादित्येप क्लृप्तो वितथः प्रवादः ।
जिनेन्द्रधर्मं प्रतिपद्य येन, श्लाघ्यः स केपां न कुमारपालः ॥

—सोमप्रभाचार्य ।

गुजरातना चौलुक्यवंशना प्रसिद्ध नृपति कुमारपालने जैनाचार्य हेमचंद्रसूरिए समय समय उपर जे रीते जैनधर्मना सिद्धान्तोनो, विविधकथा—आख्यानो द्वारा बोध आप्यो हतो; अने ते बोधनुं श्रवण

करी जे रीते कुमारपाले जैनधर्मनो संपूर्ण स्वीकार कर्यो हतो तेनुं सामान्य वर्णन आ ग्रंथमां आपवामां आव्युं छे. ग्रंथकारे आ ग्रंथनुं नाम 'जिनधर्म-प्रतिबोध' एवुं राख्युं छे[1]; परंतु, ग्रन्थना अंते, पुष्पिकालेखमां 'कुमारपाल-प्रतिबोध' एवुं नाम लखेलुं मळवाथी, तेम ज ग्रंथगत विषयनो नाममात्रना निर्देशथी पण वाचकोने ख्याल आवी शके तेवा हेतुथी; में आ पुस्तक उपर ए ज नाम अंकित करवुं वधारे उचित धार्युं छे.

आ ग्रंथनी प्रस्तुत आवृत्ति, गुजरातनी प्राचीन राजधानी पाटण शहेर (जे वर्तमानमां वडोदरा—राज्यना कडीप्रांतमां एक साधारण तालुकानुं स्थान भोगवे छे) मांना जैन पुस्तक भांडागारमांथी मळी आवेला ताडपत्रात्मक पुस्तक उपरथी तैयार करवामां आवी छे. ए ताडपत्रना एकंदर २५५ पानां छे. प्रत्येक पानुं २ फीट ७ इंच लांबुं अने मात्र २ ईंच पहोळुं छे, ए पानाना प्रत्येक पृष्ठ (एक बाजु) उपर त्रणथी पांच पंक्तिओ, काळी शाहीथी देवनागरी लिपिमां लखेली छे. दरेक पंक्तिमां लगभग १४० थी १५० जेटला अक्षरो आवेला छे. प्रत्येक पंक्ति त्रण विभागोमां व्हेंचाएली छे, अने दरेक विभागनी वच्चे एक एक ईंच जेटली खाली जग्या राखवामां आवी छे. ए खाली राखेली जग्यामां, आखा पुस्तकनां बधां पानांओ भेगां बांधी लेवा माटे एक छिद्र पाडी तेमां संलग्न दोरी परोवेली छे. आ पुस्तक संवत् १४५८ मां खंभातमां लखाएलुं छे. आ समय पछी लखाएलुं बीजुं कोई ताडपत्र जैन भंडारोमां मारा जोवामां आव्युं नथी. आ उपरथी हुं एम अनुमान करुं छुं के, गुजरातमां—अने साधारण रीते पश्चिम अने उत्तर हिंदुस्थानमां पण—ताडपत्र उपर पुस्तक लखवाना इतिहासमां आ पुस्तक सौथी अंतिम स्थान भोगवे छे. जैनोनां ऐतिहासिक साधनो उपरथी जणाय छे के ईसवीनी १४ मी शताब्दिना प्रारंभमां ज ताडपत्रो उपर ग्रंथो लखवानो वहीवट कमी थवा मांड्यो हतो अने ताडपत्रोनुं स्थान कागळोए लेवा मांड्युं हतुं. ते वखत दरम्यान पाटण, खंभात, जेसलमेर (राजपूताना) आदि—जैन पुस्तक भांडागारो माटे प्रसिद्ध थएला—जूना शहेरोमां ताडपत्र उपर लखेला जे विशाल पुस्तकसंग्रहो हता ते बधाना एकी साथे अने घणी झडपथी कागळो उपर उताराओ थवा लाग्या हता. वर्तमानमां कागळ उपर लखेलां जूनामां जूनां जे पुस्तको उपलब्ध थाय छे, ते बधां ते ज वखतनां लखेलां छे. तेम ज ताडपत्र उपर अर्वाचीनमां अर्वाचीन जे पुस्तको छे ते पण तेज वखतनां छे. ते पछी लखेलां ताडपत्रो मळतां नथी. आ उपरथी एम मानी शकाय के ए प्रदेशोमां कागळनो प्रवेश ते ज वखते थएलो होवो जोईए. प्रकृत ताडपत्रना लेखन कालमां ताडपत्र उपर लखवानो प्रचार बहु ज विरल थई गएलो होवो जोईए. अने लहिआओ ताडपत्र उपर लखवाना अभ्यास अने शाहीनी बनावट विगेरेनी कळाने भूली जवानी तैयारीमां होवा जोईए. कारण के प्रकृत ताडपत्र उपरनुं लखाण जूनां ताडपत्रो करतां घणा ज हलकां प्रकारनुं दृष्टिगोचर थाय छे. १२ मा १३ मा सैकानां ताडपत्रोनी लिपि जेटली सुंदर अने शाही जेटली उत्तम होय छे तेटली आमां देखाती नथी. आ ताडपत्रनी शाही घणी ज फीकी अने अनेक स्थळेथी तो ते अत्यार आगमच खरी पडी—भुंसाई गई छे. कोई कोई पृष्ठमां तो पंक्तिओनी पंक्तिओ तेवी रीते अदृश्य थई गई छे अने तेना लीधे लखाण वांचवुं पण बहु कठण थई पडे छे. त्यारे आना करतां २००-३०० वर्ष जूनां ताडपत्रोनी शाही जोईए छीए तो आजे पण तेवीनी तेवी चळकती अने काळी देखाई आवे छे. जूनां ताडपत्रोनी जेटली लेखन-शुद्धि पण आ पुस्तकमां जळवाएली जणाती नथी. आनुं कारण ए छे के प्राचीनकाळमां लहिआओ साधारण रीते संस्कृत—प्राकृत भाषानुं सामान्य ज्ञान धरावनारा थता हता. तेम ज घणाक विद्वानो ते वखते जाते ज पुस्तको लखता हता. तेथी ते वखतनां पुस्तकोमां साधारण रीते अशुद्धिओ बहु अल्प प्रमाणमां मळी आवे छे. परंतु प्रकृत ताडपत्रना लेखनसमयमां, ताडपत्रो उपरथी कागळो उपर ग्रंथो उतारावावानुं काम घणा विशाल प्रमाणमां शरू थएलुं होवाथी, तेटला कामने पहोंची वळे एटला, भाषाज्ञानसंपन्न लहिआओना अभावने लीधे, मात्र अक्षराकृति सम-

[1] जिणधम्मपडिबोहे समत्थिओ पढमपत्थावो। पृष्ठ ११५. —जिनधर्मप्रतिबोधः क्लृप्तोऽयं गुर्जरेंद्र पुरे। पृ. ४१८.

जवा पुरतुं ज्ञान धरावनारा अने मक्षिकास्थाने मक्षिका चितरनारा लहिआओ पासेथी ए कार्य करावत्रामां आवतुं हतुं. तेथी जूना ग्रंथोनी नकलो करतां ए वखते लहिआओना हाथे घणी अशुद्धिओ ते ग्रंथोमां दाखल थई गई हती. आ ज कारणने लईने कुमारपाल प्रतिबोधना प्रकृत आदर्शमां पण लेखन-अशुद्धिओ घणा मोटा प्रमाणमां प्रविष्ट थई गएली जोवाय छे. आ पुस्तकनी नकल करनार कायस्थ पेतानुं भाषाज्ञान केवुं हशे तेनुं अनुमान, पुस्तकना अंतमां तेणे जे संवत् विगेरेना उल्लेख वाळो पुष्पिकालेख लख्यो छे, ते उपरथी थई शके तेम छे.

उल्लिखित ताडपत्र सिवाय एक बीजुं पण ताडपत्र प्रस्तुत ग्रंथनुं मने मळ्युं छे, जे पाटणना संघवीना पाडाना नामे ओळखाता पुस्तकभंडारनी मालिकीनुं छे. ए ताडपत्र, उक्त ताडपत्र करतां खास जूनुं अने विशेष शुद्धरीते लखाएलुं छे. परंतु ए घणुं ज अपूर्ण--खंडित छे. एमां ५१ थी ते ३०५ नंबर सुधीनां पानां छे. आ ग्रंथना चतुर्थ प्रस्तावमां देशावकासिक व्रतोपरि जे पवनंजयनी कथा आपेली छे तेना मध्यभागथी ज ए ताडपत्र खंडित थई गयुं छे. एनी साईझ २'७"+२" लांबी-पहोळी छे. प्रत्येक पृष्ठमां ३ थी ५ लाइनो आवेली छे, अने दरेक लाइनमां १०५ थी १२० सुधी अक्षरो लखेला छे.

आवी रीते प्रस्तुत पुस्तकनो अखंड एवो एक ज उपर्युक्त आदर्श मने मळवाथी (अने ज्यां सुधी हुं जाणी शक्यो छुं, बीजो संपूर्ण प्राचीन आदर्श अन्यत्र क्यांये छे पण नहि) अने ते पण विशेष अशुद्ध होवाथी, आ ग्रंथना संशोधननुं काम मारा माटे घणुं ज कठण थई पड्युं हतुं.

सोमप्रभाचार्य

ग्रंथकार सोमप्रभाचार्य एक सुप्रसिद्ध अने सुज्ञात जैन विद्वान् छे. तेमणे प्रस्तुत ग्रंथ विक्रम संवत् १२४१ मां, एटले कुमारपाल राजाना मृत्यु पछी मात्र ११ वर्ष बनाव्यो हतो. आ उपरथी तेओ राजा कुमारपाल अने आचार्य हेमचंद्रना समकालीन हता ए स्वतः सिद्ध छे. तेमणे आ ग्रंथ, नेमिनागना पुत्र श्रेष्ठी अभयकुमारना हरिश्चंद्रादि पुत्र अने श्रीदेवी आदि पुत्रिओनी प्रीत्यर्थे, प्राग्वाटजातीय कविचक्रवर्ती श्री-श्रीपालना पुत्र कवि सिद्धपालनी वसति (जैन मंदिर या जैन उपाश्रय) मां रहीने रच्यो छे; तथा खुद हेमचंद्राचार्यना महेन्द्रमुनि[1], वर्धमान[2] अने गुणचंद्र[3] नामे विद्वान् शिष्योए तेने अथथी ते इति सुधी सांभळयो छे. अभयकुमार श्रेष्ठी, आ ज ग्रंथमां जणाव्या प्रमाणे, कुमारपाल राजाए अनाथ अने असमर्थ जनोना भरण पोषण माटे खोलेला सत्रागार आदि धर्मादाय खाताओनो उपरी हतो. (जुओ पृष्ठ २१९-२०). कविचक्रवर्ती श्री-श्रीपाल गुजरातनो एक सर्वश्रेष्ठ कवि अने सिद्धराज जयसिंहनो घणो मानीतो तेम ज स्वीकृत भ्राता हतो. तेनो पुत्र सिद्धपाल पण उत्तम कोटिनो कवि होई कुमारपाल राजानो प्रीतिपात्र अने श्रद्धेय सुहृद् हतो. आ कविकुलना संबंधमां में अन्यत्र सविस्तर लख्युं छे, (—जुओ द्रौपदी स्वयंवर नामे सिद्धपाल पुत्र कवि विजयपाल रचित नाटकनी मारी प्रस्तावना.) तेथी अहीं पुनरावृत्ति करतो नथी. श्रीपाल कवि, सोमप्रभाचार्यना पूर्वाचार्य देवसूरिनो चरणोपासक हतो तेथी ए कवि-कुटुंबनो, तेमना शिष्यसमुदाय उपर सविशेष अनुराग होय तथा ते साधु-समूहनो पण ए कुटुम्ब उपर विशेष आदरभाव होय ते स्वाभाविक छे. सोमप्रभाचार्यना गुरुओ तथा अन्य साधुओ अणहिलपुरमां घणुं करीने ए कविकुटुंबना मकानोमां ज निवास करता हता. सोमप्रभाचार्ये पोतानो बीजो बृहद्ग्रंथ नामे सुमतिनाथचरित्र पण ए कुटुंबनी वसतिमां ज वसीने बनाव्यो हतो.

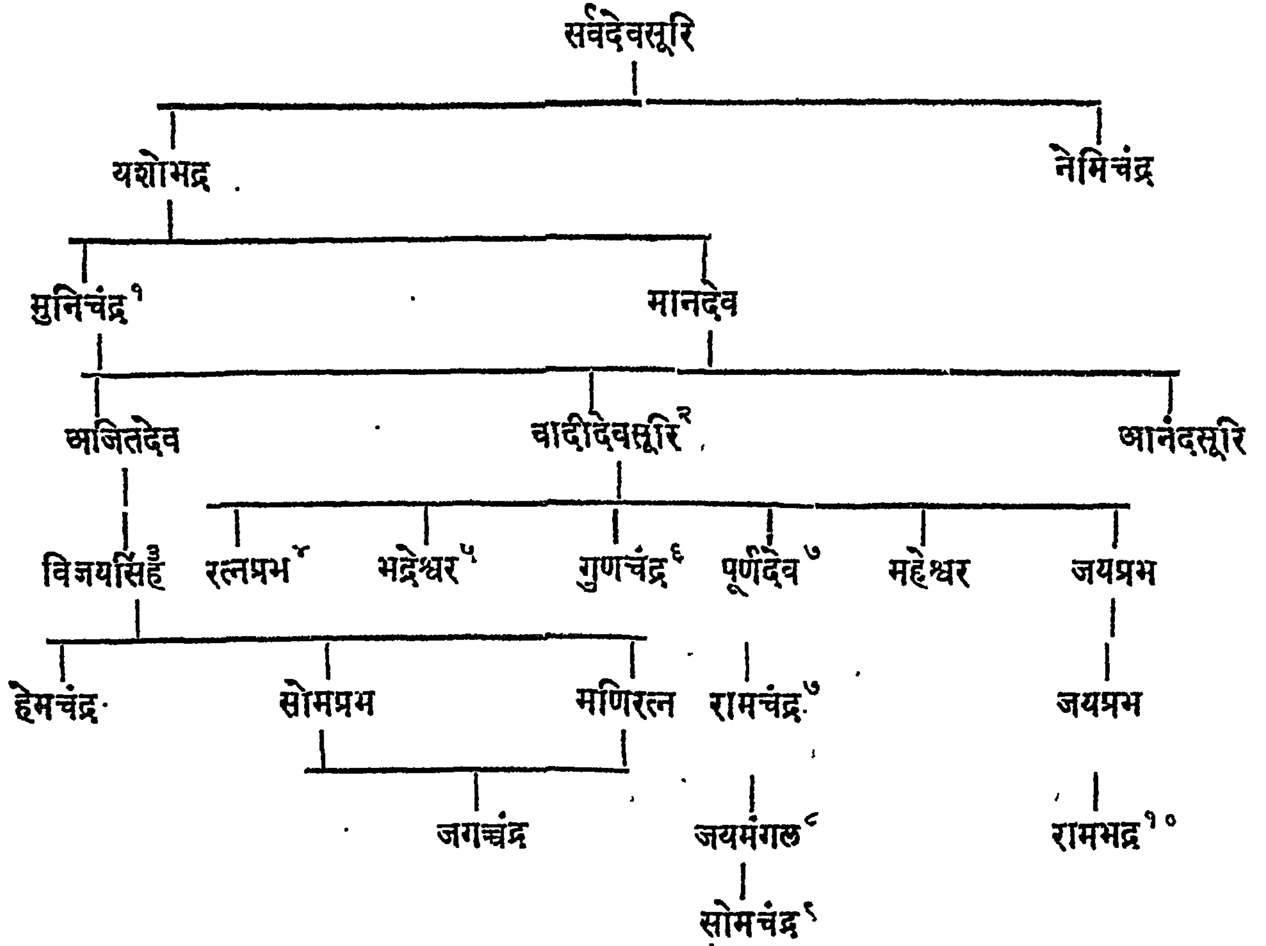
---

१ आ महेन्द्रमुनिए हेमचंद्राचार्यरचित अनेकार्थनामसंग्रह नामक कोष उपर अनेकार्थकैरवाकरकौमुदी नामे टीका लखी छे,-जुओ, पीटर्सन रिपोर्ट १, पृ. ५१.

२ वर्धमानगणिए कुमारविहारप्रशस्ति बनावी छे.-जुओ, पीटर्सन रिपोर्ट ३, पृ. ३१६.

३ गुणचन्द्रगणिए, प्रबन्धशतकर्तृ महाकवि रामचन्द्रने नाट्यदर्पण नामक ग्रन्थ लखवामां सहायता करी हती.

कुमारपाल प्रतिबोधनी प्रशस्ति तथा बीजा ग्रंथोक्त उल्लेखो उपरथी सोमप्रभाचार्यनी गुरुपरंपरादिनो वंशवृक्ष नीचे प्रमाणे थाय छेः—



१ उपदेशपद, अनेकान्तजयपताका, ललितविस्तरा, योगबिंदु आदि हरिभद्राचार्यरचित ग्रंथो उपर टीका–टिप्पणादिना प्रसिद्ध लेखक. २ स्याद्वादरत्नाकर नामक महान् जैनतर्कग्रन्थना प्रणेता.

३. धर्मसागरगणिए पोतानी पट्टावलीमां आ विजयसिंहने, बालचंद्ररचित विवेकमञ्जरीवृत्तिना संशोधक (' श्रीविजयसिंहसूरिः—विवेकमञ्जरीशुद्धिरुत् । ') लख्या छे परंतु ते भूल छे. ते वृत्तिना संशोधक आ विजयसिंह नथी, परंतु नागेंद्र गच्छना विजयसेनसूरि छे. जुओ पीटर्सनना ३ जो रीपोर्ट पृ. १०३. आ विजयसिंहनो एक शिलालेख आरासणना जैनमंदिरमांथी मळी आव्यो छे, जे संवत् १२०६ नी सालनो छे. जुओ मारुं प्राचीन जैनलेखसंग्रह नामनुं पुस्तक, लेख नंबर २८९.

४. रत्नप्रभे रत्नाकरावतारिका नामे सुज्ञात तर्कग्रन्थ बनाव्यो छे. उपदेशमालावृत्ति आदि बीजा पण एमना केटलाक प्रसिद्ध ग्रंथो उपलब्ध छे.

५. भद्रेश्वरे वादी देवसूरिने स्याद्वादरत्नाकर ग्रंथ रचवामां मुख्य सहायता करी हती. तथा पोताना गुरुना अवसान पछी तेमनी गादीना मुख्य आचार्य ए पोतेज नीमाया हता.

६. गुणचंद्रे हैमविभ्रमनामे व्याकरणविषयक एक लघु ग्रंथ बनाव्यो छे.

७. जालोरना एक शिलालेखमां आ बन्ने गुरु–शिष्यनो उल्लेख करेलो छे.

८. सुंधाटेकरी (मारवाड) उपर आवेली चाचिगदेवनी प्रशस्तिना कर्ता.

९ वृत्तरत्नाकरनी वृत्तिकरनार. १० प्रबुद्धरौहिणेय नाटकना रचनार,

आ वंशवृक्षमां आपेली व्यक्तिओ जैनसाहित्य अने जैनइतिहासमां सुप्रसिद्ध छे. ए साधुओमां-ना केटलाक तो घणा मोटा ग्रंथकारो छे अने तेमनी बनावेली अनेक कृतिओ आजे पण जैनसाहित्यनी शोभा वधारी रही छे. आ उपरथी प्रस्तुत ग्रंथकारनो समुदाय केटलो वधो विद्वान्, प्रतिष्ठित, अने साहित्योपासक हतो तेनो ख्याल आवी शके छे. सोमप्रभाचार्यना एक गुरुभ्राता नामे हेमचंद्रे नाभेयने-मि नामनुं द्विसंधान काव्य बनाव्युं छे जेनुं संशोधन खुद कविचक्रवर्ती श्रीपाले कर्युं हतुं.[1] सोमप्रभाचार्यनी गादी उपर सुप्रसिद्ध जगच्चंद्रसूरि आव्या हता जेओ तपागच्छना नामे ओळखाता सुविस्तृत साधुसमुदायना मूळ पुरुष मनाय छे. पट्टावलिओ प्रमाणे, सोमप्रभाचार्यनो महावीरनी पट्ट परंपरामां ४३ मो नंबर छे.

सोमप्रभाचार्यना विद्यमान ग्रंथो

कुमारपाल प्रतिबोध सिवाय सोमप्रभाचार्यना बीजा त्रण ग्रंथो उपलब्ध थाय छे. जेमां एक तो सुमतिनाथचरित्र छे. ए ग्रंथमां जैनधर्मना पांचमा तिर्थंकर सुमतिनाथनुं चरित्र वर्णवामां आव्युं छे. ते चरित्र पण कुमारपाल प्रतिबोधनी माफक मुख्य करीने प्राकृत भाषामां ज रचेलुं छे; अने तेमां पण जैनधर्मना सिद्धान्तोनो बोध आपती पुराणकथाओ कल्पित छे. तेनी श्लोकसंख्या लगभग साडा नव हजार उपर छे. पाटणना जैन भंडारोमां ए चरित्रना हस्तलेखो मारा जोवामां आव्या छे.[2] बीजो ग्रंथ सूक्तिमुक्तावली नामे प्रसिद्ध १०० पद्यवाळो एक प्रकीर्ण प्रबंध छे. ए प्रबंधनुं प्रथम पद्य 'सिन्दुरप्रकर' एवा वाक्यथी शरु थतुं

---

१ आ काव्यनी अंतनी प्रशस्तिना केटलाक श्लोको नीचे प्रमाणे छेः—

भक्तः श्रीमुनिचंद्रसूरिसुगुरोः श्रीमानदेवस्य च श्रीमान् सोऽजितदेवसूरिरभवत् पट्टर्कदुग्धाम्बुधिः ।
सद्यः संस्कृतगद्यपद्यलहरीपूरेण यस्य प्रभाऽऽक्षिप्ता वादिपरंपरा तृणतुलां धत्ते स्म दूरीकृता ॥
श्रीमानभूद् विजयसूरिरमुष्य शिष्यो येन × × × स्मरस्य शरान् गृहीत्वा ।
क्लृप्तं चतुर्भिरनघं शरयन्त्रमग्रे विश्वं तदेकविशिखेन वशं च निन्ये ॥
श्रीहेमचन्द्रसूरिर्बभूव शिष्यस्तथापरस्तस्य । भवहतये तेन कृतो द्विसंधानप्रबन्धोऽयम् ॥
एकाहनिष्पन्नमहाप्रबन्धः श्रीसिद्धराजप्रतिपन्नबन्धुः । श्रीपालनामा कविचक्रवर्ती सुधीरिमं शोधितवान् प्रबन्धम् ॥

२ ए चरित्रनी अंतनी प्रशस्ति पण घणा अंशे कुमारपाल-प्रतिबोधना जेवी ज छे, अने ते नीचे प्रमाणे छेः—

चन्द्रार्कौ गुरुवृद्धनभसः कर्णावतंसौ क्षितेर्धुर्यौ धर्मरथस्य सर्वजगतस्तत्त्वावलोके दृशौ ।
निर्वाणावसथस्य तोरणमहास्तम्भावभूतामुभावेकः श्रीमुनिचन्द्रसूरिरपरः श्रीमानदेवप्रभुः ॥
शिष्यस्तयोरजितदेव इति प्रसिद्धः सूरिः समग्रगुणरत्ननिधिर्बभूव ।
प्रीतिं यदङ्घ्रिकमले मुनिभृङ्गराजिरास्वादितश्रुतरसा तरसा बबन्ध ॥
श्रीदेवसूरिप्रमुखा बभूवुरन्येऽपि तत्पादपयोजहंसाः । येषामवाधारचितस्थितीनां नालीकमैत्रीमुदमाततान ॥
विशारदशिरोमणे रजितदेवसूरिप्रभोर्विनेयतिलकोऽभवद् विजयसिंहसूरिर्गुरुः ।
जगत्त्रयविजेतृभिर्विमलशीलवर्मावृतं व्यभेदि न कदाचन स्मरशरैर्यदीयं मनः ॥
गुरोस्तस्य पदाम्भोजप्रसादान्मन्दधीरपि श्रीमान् सोमप्रभाचार्यश्चरित्रं सुमतेर्व्यधात् ॥
प्राग्वाटान्वयसागरेन्दुरसमप्रज्ञः कृतज्ञः क्षमी वाग्मी सूक्तिसुधानिधानमजनि श्रीपालनामा पुमान् ।
यं लोकोत्तरकाव्यरञ्जितमतिः साहित्यविद्यारतिः श्रीसिद्धाधिपतिः कवीन्द्र इति च भ्रातेति च व्याहरत् ॥
सूनुस्तस्य कुमारपालनृपतिप्रीतेः पदं धीमतामुत्तंसः कविचक्रमस्तकमणिः श्रीसिद्धपालोऽभवत् ।
यं व्यालोक्य परोपकारकरुणासौजन्यसत्यक्षमादाक्षिण्यैः कलितं कलौ कृतयुगारम्भो जनो मन्यते ॥
तस्य पौषधशालायां पुरेऽणहिलपाटके । निष्प्रत्यूहमिदं प्रोक्तं परार्थान्तं (?) ...... ॥
अनाभोगात् किञ्चित् किमपि मतिवैकल्यवशतः किमप्यौत्सुक्येन स्मृतिविरहदोषेण किमपि ।
मयोत्सूत्रं शास्त्रे यदिह किमपि प्रोक्तमखिलं क्षमन्तां धीमन्तस्तदसमदयापूर्णहृदयाः ॥

होवाथी ते 'सिंदुरप्रकर' ना नामे; तथा सोमप्रभाचार्य रचित होई तेमां एकंदर १०० पद्योनो संग्रह होवाथी 'सोमशतक' ना नामे पण घणीक वखते लखाय—ओळखाय छे. ए प्रबंध जैनसमाजमां घणोज प्रसिद्ध छे अने अनेक स्त्रीपुरुषोना मुखे कंठस्थ होय छे. ए प्रबंध भर्तृहरिना नीतिशतकनी शैलिमां लखाएलो छे; अने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शील, सौजन्य आदि विषयो उपर संक्षिप्त परंतु हृदयंगमरीते तेमां विवेचन करेलुं छे. एनी रचना बहुज सरल, सरस अने सुबोध छे. एमांनां केटलाक पद्यो आ प्रस्तुत ग्रंथमां–कुमारपाल प्रतिबोधमां पण ग्रथित थएलां नजरे पडे छे.[1]

त्रीजो ग्रंथ 'शतार्थ काव्य' नामे छे. ए ग्रंथ सोमप्रभाचार्यना संस्कृत भाषाज्ञानविषयक अनुत्तर पांडित्यने प्रकट करे छे. ए ग्रंथ मात्र एक वसंततिलका छंद रूपे छे[2], जेना जुदा जुदा सो अर्थो करवामां आव्या छे. आ कृतिना लीधे विद्वानो तरफथी तेमने शतार्थिकनुं खास पांडित्यसूचक उपनाम प्राप्त थयुं हतुं अने तेथी पाछळना घणाक ग्रंथकारो तेमने ए उपनाम साथे ज उल्लेखे छे.[3] ए एक वृत्तात्मक ग्रंथना भिन्न भिन्न सो अर्थो तेमणे जाते ज टीका करीने बताव्या छे. टीकाना प्रारंभमां पांच श्लोको लखी स्वाविवक्षित सोए अर्थोनी अनुक्रमणिका आपी छे. प्रारंभमां जैनधर्मना २४ तीर्थकरोना अर्थो लखी; वच्चे ब्रह्मा, नारद, विष्णु आदि वैदिक देवो विगेरेना अर्थो पण आलेख्या छे. अने छेवटे पोताना समकालीन एवा, वादी देवसूरि अने हेमचंद्राचार्य जेवा जैनधर्मना महान् धर्मगुरुओना; जयसिंह देव, कुमारपाल, अजयदेव अने मूलराज जेवा गुजरातना क्रमिक ४ चौलुक्य राजाओना; कवि सिद्धपाल जेवा सर्वश्रेष्ठ नागरिकना; अने अजितदेव तथा विजयसिंह नामे पोताना बंने गुरुओना अर्थो पण अवतार्या छे. सर्वांते स्वकीय अर्थ पण बेसार्यो छे अने समाप्तिमां कोई शिष्यना मुखेथी आत्मप्रशंसापर एवी पांच पद्योवाळी संक्षिप्त प्रशस्ति पण कहेवरावी छे.

आ प्रशस्तिमां जणाव्या प्रमाणे सोमप्रभ गृहस्थावस्थामां प्राग्वाट (पोरवाड) जातिना वैश्य हता. तेमना पितानुं नाम सर्वदेव, अने पितामहनुं नाम जिनदेव हतुं. जिनदेव कोईक राजानो मंत्री हतो अने ते पोताना समयमां बहु प्रतिष्ठित पुरुष हतो. सोमप्रभे कुमारावस्थामां ज जैनदीक्षा लई लीधी हती, अने तीव्रबुद्धिना प्रभावे समस्त शास्त्रोनो तलस्पर्शी अभ्यास करी आचार्यपदवी प्राप्त करी हती. तेमनी तर्कशास्त्रमां अद्भुत पटुता हती, काव्यविषयमां घणी त्वरितता हती अने व्याख्यान आपवामां बहु कुशलता हती.

कुमारपालप्रतिबोध साथे उक्तानुसार सोमप्रभाचार्यनी वर्तमानमां ४ कृतिओ उपलब्ध थाय छे. आ कृतिओमां कालानुक्रमथी प्रथम कृति तेमनी सुमतिनाथ चारित्र अने बीजी सूक्तिमुक्तावली होय तेम जणाय छे. बृहट्टिप्पनिका नामे एक प्राचीन जैनग्रंथसूचिमां सुमतिनाथचरित्रनी रचना कुमारपालना राज्यमां थई हती एवो उल्लेख करेलो छे. शतार्थवृत्तनी वृत्तिना अंते पण ते चरित्रनुं नाम आवेलुं होवाथी, ते वृत्तिनी पहेलां एनी रचना थई हती एम तो स्वतःसिद्ध थाय छे. शतार्थवृत्तनी रचना ई० स० ११७७ थी ११७९ नी वच्चे थई होय, एम मानी शकाय. कारणके एनी अंदर अजयदेवनी पछी गुजरातनी गादिए आवेला मूळराजनो उल्लेख छे. आ मूळराज इतिहासमां बाळ मूळराजना नामे प्रसिद्ध छे. अने तेणे मात्र बेज वर्ष—ई. स. ११७७ थी ११७९ सुधी—राज्य कर्युं हतुं. कुमारपाल प्रतिबोध तेमनी छेल्ली कृति होय तेम लागे छे.

---

१ जुओ—पृष्ठ १४५, १९१, ४२२ इत्यादि उपर आपेला संस्कृत पद्यो.

२ मूळ वृत्त आ प्रमाणे छेः—

कल्याणसार सवितानहरेक्षमोह । कान्तारवारणसमानजयाद्यदेव ।
धर्मार्थकामदमहोदयवीरधीर। सोमप्रभावपरमागमसिद्धसूरे ॥

३ 'सोमप्रभो मुनिपतिर्विदितः शतार्थी ।' मुनिसुंदरसूरिकृत गुर्वावली ।

'ततः शतार्थिकः ख्यातः श्रीसोमप्रभसूरिराट् ।' —गुणरत्नसूरिकृत क्रियारत्नसमुच्चय ।

आ कृतिओ सिवाय बीजी पण तेमनी कोई कृति होय तेम अनुमान थाय छे. कारण के शतार्थ वृत्तनी वृत्तिमां कुमारपाल राजा संबंधी अर्थ करतां "यदवोचाम" करीने बे पद्यो टांक्यां छे जे उपलब्ध कृतिओमां मळी आवतां नथी.*

कुमारपाल प्रतिबोधनी रचना ग्रंथकारे मुख्यकरीने प्राकृतभाषामां करी छे. छेवटना प्रस्तावमां केटलीक कथाओ संस्कृतमां आपी छे. तथा थोडोक भाग अपभ्रंश भाषामां पण गुंथेलो छे. आ उपरथी लेखक प्राकृत, संस्कृत अने अपभ्रंश एम त्रणे भाषाओना पंडित हता ते स्पष्ट जणाई आवे छे. ग्रंथनी रचना बहु ज सरल अने भाषा तद्दन सादी—आडंबर विनानी छे. कर्ता ओके, जेम उपर बताववामां आव्युं छे, एक उत्तम कोटिना विद्वान अने ग्रंथकार छे. परंतु तेमनी विद्वत्तानी कोई विशिष्टता आपणने आ ग्रंथमां मळी आवती नथी.

कुमारपाल प्रबंधना कर्ता जिनमंडनगणिए पोताना प्रबंधमां अनेक स्थळे, आ ग्रंथमांना ऐतिहासिक भागनां अवतरणो टांक्यां छे.[1] अने जयसिंह सूरिए पोताना संस्कृत कुमारपालचरित्रमां आ ग्रंथनी रचना शैलीनुं आबाद अनुकरण कर्युं छे. ते उपरथी जणाई आवे छे के पाछळना ग्रंथकारो प्रस्तुत ग्रंथथी सारी पेठे अवगत होवा जाईए.

कुमारपालप्रतिबोधिनी ऐतिहासिक उपयोगिता

आ ग्रंथनुं महत् परिमाण अने रचना-समय तरफ दृष्टि करतां,इतिहास रसिक जिज्ञासुओने, आ ग्रंथमांथी कुमारपाल अने हेमचंद्राचार्यना जीवनवृत्तान्त संबंधी अज्ञात अने अन्यत्र अनुपलब्ध एवी नवी नवी बाबतो जाणवानी विशेष जिज्ञासा रहे, ए स्वाभाविक छे. अने हुं पण प्रथम एवी ज लालसाथी आ ग्रंथना संपादन-भारने वहन करवा सानंद तत्पर थयो हतो. परंतु ग्रंथनुं साद्यंत अवलोकन कर्या पछी मारे उदास मने जणाववुं पडे छे के तेवी कोई नवीन बाबत, आ आटला मोटा ग्रंथमांथी मळी आवी नथी, एटलुं ज नहीं परंतु प्रभावकचरित्रांतर्गत हेमचंद्रप्रबंध, प्रबंधचिन्तामणिगत कुमारपालप्रबंधादि जेवा, प्रस्तुत ग्रंथ करतां संक्षिप्त अने कालकृत अर्वाचीन ग्रंथोमां जेटली हकीकत, उक्त बंने व्यक्तिओना संबंधमां मळी आवे छे; ते करतां पण घणी ज अल्प हकीकत आ ग्रंथमां आलेखेली छे. आथी ऐतिहासिक दृष्टिए तो आपणने आ ग्रंथनी कोई पण प्रकारनी विशेष उपयोगिता जणाती नथी, एम जो कहीए तो ते अयुक्त नथी. अलबत्त प्राकृत भाषाना साहित्य-प्रकाशननी अपेक्षाए आनी उपयोगिता अवश्य स्वीकारवा लायक छे. कारण के एक तो प्राकृतसाहित्य अत्यारसुधीमां घणा ज अल्प प्रमाणमां प्रकाशित थयुं छे, अने बीजुं हवे मुंबई युनिवार्सिटीए पोताना पठनक्रममां पालीभाषानी माफक प्राकृतभाषाने पण खास स्थान आपेलुं होवाथी ए भाषाना साहित्यना प्रकटीकरणनी घणी ज आवश्यकता प्रतीत थई रही छे. तेवा प्रसंगे प्राकृत भाषाना आ एक महान् ग्रंथनुं प्रकाशन ए भाषाना अभ्यासिओने अवश्य आवकार दायक थई पडशे एमां संशय नथी.

---

* ए बे पद्यो नीचे प्रमाणे छेः—

चैलुक्येन्द्रेण चैत्ये कुचकलशनिकैर्बन्धुराः सिन्धुरस्त्रीस्कन्धारूढा विधातुं जिनजननमहे सूतिकर्मप्रपञ्चम् ।
षट्पञ्चाशत्समीरप्रमुखनिजानिजाचारचातुर्यधैर्यस्फुर्जन्माणिक्यहेमाभरणकवचिताश्चक्रिरे दिक्कुमार्यः ॥
द्वात्रिंशत्त्रिदशाधिपा नृपगृहात् चैत्ये द्विपाध्यासिताः कल्याणाभरणाभिरामवपुषः कल्याणकायुत्सवे ।
स्नात्रं कर्तुममर्त्यशैलशिरसि स्वर्गादिवाभ्याययुस्तन्मध्ये च कुमारपालनृपतिर्भेजेऽच्युतेन्द्रश्रियम् ॥

1 जुओ मुनि श्रीचतुरविजयजी संपादित कुमारपालप्रबंध—पृ. १०, १७, ५८, ८०, ९०, ९४, ९५, ९७, १०६, १०७, १११ इत्यादि.

उक्तरीते आ ग्रंथमां ऐतिहासिक वृत्तान्त विशेष न मळवाथी अलबत्त आपणने असंतोष थाय ए स्वाभाविक छे, परंतु ते विषयमां ग्रंथकार कोई पण प्रकारना उपालंभने पात्र नथी. कारण के ग्रंथना प्रारंभमां ज ते पोते हेमचंद्र अने कुमारपालनी समग्र जीवन-वार्ता लखवाना उद्देश्यनो स्पष्ट अस्वीकार करे छे. आ ग्रंथ लखवामां लेखकनो उद्देश्य, कुमारपालादिनो इतिहास लखवानो नथी. परंतु ते व्यक्तिओने लक्षीने धर्मोपदेश आपतो एक कथा-ग्रंथ गुंथवानो छे. तेओ लखे छे के—" यद्यपि कुमारपाल अने हेमचंद्राचार्यनुं जीवन चरित्र बीजी रीतिए पण घणुंए मनोहर छे. तो पण हुं आ ग्रंथमां जैन धर्मना प्रतिबोध संबंधे ज कांईक कहेवा ईच्छुं छुं. शुं अनेक प्रकारनी खाद्य वस्तुओथी भरपूर रसवतीमांथी पोतानी इच्छानुसार मात्र कोई एक वस्तुनुं ज भक्षण करनार पुरुष कोईनी निन्दाने पात्र थई शके छे ? "‡ अस्तु.

कुमारपाल प्रतिबोधनो ऐतिहासिक सार

आ संपूर्ण ग्रंथमां जेटलो भाग इतिहास साथे संबंध धरावे छे ते वाचकोना सौकर्यार्थ "कुमारपाल प्रतिबोध-संक्षेप" एवा शिरोलेख नीचे परिशिष्ट रूपे जुदो आप्यो छे. ए परिशिष्टात्मक ग्रंथभाग वांचो जवाथी आखा ग्रंथनो संकलित सार स्पष्टरीते समजाई जशे.

संक्षिप्त ऐतिहासिकसार आ प्रमाणे छेः—

अणहिलपुर पाटणमां, प्रथम चौलुक्यकुलमृगांक एवो मूल नामे राजा थयो. तेना पछी चामुंडराज अने तेना पछी 'जगज्झंपण' एवुं उपनाम प्राप्त करनार वल्लभराज थयो. तेना पछी अनुक्रमे दुर्लभराज, भीमराज, कर्णदेव अने जयसिंहदेव राजा थयो. पूर्वे थई गएला भीमदेवनो क्षेमराज करीने एक पुत्र हतो, तेनो पुत्र देवप्रसाद, तेनो पुत्र त्रिभुवनपाल अने तेनो पुत्र कुमारपाल थयो. ए कुमारपाल बहु शूर, वीर, धीर, त्यागी, दक्ष अने परोपकारादि गुणवाळो हतो. तेथी जयसिंहदेवनुं मृत्यु थया पछी प्रधानपुरुषोए परस्पर विचार करीने तेनी गादी उपर कुमारपालने बेसार्यो. तेणे चारे दिशाओमां चतुरंग सैन्य साथे दिग्विजय करी प्रजाने संतोषकारक थाय तेवी रीते राज्यनुं पालन करवा मांडयुं.

एक दिवसे तेणे केटलाक विद्वान् अने वृद्ध ब्राह्मणोने पोतानी पासे बोलावीने कह्युं के-'जेना आचरणथी मनुष्य जन्मनुं सार्थक थाय तेवो सत्य धर्म मार्ग बतावो.' ब्राह्मणोए वेदादिशास्त्र विहित यज्ञयाग स्वरूप धर्म बताव्यो. परंतु ते धर्ममां पशु-प्राणी आदिनो वध विहित होवाथी तेवो हिंसामय धर्म राजाने रुच्यो नहीं. ते मनमां विचार करवा लाग्यो के-' जो प्राणिओनो वध करवाथी पण मनुष्यने धर्म प्राप्ति थती होय तो पछी अधर्म कयुं कर्तव्य करवाथी थाय छे ? शुं ब्राह्मणो धर्मनुं सत्य स्वरूपज जाणता नथी ? अथवा तो जाणता छता पण मारी विप्रतारणा करे छे ? ' आवी रीते आ संबंधमां ते विशेष चिंतन करवा लाग्यो अने तेना योगे रात्रिना समये ते निद्रा पण पूरी प्राप्त करी शकतो नहीं. एक समये वाहड नामना अमात्ये आवीने राजाने नमन कर्युं अने कह्युं के-' राजन् ! तमने जो धर्माधर्मना स्वरूपने जाणवानी जिज्ञासा होय तो हुं कहुं ते सांभळो. ' एम कही वाहड मंत्रीए जैनाचार्य हेमचंद्र सूरिनो संक्षिप्त परिचय आप्यो.

मंत्रिए जणाव्युं के-पूर्वे, पूर्णतल्लनामना गच्छमां श्रीदत्तसूरि नामे एक आचार्य थई गया. तेओ परिभ्रमण करता एक वखते वागडदेशना 'रयणपुर' नामना गाममां गया. त्यां ते वखते यशोभद्र करीने एक राजा राज्य करतो हतो. ते श्रीदत्तसूरिपासे आवी हमेशां धर्मबोध सांभळवा लाग्यो. दत्तसूरि त्यां केटलोक समय रही अन्यत्र चाल्या गया. पाछळथी ते राजाने संसार उपर विरक्ति थई आवी अने तेथी ते बधो राज्यभार छोडी दत्तसूरिपासे दीक्षा लेवा निकळी पडयो. सूरि ते समये

‡ जइ वि चरियं इमाणं मणोहरं अत्थि बहुयमन्नं पि । तहवि जिणधम्म-पडिबोह-बंधुरं किं पि जंपेमि ॥
बहु भक्ख-जुयाइ वि रसवईए मज्झाओ किंचि भुंजंतो । निय-इच्छा-अणुरूवं पुरिसो किं होइ वयणिज्जो ॥

'डिंडुआणापुर' मां रहेता हता तेथी राजा त्यां गयो. तेनी पासे एक बहुमूल्य मुक्ताहार हतो. तेने वेची तेना द्रव्यथी त्यां एक 'चउवीसजिणालय' नामे मोटुं जैनमंदिर बंधाव्युं[1] अने पछी साधुपणुं लई दत्तसूरिनो शिष्य थयो. साधुव्रत लईने तेणे अनेक प्रकारनां तपश्चरणो कर्यां अने ऊंडो शास्त्राभ्यास करी यशोभद्रसूरि नामे आचार्यपद प्राप्त कर्युं. आचार्य थया पछी तेमणे लोकोने धर्मोपदेश आपवा जुदा जुदा स्थळोमां परिभ्रमण कर्युं. ज्यारे वृद्धावस्थाना योगे शरीर बहु शिथिल अने क्षीणप्राय थयुं त्यारे उज्जयंत (गिरनार) तीर्थ उपर जई तेमणे अनशनव्रत अंगीकार कर्युं अने समाधिपूर्वक स्वर्गस्थ थया. तेमना शिष्य प्रद्युम्नसूरि करीने थया जेमणे 'ठाणयपगरण (स्थानकप्रकरण)' नामे ग्रंथ बनाव्यो. तेमना शिष्य गुणसेनसूरि अने तेमना शिष्य देवचंद्रसूरि थया. देवचंद्रसूरिए प्रद्युम्नसूरिरचित 'ठाणयपगरण' उपर टीका बनावी छे. तथा 'शांतिजिनचरित्र' लख्युं छे.

ए देवचंद्रसूरि फरता फरता एक वखते धंधुका नामे गाममां गया. त्यां चच्च अने चाहिणी नामे मोढ जातीय वणिग्दंपतीनो चंगदेव नामे एक प्रतिभावान् बालक तेमनी पासे आववा लाग्यो अने निरन्तर तेमनो धर्मबोध सांभाळवा लाग्यो. तेमना उपदेशथी प्रबुद्ध थई बालक चंगदेव तेमनो शिष्य थवा तैयार थयो, अने तेमनी साथेज ते रहेवा-फरवा लाग्यो. फरता फरता देवचंद्रसूरि खंभातमां आव्या, अने त्यां, ते बालकना मामा नामे नेमि द्वारा चच्च अने चाहिणीने समजावी-बुझावी, तेने दीक्षा आपी अने चंगदेवना बदले सोमचंद्र नाम स्थाप्युं. अलौकिक बुद्धिशाळी बालक साधु सोमचंद्र थोडाज समयमां सकळ शास्त्रोनो अभ्यास करी समर्थ विद्वान् थयो अने गुरुए तेनी पूर्ण योग्यता जोई हेमचंद्र एवा नवीन नामनी साथे तेने आचार्यपद प्रदान कर्युं. हेमचंद्राचार्यनी विद्वत्ताथी मुग्ध थई सिद्धराज जयसिंह देव तेमना उपर बहु भक्तिभाव धरावतो हतो, अने दरेक शास्त्रीय बाबतना तेमनी पासे खुलासा मेळवी संतुष्ट थतो हतो. तेमना उपदेशथी सिद्धराजनी जैनधर्म उपर प्रीति थई हती, अने तेना उपलक्ष्यमां तेणे 'रायविहार' नामे एक जैनमंदिर पाटणमां, अने 'सिद्धविहार' नामे एक मंदिर सिद्धपुरमां बंधाव्युं हतुं. सिद्धराजना कथनथी हेमचंद्राचार्ये 'सिद्धहैमव्याकरण' नामे सर्वांगपूर्ण शब्दशास्त्र बनाव्युं हतुं. हेमचंद्राचार्यनो अमृतोपम उपदेश सांभळ्या विना सिद्धराजने जरा पण चेन पडतुं न हतुं.

आवी रीते हेमचंद्रसूरिनो परिचय आपी अमात्य वाहडे कुमारपाल राजाने कह्युं के-'महाराज! तमने पण जो धर्मना यथार्थ स्वरूपने जाणवानी इच्छा होय तो भक्तिपूर्वक ए आचार्यनी पासे जई, ए संबंधमां पृच्छा करो.' मंत्रीनुं आ कथन सांभळी राजा हमेशां हेमचंद्राचार्य पासे जई धर्मबोध सांभळवा लाग्यो.

आचार्यजीए प्रथम तो विविध दृष्टांतो अने आख्यानो द्वारा राजाने यथावसर प्राणिहिंसा, द्यूतरमण, मांसभक्षण, मद्यपान, वेश्यागमन अने धनापहरण इत्यादि दुराचरणोथी मनुष्य अने मनुष्यसमाजनी केवी अधोगति थाय छे, ते वारंवार समजावी, तेनी पासेथी, आखा राज्यमां तेवां दुराचरणोनो, राजाज्ञाना रूपमां सर्वथा निषेध कराव्यो. तदनंतर, तेमणे कुमारपालने जैनधर्मप्रतिपादित देव, गुरु अने धर्म तत्त्वनो विशिष्ट बोध आपवा मांड्यो. सद्देव, सद्गुरु, अने सद्धर्मनी उपासनाथी आत्मानी केवी प्रगति थाय छे अने असद्देव, गुरु, अने धर्मनी उपासनाथी केवी अवगति थाय छे, तेनी, विविध कथानको द्वारा स्पष्ट समजण आपवा मांडी. सूरिना ए बोधथी कुमारपालनी जैनधर्म तरफ प्रीति वधती गई अने क्रमे क्रमे ते ए धर्म उपर अधिकाधिक अनुरक्त थतो गयो. जैनधर्म उपरना पोताना अनुरागना

---

[1] ग्रंथकार सोमप्रभाचार्य आ ठेकाणे जणावे छे के-ते 'चउवीसजिणालय' मंदिर आजे पण त्यां (डिंडुआणा पुरमां) विद्यमान छे.

उपलक्ष्यमां प्रथम तो तेणे ठेकाणे ठेकाणे जैन मंदिरो बंधाववा मांडयां. सौथी प्रथम तेणे पाटणमां, श्रीमालवंशीय मंत्री उदयनना पुत्र मंत्री बाहड अने वायडवंशीय गर्गसेठना पुत्रो नामे सर्वदेव अने सांबसेठनी देखरेख नीचे 'कुमारविहार' नामे चतुर्विंशति जिनालय युक्त महान् अने भव्य जैनमंदिर बंधाव्युं. ए विहारना मुख्य मंदिरमां, स्फटिकनिर्मित पार्श्वनाथ तीर्थकरनी मनोहर मूर्ति प्रतिष्ठित करी; तेनी आजुबाजुना बीजा २४ जिनालयोमां सुवर्ण, रजत अने पित्तल आदि धातुओनी बनेली जुदा जुदा तीर्थकरोनी प्रतिमाओ स्थापन करवामां आवी. तेना पछी कुमारपाले 'त्रिभुवनविहार' नामे अत्युच्च अने अतिभव्य मंदिर बंधाव्युं. ए मंदिर ७२ जिनालयोथी परिवेष्टित हतुं. एनो विशाल आमलसार अने ते उपरना कलशो सुवर्णमय बनाववामां आव्या हता. मूळ मंदिरमां नीलरत्ननिर्मित महत्प्रमाण एवी नेमिनाथ तीर्थकरनी प्रतिमा, अने आसपासना ७२ जिनालयोमां, भूत, भविष्य अने वर्तमानकालना एम ७२ तीर्थकरोनी पित्तलमय प्रतिमाओ प्रतिष्ठित करवामां आवी. ए सिवाय, २४ तीर्थकरना, २४ जुदां जुदां मंदिरो; तेमज 'त्रिविहार' प्रमुख बीजा पण घणा विहारो तेणे एकला पाटण शहेरमांज कराव्या हता. पाटण सिवाय बीजां नगरो अने गामोमां तेणे जे मंदिरो बंधाव्यां छे तेनी तो संख्या पण कोई जाणतो नथी. ए मंदिरोमां, जसदेवना पुत्र दंडाधिप अभयनी देखरेख नीचे तारंगापर्वत उपर बंधावेलुं अजितनाथनुं महान् मंदिर खास उल्लेख करवा योग्य छे.

आवी रीते मात्र जिनमंदिरो बंधावीने जे कुमारपाल पोतानी जैनधर्म प्रत्येनी श्रद्धा बतावी अटकी गयो न होतो; परंतु एक परम श्रद्धालु श्रावकनी माफक ते हमेशां जिनमंदिरमां जई जिनमूर्तिनी भावपूर्वक पूजा पण करतो हतो अने जैनधर्मनो महिमा प्रकट करवा माटे अष्टाह्निका महोत्सव विगेरे जैन उत्सवो पण घणा ठाठथी उजवतो हतो. ए महोत्सवो प्रतिवर्ष, चैत्र अने आश्विन मासना शुक्ल पक्षना छेल्ला आठ दिवसोमां, पाटणना मुख्य अने प्रसिद्ध मंदिर नामे 'कुमारविहार' मां करवामां आवता हता. महोत्सवनी समाप्तिना दिवसे-एटले चैत्र अने आश्विन मासनी पूर्णिमाना दिवसे-सांजना वखते, रथयात्रानो वरघोडो निकळतो. हाथिए जोडेला रथनी अंदर पार्श्वनाथनी मूर्ति स्थापवामां आवती. रथ प्रथम 'कुमारविहार' मांथी निकळतो अने अनेक सामंत, मंत्री, व्यापारी आदिना समूहथी विंटळाएलो ते राजमंदिरमां जतो. त्यां राजा जाते वस्त्र अने आभूषणोथी रथस्थ प्रतिमानी पूजा करतो. अन्य जनो ते वखते विविधभावव्यंजक अने स्तवनासूचक नृत्य अने गानादि करता. ते रात्रिए रथने त्यां (राजमंदिरमां) ज राखवामां आवतो अने बीजे दिवसे, सवारना वखते, सिंहद्वार बहार, तेना माटे खास उभा करेला मंडपमां लई जवामां आवतो. राजा पण त्यां साथे जतो, अने सकळ जनसमूहनी समक्ष, रथस्थ जिनप्रतिमानी सौथी प्रथम स्वयमेव आरती उतारतो. पूजा विगेरे सघळी क्रिया थई रह्या बाद रथ पाछो नगरमां आववा निकळतो. नगरना बधा राजमार्गोमां परिभ्रमण करतो करतो अने ठेकाणे ठेकाणे बांधेला मंडपो नीचे उभो रहेतो रहेतो, घणा आडंबरपूर्वक रथ पाछो पोताना स्थानके पहोंचतो. आवी रीते कुमारपाल जाते जैनधर्मनो महिमा करतो अने पोताना ताबामांना बीजा मांडलिक राजाओ पासे पण तेवी रीते करावतो. तेना हुकमथी बधा मांडलिक राजाओए पोतपोताना नगरोमां कुमारविहारो बंधाव्या हता, अने तेमनी अंदर आवा महोत्सवो पण हमेशां करता-करावता हता.

एक दिवसे कुमारविहारमां बेसीने कुमारपाल हेमचंद्राचार्य पासे धर्मोपदेश सांभळतो हतो ते वखते केटलाक विदेशी धनाढ्य जैन यात्रिओए आवीने आचार्यने अने राजाने प्रणाम कर्या. ते यात्रिओ सौराष्ट्र (काठियावाड) देशमां आवेलां जैन तीर्थोनी यात्रा करवा निकळ्या हता; अने रस्तामां पाटण शहेर आववाथी, त्यांना मंदिरोनी यात्रा करवा तथा आचार्य हेमचंद्र अने राजा कुमारपाल जेवा

जैनधर्मना महान् पुरुषोनां दर्शन करवा तेओ त्यां रोकाया हता. ते यात्रिओने जोईने कुमारपालना मनमां पण तीर्थयात्रा करवानी इच्छा थई, अने हेमचंद्राचार्यने पूछी यात्रानी तैयारी करवा मांडी. ज्योतिषिए बतावेला शुभ मुहूर्तमां, हेमचंद्रसूरिना प्रमुखपणानीचे तेणे पोताना चतुरंग सैन्य अने चतुर्विध संघ-साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप जैन जनसमूह-साथे सौराष्ट्र देश तरफ प्रयाण कर्युं. मार्गमां आवतां ग्राम अने नगरोनां जिनमंदिरोनी पूजा-उपासना करता कुमारपालना ए महान् संघे रैवत (गिरनार) पर्वतनी नीचे आवेला गिरिनगर (जुनागढ) नी पासे जई पडाव नांख्यो.

गिरनार पर्वतनो चढाव बहु विषम होवाथी (ते वखते उपर चढवा माटे पगथिआं बांधेलां न होतां) राजा उपर चढी नहीं शक्यो, तेथी प्रधान पुरुषोना हाथे पूजा आदिनी सामग्री मोकली दई पोतानी अशक्तता माटे खेद करतो ते त्यां नीचेज बेसी रह्यो. बाकी बीजा बधा यात्रिओ पर्वत उपर गयां अने जिनपूजा आदि तीर्थकृत्य करी यथावसरे पाछा नीचे आव्या. त्याथी ए संघ शत्रुंजय तीर्थनी यात्रा करवा गयो. त्यां बधा यात्रिओनी साथे राजा पण पर्वत उपर चढयो अने तीर्थनायक ऋषभदेवनी भक्तिपूर्वक पूजा-सेवा करी आनंदित थयो. शत्रुंजयना ए पवित्र जिनमंदिरनो जीर्णोद्धार कुमारपालनी आज्ञाथी वाहड मंत्रिए थोडा ज समय पहेलां कराव्यो हतो, तेथी ते मंदिर जोई राजा बहु खुशी थयो. आवी रीते गिरनार अने शत्रुंजय नामना सौराष्ट्रना बंने प्रसिद्ध जैनतीर्थोनी ठाठ साथे यात्रा करी राजा पाछो पोतानी राजधानीमां आव्यो.

गिरनार पर्वतना चढावनी विषमताना कारणे राजा ते उपर जे चढी नहीं शक्यो हतो अने तेना लीधे तीर्थपति नेमिनाथनी जे पूजा-अर्चा करी नहीं शक्यो हतो, तेथी तेने बहु खेद थयां करतो हतो. एक दिवसे पोतानी राजसभामां प्रसंगोपात वात निकळतां राजाए पूछयुं के गिरनार उपर लोकोने चढवा माटे सुगम एवो रस्तो बंधावी आपे एवो कोई पुरुष छे? ते वखते कविचक्रवर्ती श्री श्रीपालना पुत्र कवि सिद्धपाले ते कार्य माटे राणिगना पुत्र आम्रनुं नाम सूचव्युं. राजाए कविनी सूचनानुसार आम्रने सौराष्ट्रनो दंडनायक (सुबेदार) नीमी गिरनार मोकल्यो अने त्यां पर्वत उपर पगथिआं बांधवानो हुकम कर्यो.

तदनंतर, कुमारपाले अनाथ अने असमर्थ श्रावक आदि जनोना भरण पोषण अर्थे एक सत्रागार बंधाव्यो जेनी अंदर विविध जातनां भोजनो अने वस्त्रादि तेना अर्थिओने आपवामां आवतां हतां. तेमज ते सत्रागारनी पासेज एक पौषधशाला बंधावी के जेनी अंदर रहीने धर्मार्थी जनो धर्मध्यान करता पोतानुं जीवन शांतरीते व्यतीत करी शके. सत्रागार अने पौषधशालानो कारभार चलाववा माटे श्रीमालवंशीय नेमिनागना पुत्र श्रेष्ठी अभय कुमारनी योजना करी हती. ते श्रेष्ठी बहुज सत्यव्रत, दयाशील, सरलस्वभाव अने परोपकारपरायण हतो. तेनी आवा पुण्यदायक कार्य उपर थएली योग्य नियुक्तिने जोई कवि सिद्धपाल राजानी योग्य प्रशंसा करी हती.

त्यार बाद आचार्य हेमचंद्रे कुमारपालने श्रावक धर्ममां पालवा योग्य १२ व्रतोनो विस्तार साथे बोध कर्यो. प्राचीन कालमां आनंद अने कामदेवादि परम जैन गृहस्थोए जे रीते श्रावकधर्मनुं पालन कर्युं हतुं, तथा प्रत्यक्षमां पण, खुद पाटण निवासी छड्डुअ नामना महान् धनाढ्य श्रावके जे रीते पोतानी पासे श्रावकना १२ व्रतोनो स्वीकार कर्यो हतो, तेनां उदाहरणो आपी हेमचंद्रसूरिए कुमारपालनी श्रावक-धर्म-अंगीकरण तरफ सुरुचि उत्पन्न करी. राजाए तेमना बोधानुसार एक राजर्षिने शोभे तेवी रीते श्रावकव्रतनो श्रद्धा पूर्वक स्वीकार कर्यो. अने आवी रीते अंते कुमारपाले जैनधर्मनो पूर्ण स्वीकार करी ते एक परमार्हत जैन राजा थयो.

जैन थया पछी कुमारपालनी नित्यनी दिनचर्या आ प्रमाणे बताववामां आवी छेः—ते प्रति दिवस

प्रातःकालमां व्हेलो उठतो अने सौथी प्रथम, जैनधर्ममां सुप्रसिद्ध एवा पंचनमस्कारमंत्रनुं स्मरण करतो. त्यार बाद पोताना इष्ट देव-गुरुनुं ध्यान करतो. पछी कायशुद्धि विगेरे करी, राजमंदिरमांज आवेला जिनमंदिरमां जई जिनप्रतिमानी पुष्प, नैवेद्य विगेरेथी पूजा करी पंचांग प्रणिपात करतो; तथा यथाशक्ति नमोक्कारसी विगेरे तपनुं प्रत्याख्यान करतो हतो. त्यार बाद, अश्वसर थए, हाथीना होदे बेसी, अनेक सामंत, मंत्री आदि साथे 'कुमार विहार' मां जतो, अने त्यां अष्टप्रकारी पूजा करी भावपूर्वक प्रभुप्रार्थना करतो. त्यांथी पछी ते हेमचंद्राचार्य पासे जतो अने चंदन, कर्पूर तथा सुवर्णकमलादिथी तेमनी चरणपूजा करतो हतो. तदनंतर तेमनी आगळ बेसीने धर्मोपदेश सांभळतो अने उपदेशनी समाप्ति थए यथाशक्ति कांईक तपस्यानुं प्रत्याख्यान करी लगभग मध्याह्न समये पाछो राजभुवनमां आवतो हतो. राजमंदिरमां आवी याचक विगेरे लोकोने उचित वृत्तिनुं वितरण करी, पुनः नैवेद्य विगेरेना थाळो भरी गृहचैत्यनी पूजा करतो अने पछी पोते पवित्र भोजननुं सेवन करतो हतो.

भोजन कर्या बाद ते सभामां जईने बेसतो अने त्यां जुदा जुदा विद्वानो साथे धर्मशास्त्र अने तत्त्वविचारनी वातो करतो तथा तेमनी पासेथी सांभळतो. आ विद्वानोमां कवि सिद्धपाल मुख्य हतो. ते हमेशां राजानी आगळ विविध प्रकारनी कथावार्ताओ करी तेना मनने शांत अने संतुष्ट राखतो हतो.

दिवसना चतुर्थ प्रहरमां (एटले लगभग त्रण वाग्या पछी) कुमारपाल राजसभामां सिंहासन उपर जईने बेसतो, अने त्यां आगळ सामंत, मंत्री, मांडलिक अने शेठ साहुकार आदि राजकीय अने प्रजावर्गीय पुरुषो साथे राज्यकारभार संबंधी विचार-विनिमय चलावतो. तथा लोकोनी विज्ञप्तिओ (फर्यादो)सांभळतो अने तेनो उचित निकाल करतो. राजानो धर्म छे एम जाणी क्यारे क्यारे, मल्लविगेरेनी कुस्तीओ के हाथी विगेरेनी साटमारी जेवी रमतो पण आलिप्तमने ते जोतो हतो.

आवी रीते राज्यकार्य कर्या पछी, जो अष्टमी या चतुर्दशीनो दिवस न होय तो, बे घडी दिवस रहेते सायंकालनुं भोजन करतो—अष्टमी अने चतुर्दशीना दिवसे ते एकज वार भोजन लेतो हतो. भोजन-कर्या बाद पुष्प आदिथी गृहचैत्यनी सायंकालिकी पूजा करतो अने वारवधूओ पासे आरती-मंगलादि करावतो. त्यार बाद रात्रिना केटलाक समय सुधी, चारण अने गायक आदि जनो तेनी आगळ बेसीने जे गुणगान तथा गायन-वादन आदि करता ते सांभळतो अने ज्यारे निद्रानो समय थतो त्यारे मनमां वैराग्य अने ब्रह्मचर्यना विचारोनुं चिंतन करतो शय्याधीन थतो हतो.

ते जैनधर्मप्रसिद्ध नमस्कारमंत्रनुं सतत स्मरण करतो रहेतो हतो. ए मंत्र उपर तेनी बहुज श्रद्धा हती. ते कह्यां करतो हतो के, जे कार्यो, विपुल सैन्य साथे दिग्यात्रा करती वखते पण माराथी सिद्ध न होतां थयां, तथा जे शत्रुओ मारी जातनी चढाईथी पण वश न होता थया, ते कार्यो आ नमस्कार मंत्रना प्रभावथी विना यत्ने सिद्ध थाय छे; तथा ते शत्रुओ अंबड जेवा वणिग् दंडेशोथी पण वश थई रह्या छे. अत्यारे, आ नमस्कार मंत्रना प्रभावथी मारा राज्यमां कोई पण स्वचक्र के परचक्रनो भय नथी तेमज दुर्भिक्षादिनुं पण क्यांए नाम सुधां संभळातुं नथी. इत्यादि.

आवी रीते आ ग्रंथमां, संक्षेपमां कुमारपालना जैन धार्मिक जीवननो सार आपवामां आव्यो छे. कुमारपाल अने तत्कालीन अन्यान्य प्रसिद्ध पुरुषो, के जेमनो उल्लेख प्रसंगोपात्त आ ग्रंथमां करवामां आव्यो छे, तेमना संबंधमां विशेष हकीकतो प्रभावकचरित्र, प्रबंधचिन्तामणि, जयसिंहसूरिकृत-कुमारपालचरित्र, चारित्रसुंदर रचित-कुमारपालचरित्र, जिनमंडन कृत-कुमारपालप्रबंध; इत्यादि प्राचीन ग्रंथोमां; तेमज फार्बसकृत रासमाला अने बॉम्बेगेझेटीअर आदि अर्वाचीन ऐतिहासिक ग्रंथोमां यथाज्ञात प्रकट थएलीज छे, तेथी ते संबंधमां अहीं कांई लांबुं लखवुं अनुपयुक्त छे.

यद्यपि उक्तरीते आ ग्रंथमां ऐतिहासिक वृत्तांत बहुज अल्पप्रमाणमां आपवामां आव्यो छे; तो पण

जे आप्युं छे ते संपूर्ण विश्वस्त अने प्रामाणिक छे; एम आपणे स्पष्ट कबुल करवुं जोईए. कारण के ग्रंथकार खुद कुमारपालना समकालीनज नहीं परंतु तेना अंतरंग जीवनथी सविशेष परिचित पण हता, एम आपणे उपर आपेला तेमना परिचयथी निश्चित रूपे समजी शकीए छीए.

कुमारपालना धार्मिक जीवनना संबंधमां तेना समकालीन एवा त्रण लेखकोना लखेलां वर्णनो मळी आवे छे. ए लेखकोमां एक तो खुद तेना धर्मगुरु आचार्य हेमचंद्र पोतेज छे. तेमणे कुमारपाल चरित्र (प्राकृतद्व्याश्रय) मां अने महावीरचरित्रमां तेना संबंधमां केटलुंक संक्षिप्त वर्णन आप्युं छे. कुमारपालचरित्रमां आपेलुं वर्णन अने प्रस्तुत ग्रंथमां आपेलुं वर्णन-तेमांए खास करीने तेनी दिनचर्या संबंधी वर्णन तो-सारखणी करतां लगभग अर्थशः संपूर्ण मळतुं आवे छे. बीजो लेखक कवि यशःपाल छे जेणे कुमारपालना आध्यात्मिक जीवनने अनुलक्षीने मोहराजपराजय नामनुं नाटक रच्युं छे. आ कवि पोताने अजयदेव चक्रवर्ती (के जे कुमारपालनो उत्तराधिकारी हतो) नो चरणसेवी बतावे छे. तेथी ए पण कुमारपालनो समकालीन ज हतो, ए अर्थात् सिद्ध छे. 'मोहराजपराजय' मां, कुमारपाले पोताना राज्यमांथी प्राणिहिंसा, मांसभक्षण, द्यूतरमण, वेश्यागमन आदि पाप व्यसनोनो जे सर्वथा बहिष्कार कराव्यो हतो तेनुं घणुं मनोहर अने हृदयंगम वर्णन करेलुं छे. त्रीजा लेखक आ प्रस्तुतग्रंथ प्रणेता सोमप्रभाचार्य छे. आ त्रणे लेखको जवाबदार अने प्रमाणभूत होवाथी तेमना कथनमां कोई पण प्रकारना संदेहने अवकाश नथी. आ लेखकोना चोक्कस कथन उपरथी जणाय छे के कुमारपाल एक परमधार्मिक जैन राजा हतो. जैन धर्म उपर तेनी पूर्ण श्रद्धा हती अने ए धर्मप्रतिपादित आचार-विचारोनुं पालन करवा तेणे संपूर्ण कोशीश करी हती; जैन धर्मनो प्रसार करवा तेणे बनता प्रयत्नो कर्या हता; अने तेनो प्रभाव स्थापवा तेणे पोताने तन्मय बनाव्यो हतो. ते स्वभावथी सरल अने विचारथी उदार हतो. जैन धर्म उपर तेनो पूर्ण अनुराग होवा छतां पण अन्यधर्मो उपर तेणे क्यारे पण पोतानो अभाव प्रकट कर्यो न हतो. एक प्रजापालक राजा तरीके ते दरेक धर्म उपर समान भावेज आदर राखतो हतो. ते जाते सदाचारी अने सद्गुणानुरागी हतो. तेना राज्यथी लोको पूर्ण सुखी अने संतुष्ट हता. इत्यलम्.

कुमारपाल प्रतिबोधनी अंतनी प्रशस्ति नीचे प्रमाणे छे.—

सूर्याचन्द्रमसौ कुतर्कतमसः कर्णावतंसौ क्षितेर्धुर्यौ धर्मरथस्य सर्वजगतस्तत्त्वावलोके दृशौ ।
निर्वाणावसथस्य तोरणमहास्तम्भावभूतामुभावेकः श्रीमुनिचन्द्रसूरिरपरः श्रीमानदेवप्रभुः ॥
तयोर्बभूवाजितदेवसूरिः शिष्यो बृहद्गच्छनभःशशाङ्कः । जिनेन्द्रधर्माम्बुनिधिः प्रपेदे घनोदकः स्फूर्तिमतीव यस्मात् ॥
श्रीदेवसूरिप्रमुखा बभूवुरन्येऽपि तत्पादपयोजहंसाः । येषामवाधाराचेतास्थितानां नालीकमैत्री मुदमाततान ॥
विशारदशिरोमणेरजितदेवसूरेरभूत्क्रमाम्बुजमधुव्रतो विजयसिंहसूरिःप्रभुः ।
मितोपकरणक्रियाऽचिरनिलवार्थी च यश्चिरन्तनमुनिव्रतः व्यधित दुःषमायामपि ॥
तत्पट्टपूर्वाद्रिसहस्ररश्मिः सोमप्रभाचार्य इति प्रसिद्धः । श्रीहेमसूरेश्च कुमारपालदेवस्य चेदं न्यगदच्चरित्रम् ॥
सुकविरिति न कीर्ति नार्थलाभं न पूजामहमभिलषमाणः प्रावृतं वक्तुमेतत् ।
किमुत कृतसुमाभ्यां दुष्करं दुःषमायां जिनमतमतुलं तत्कीर्त्तनापुण्यमिच्छुः ॥
धर्मे निर्मलतामवाप्तुमतुलां श्रीहेमचन्द्रप्रभौ भक्तिं व्यञ्जितुमद्भुतां भणितिषु द्रष्टुं परामौचितीम् ।
श्रोतुं चित्ररसाश्रमत्कृतिकृतः काव्यं च लोकोत्तरं कर्तुं कामयसे यदि स्फुटगुणं तद्ग्रन्थमेतं शृणु ॥
प्राग्वाटान्वयसागरेन्दुरसमप्रज्ञः कृतज्ञः क्षमी वाग्मी सूक्तिसुधानिधानमजनि श्रीपालनामा पुमान् ।
यं लोकोत्तरकाव्यरञ्जितमतिः साहित्यविद्यारतिः श्रीसिद्धाधिपतिः कवीन्द्र इति च भ्रातेति च व्याहरत् ॥
पुत्रस्तस्य कुमारपालनृपतिप्रीतेः पदं धीमतामुत्तंसः कविचक्रमस्तकमणिः श्रीसिद्धपालोऽभवत् ।
कल्मषं तद्वसताविदं किमपि यच्चायुक्तमुक्तं मया तद्बुधमाभिरिहोच्यतामिति बुधा वः प्राञ्जलिः प्रार्थये ॥

हेमसूरिपदपङ्कजहंसैः श्रीमहेन्द्रमुनिपैः श्रुतमेतत् । वर्द्धमान-गुणचन्द्र-गणिभ्यां साकमाकलितशास्त्ररहस्यैः ॥
यावन्निहताखिलसन्तमसौ नभसि चकास्तो रविचन्द्रमसौ । तावत् हेमकुमारचरित्रं साधुजनो वाचयतु पवित्रम् ॥

विमलमतिसुधार्चिर्नेमिनागाङ्गजन्माऽभवदभयकुमारः श्रावकः श्रेष्ठिमुख्यः ।
अथ निजकरपद्मप्राप्तधर्मार्थपद्मा विजितपदकपद्मा तस्य पद्मीति पत्नी ॥

तत्पुत्रा गुणिनोऽभवन् भुवि हरिश्चन्द्रादयो विश्रुताः श्रीदेवीप्रमुखाश्च धर्मधिपणापात्राणि तत्पुत्रिकाः ।
तत्प्रीत्यर्थमिदं व्यधायि तदुपट्टरागच्छष्टात्मभि (?)-र्भूयिष्ठानि च पुस्तकानि ....सोऽलेखयत् ।
शशिजलधिसूर्यवर्षे शुचिमासे रविदिने सिताष्टम्याम् । जिनधर्मप्रतिबोधः क्लृप्तोऽयं गुर्जरेन्द्रपुरे ॥
प्रस्तावपञ्चकेऽप्यत्राष्टौ सहस्राण्यनुष्टुभाम् । एकैकाक्षरसंख्यातान्यधिकान्यष्टभिः शतैः ॥

संवत १४५८ वर्षे द्वितीयभाद्रपदशुदि ४ तिथौ शुक्रदिने श्रीस्तंभतीर्थे वृहद्ध (वृद्ध) पौषधशालायां भट्ट० श्रीजयतिलकसूरीणां उपदेशेन श्रीकुमारपालप्रतिबोधपुस्तकं लिखितमिदं ॥ कायस्थ ज्ञातीयमहं मंडलिकसुत पेतालिखितं ॥ चिरं नंदतु ॥ छ ॥ उ० श्रीजयप्रभगणिसष्य (शिष्य) उ० श्रीजयमंदिरगणि सष्य (शिष्य) भट्टा० श्रीकल्याणरत्नसूरिगुरुभ्यो नमः पं० व (वि) द्यारत्नगणि ।

सोमप्रभाचार्य रचित शतार्थवृत्तकाव्यनी टीकाना प्रारंभमां नीचे प्रमाणे ५ श्लोको आपवामां आव्या छे जेमां १०० अर्थोनी अनुक्रमणिका आपवामां आवी छे.

अत्र स्तुताश्चतुर्विंशतिर्जिनाः सिद्ध-सूर्य उपाध्यायाः । मुनि-पुण्डरीक-गौतम-सुधर्म-पञ्चव्रती-समयाः ॥
श्रुतदेवी-पुरुषार्थाः विधि-नारद-देव-विष्णु-बलभद्राः । श्रीः प्रद्युम्नश्चक्र शङ्ख-शिव-गिरिसुता-स्कन्दाः ॥
हेरम्बः कैलाशो ग्रह-दिक्पाला जयन्त-घन-मदिराः । कनका-ऽब्धि-सिंह-हय-करि-सरोज-भुजगाः शुकोऽरण्यम् ॥
मानसरो-ऽन्न-चैद्या-ऽनिलसुत-पत्नी-महा-गुरुचतुष्कम् । जयसिंह-कुमारनृपाः जयदेवो मूलराजश्च ॥
श्रीसिद्धपालकवि रजितदेवसूरि-र्गुरुर्विजयसिंहः । तच्छिष्यः सोमप्रभसूरिश्च शतार्थवृत्तकविः ॥

शतार्थवृत्तनी वृत्तिना अंतमां सोमप्रभाचार्यना पितावगेरेना उल्लेखवाला जे श्लोको आप्या छे ते नीचे प्रमाणे छे.—

स एव शिष्यः स्वकृतेः कविर्त्वैर्गुरोर्गरिम्णा जितकाञ्चनाद्रेः । गृहस्थभावा-ऽन्वयकीर्तनेन व्यनक्ति भक्तिं पुनरुक्तमेताम् ॥
प्राग्वाटान्वयनीरराशिरजनीजानिर्जिनार्चापरः संजातो जिनदेव इत्यभिधया चूडामणिर्मन्त्रिणाम् ।
यस्यौदार्य-विवेक-विक्रम-दया-दाक्षिण्य-पुण्यैर्गुणैः । साम्यं लब्धुमहर्निशं जगदपि क्लिश्यन्न विश्राम्यति ॥

तस्याऽऽत्मजः सुजनमण्डलमौलिरत्नमुज्जृम्भितेन्द्रियजयोऽजनि सर्वदेवः ।
एकस्थसर्वगुणनिर्मितकौतुकेन धात्रा कृतोऽयमिति यः प्रथितः पृथिव्याम् ॥
सूनुस्तस्य प्रथमकमलादर्पणः पुण्यकामः कौमारेऽपि स्मरमदजयी जैनदीक्षां प्रपन्नः ।
विश्वेस्याऽपि श्रुतजलनिधेः पारमासाद्य जज्ञे श्रीमान् सोमप्रभ इति लसत्कीर्तिराचार्यवर्यः ॥
यो गृह्णाति समश्रुतं वहति यस्तर्काद्भुतं पाटवं काव्यं यस्त्वरितं करोति तनुते यः पावनीं देशनाम् ।
योऽयध्नान् सुमतेश्वरिव + + भट्टाः सुक्तिपङ्क्तिपरां श्रीसोमप्रभसूरिरेष व्रते शतार्थे व्यर्थान् ॥

डॉ. हर्मन जेकोबीनी जैन सूत्रोनी प्रस्तावना

(प्रथम भाग.)

[अनुवादक—शाह अंबालाल चतुरभाई, बी. ए.]

[प्रथम अंकमां डॉ. हर्मन जेकोबीनी कल्पसूत्रनी प्रस्तावनानो अनुवाद आपवामां आव्यो छे. आज आ नीचे, ' पूर्वना पवित्र पुस्तको (Sacred Books of the East) ' नामनी सुप्रसिद्ध ग्रंथमालामां ' जैन सूत्रो ' नामे तेमनां जे बे पुस्तको प्रसिद्ध थयां छे, तेमाना पहेलां पुस्तकनी (नं. २२) प्रस्तावनानो अनुवाद उपस्थित करवामां आवे छे. ए पुस्तकमां आचारांग अने कल्पसूत्र, एम बे जैन सूत्रोना भाषांतरो प्रकट करवामां आव्यां छे.—संपादक.]

जैन धर्मनी उत्पत्ति तथा उत्क्रांतिना संबंधमां विवेचन करतां वखते, केटलाएक विद्वानो हजी पण, जे शंकाशील कथन करवुं रीतसर समजी रह्या छे, ते आ विषयना समग्र प्रश्ननी वर्तमान परिस्थिति जोतां बिलकुल योग्य होय तेम जणातुं नथी. कारण के हवे जैन धर्मनुं साहित्य मोटा प्रमाणमां उपलब्ध थएलुं छे अने तेथी जे कोई विद्वानने ए धर्मना प्राचीन इतिहासनां साधनोने संगृहीत करवानी इच्छा होय तेने तेमांथी तेवां पुष्कळ साधनो मळी शके तेम छे. अने वळी आ साधनो पण एवां नथी के जेथी तेमां आपणने अश्रद्धा राखवानुं कारण मळे. आपणे जाणीए छीए के जैनोना पवित्र पुस्तको—अर्थात् आगमो—प्राचीन छे.—जेने आपणे संस्कृत काळनुं साहित्य (Classical literature) कहीए छीए ते करतां स्पष्ट रीते वधारे प्राचीन छे. ए आगमोनी प्राचीनताना संबंधमां कहेवुं जोईए के तेमांना घणाक ग्रंथो, उत्तरीय बौद्धोना सौथी प्राचीन ग्रंथोनी साथे तुलनामां आवी शके तेवा छे. हवे बौद्धोना ए ग्रंथो जो बुद्ध अने बौद्धधर्मनो इतिहास तैयार करवामां साचां साधनरूपे स्वीकारायां छे तो तेज कोटिनां जैनोनां पवित्र पुस्तको तेमना इतिहासनां प्रामाणिक साधन तरीके शा माटे न स्वीकारी शकाय, ते समजी शकातुं नथी. जो आ ग्रंथो (जैन आगमो) परस्पर विरुद्ध कथनोथी भरेला होत अथवा तो तेमां आवेली तारीखोथी परस्पर विरोधी अनुमानो उभां थतां होत तो आवां साधनोना आधारे उत्पन्न थएला वधा सिद्धान्तोने शंकाशीलमने जोवानुं आपणा माटे न्याय्य गणात. परंतु जैनसाहित्यनुं स्वरूप आ बाबतमां बौद्ध साहित्यथी पण बहुज अल्पअंशे जूदुं पडे छे,—खास करीने उत्तरीय बौद्ध साहित्यथी. तो पछी शा माटे, आटला बधा लेखको, जैनसाहित्यमांथी मळी आवती ते धर्मनी उत्पत्ति अने स्थितिथी, भिन्न प्रकारनां अनुमानो करता हशे ?. आनुं कारण स्पष्ट छे, अने ते युरोपीय विद्वानोए जैनधर्म अने बौद्धधर्ममां परस्पर वास्तविक अगर आभासात्मक जे साम्य खोळी काढयुं छे, तेज छे. ए विद्वानोनुं एवुं मानवुं छे के आ बन्ने धर्मोमां जे आटलुं बधुं साम्य दृष्टिगोचर थाय छे तेथी, ते परस्पर स्वतंत्र नहीं होवा जोईए, परंतु एक बीजामांथी उत्पन्न थएला अथवा तो एक बीजानी शाखा रूपे प्रवर्तेला होवा जोईए. आ प्रकारना, कारण उपरथी करातकार्यना अनुमानात्मक अभिप्रायथी, घणा विवेचको—समालोचकोनी दृष्टि कलुषित थएली छे, अने अत्यारे पण तेम थती जोवामां आवे छे. आ पछीनां पृष्ठोमां हुं ए मिथ्याभ्रांतिने दूर करवानो प्रयत्न करीश अने जैनागमो जे खरेखरी प्रामाणि

कता अने प्रतिष्ठाने पात्र छे ते पुरवार करी आपीश. आपणे आपणी चर्चानो प्रारंभ महावीर विषयक ऊहापोहथी करीशुं के जेओ जैनधर्मना संस्थापक, निदान तेना अंतिम तीर्थंकर हता. अहीं मारे जणावी देवुं जोईए के, महावीर एक अर्वाचीन संप्रदाय द्वारा उभो करेलो अथवा कल्पी लीधेलो मात्र सांकेतिक पुरुष छे, के जे संप्रदाय पोताना कल्पित संस्थापकना मिथ्याकाल पछी घणी शताब्दिओ बाद उत्पन्न थयो हतो, ए जातना भ्रमने दूर करवा माटे पुरतुं साहित्य मळी चूक्युं छे.

श्वेतांबर तेमज दिगंबर—ए बन्ने जैन संप्रदायो जणावे छे के महावीर कुण्डपुर अथवा कुण्डग्रामना राजा सिद्धार्थना पुत्र हता. जैनोनी एवी मान्यता छे के आ कुण्डग्राम ते एक मोटुं नगर हतुं तथा सिद्धार्थ ते एक त्यांनो प्रतापी राजा हतो. परंतु कपिलवस्तु अने शुद्धोदनना संबंधमां बौद्धोना कथननी माफक, जैनोनुं पण आ खरी वस्तुस्थितिनुं अतिशयोक्ति द्वारा कराएलुं एक मिथ्या कथन छे. कुण्डग्रामने आचारांगसूत्रमां एक संनिवेश तरीके जणावेलुं छे के जेनो अर्थ टीकाकारे 'यात्रिओ अथवा सार्थवाहोनुं विश्रामस्थान' एम करेलो छे. आ उपरथी जणाय छे के ते (कुण्डग्राम) एक नजीवुं स्थान हशे. तेना संबंधमां मात्र एटलोज संप्रदाय मळी आवे छे के ते विदेहमां आवेलुं हतुं (आचारांग सूत्र २, १५६. १७.) बौद्ध तेमज जैन ग्रंथोमां प्रसंगे प्रसंगे मळी आवता उल्लेखो उपरथी महावीरनी जन्मभूमिना स्थानो आपणे योग्य निर्णय करी शकीए तेम छीए. बौद्धोना महावग्गसूत्रमां आपणे वांचिए छीए के बुद्ध ज्यारे कोटिग्गाममां वसता हता त्यारे तेमने, ते स्थाननी पासे आवेली वैशालीनामे राजधानीमांथी लिच्छविओ तथा अम्बापाली नामनी वेश्या मळवा आवी हती. कोटिग्गामथी बुद्ध ज्यां ञातिको रहेता हता त्यां गया हता, अने त्यां तेओ ञातिकोना इट्टिकागृहमां उतर्या हतां. आ स्थाननी नजीकमांज अम्बापाली वेश्यानुं अम्बपालिवन नामनुं उद्यान हतुं, जे तेणे बुद्ध अने तेमना संघने समर्पित कर्युं हतुं. त्यांथी तेओ वेसाली गया, अने त्यां लिच्छविओना सेनापतिने, जे निर्ग्रंथोनो एक श्रावक हतो, पोताना धर्मनो अनुयायी बनाव्यो. आ उपरथी बौद्धोनुं कोटिग्गाम अने जैनोनुं कुण्डग्गाम ए बन्ने एकज होय तेम घणुंज संभवित लागे छे. नामना साम्य उपरांत ञातिकोनो उल्लेख—के जे ञातिको स्पष्टरूपे महावीरनी जन्मजातिवाळा ज्ञात क्षत्रियो ज छे—तथा सीह नामना जैननो उल्लेख पण एकज बाबत तरफ अंगुली निर्देश करे छे.

आ उपरथी घणुं करीने कुण्डग्गाम ए विदेहनी राजधानी वेसालीनुं एक मात्र परुं ज हतुं. आ अनुमानने, सूत्रकृतांङ्ग १, ३ मां महावीरने जे वेसालिकना विशेषण...

१ जुओ ओल्डनबर्गनी आवृत्ति पृ. २३१, २३२; भाषांतर (बीजो भाग) पृ. १०४. Sacred Books of the East, Vol. XVII.

२ जे सूत्रमां 'ञातिका' शब्द आवेलो छे ते सूत्रना अर्थना विषयमां टीकाकारो तथा अर्वाचीन भाषांतरकारोनी गेरसमजुती थई होय तेम लागे छे. महापरिनिब्बान सुत्तना भाषान्तरमां (S. B. E. Vol.. XI) राइस डेविड्स, पृ. २४ नी नोटमां, आ प्रमाणे लखे छेः—प्रथम 'नादिक' शब्द बे वार बहुवचनमां वपरायो छे—परंतु त्यार पछी त्रीजी वार—एटले छेल्ला अवान्तर वाक्यमां ते एक वचनमां वपरायो छे. आनो खुलासो बुद्धघोष आम करे छे-'ए नामना जलाशयना कांठा उपर एज नामनां बे गामडां हतां.' परंतु मारा धारवा प्रमाणे बहुवचनमां प्रयुक्त थएले ञातिका शब्द तो क्षत्रियोनो वाचक छे, अने एकवचनी शब्द 'गिञ्जकावसथ' नुं विशेषण छे, जे महापरिनिब्बान सुत्तमां प्रथम स्थान निर्देश वखते, तथा महावग्ग ६, ३०, ५ मां, आवे छे. आथी महापरिनिब्बानमां जे जे स्थळे नादिक शब्द एकवचनान्त होय त्यां त्यां तेना 'गिञ्जकावसथ' विशेष्यने अध्याहृत मानवुं जोईए. मारा मत प्रमाणे 'नादिक' ए रूप खोटुं छे अने महापरिनिब्बाननुं 'ञातिक' रूप खरूं छे. मि. राइस डेविड्से पण भाषान्तरनी अनुक्रमणिकामां 'नादिक ए पटना पासे छे' एम जे जणाव्युं छे ते भूलभरेलुं छे. कारण के महावग्गनी कथा उपरथी स्पष्ट जणाय छे के आ स्थान तथा कोटिग्गाम ए बन्ने स्थळो वेसालिनी नजीकमां हतां.

१ जुओ – वेबर, Indische Studien, XVI, p. 262.

लिए 'एटले वैशालिक एवुं नाम आपेलुं छे, तेथी पण पुष्टि मळे छे. ते स्थळे, टीकाकारे आ शब्दनो अर्थ बे भिन्न भिन्न रीतिए समजाव्यो छे; अने बीजे एक स्थळे त्रीजो अर्थ पण आपेलो छे. आ प्रमाणे मळी आवतो अर्थविरोध, एम साबीत करे छे के वैशालिकनो खरो अर्थ शो करवो ते संबंधी स्पष्ट संप्रदाय नहीं मळी आव्यो हशे; अने तेथी, अर्वाचीन जैन विद्वानोनां कृत्रिम अर्थबोधनो तरफ आपणे दुर्लक्ष आपवुं उचित छे. वैशालिक शब्दनो स्पष्टार्थ 'वैशाली निवासी' एवो थाय छे अने कुण्डग्राम वैशालीनुं परुं होवाथी महावीरनुं ते नाम वास्तविक गणी शकाय छे;—जेम इस्लेहामग्रीननो रहेवाशी लण्डनर (Londoner) तरीके ओळखाय छे तेम. ज्यारे आ प्रमाणे कुण्डग्राम वैशालीनुं एक परूं मात्र हतुं, त्यारे ए पण स्पष्टज छे के ते गामनो राजा पण वधारेमां वधारे एक नानो सरदारज होवो जोईए. जो के जैनो पोताना अनुरागातिशयने लईने, सिद्धार्थ एक खरेखर प्रबळ राजा हतो एम कल्पी तेनी राजलक्ष्मीनो घणांज देदीप्यमान अने आदर्शभूत वर्णोमां चितार आपे छे खरा;परंतु तेमनां वर्णनोमांथी अलंकारोनां आभरणो उतारी लीधां पछी ए सत्य सहेलाईथी प्रकट थई जाय छे के सिद्धार्थ एक मोटो राजा नहीं पण मात्र अमीर हतो. अने ते आ प्रमाणेः—सिद्धार्थने अनेक स्थळे मात्र क्षत्रियज कहेलो छे, तथा तेनी पत्नी जेनुं नाम त्रिशला हतुं, तेने पण हमेशां क्षत्रियाणी तरीकेज वर्णवेली छे. ज्यां सुधी मने स्मरण छे, तेने देवी तरीके क्यांए लखी नथी. तेमज ज्ञात्रिक क्षत्रियो पण दरेक स्थळे तेओ सिद्धार्थना समान पदवाळा होय तेवी रीते वर्णवामां आव्यां छे नहीं के तेना (सिद्धार्थना) सामंतो अगर तावेदारो तरीके. आ हकीकतो उपरथी एम मालुम पडे छे, के सिद्धार्थ राजा न हतो, तेम ते पोतानी ज्ञातिनो नेता पण न हतो; परंतु, पूर्वीय देशोमांना जमीनदारो अने तेमां पण खास करीने देशना प्रतिष्ठित उमरावो जेटली सत्ता भोगवे छे तेटली सत्ता धरावनारो ते एक क्षत्रिय हतो. छतां पण ते तेनी साथेना अन्य सरदारो करतां वधारे लागवगवाळो हतो, एम कही शकाय छे आम कहेवानुं कारण ए छे के, ते पोताना लग्न संबंधना लीधे मोटा मोटा माणसो साथे संबंध धरावतो हतो, तेना उल्लेखो मळी आवे छे. तेनी स्त्री त्रिशला ते वैशालीना राजा चेटकनी बहेन हती[1]. अने आ विदेहना राजवंशमां उत्पन्न थवाथीज ते वैदेही अगर विदेहदत्ता कहेवाती हती[2].

मारा यत्किंचित् जाणवा प्रमाणे बौद्ध ग्रंथोमां वैशालीना राजा चेटकनो उल्लेख थएलो नथी. परंतु ते ग्रंथोमां एवी हकीकत तो वांचवामां आवे छे के वैशालीनुं राज्यशासन एक अमीर मंडळने सोंपवामां आव्युं हतुं अने ते मंडळनो अध्यक्ष एक राजा हतो. राज्यमां अन्य सत्ताधारी तरीके मात्र एक राजप्रतिनिधि (Viceroy) अने बीजो सेनापति हतो[3]. लिच्छविओना आ अजायबी भरेला राज्यतंत्रनी झांखी जैन ग्रंथोमां पण आपणने थई शके छे. निरयावली सूत्रमां एक वर्णन छे के-ज्यारे चम्पाना राजा कूणिक उर्फे अजातशत्रुए चेटक राजा उपर मोटी सेना लई हुमलो करवानी तैयारी करी, त्यारे चेटक राजाए काशी, कोशल, लिच्छविओ अने मल्लकिओना १८ संयुक्त राजाओने एकत्र करी, तेमने पूछ्युं के तमारो अभिप्राय कूणिकनी मागणीओने पूरी करवानो छे के तेनी साथे युद्ध करवानो छे? आ सिवाय एक एवो पण उल्लेख मळी आवे छे के, महावीरना निर्वाण वखते, आ १८ राजाओए ते प्रसंगनी यादगीरी माटे एक उत्सव उजववानो ठराव कर्यो हतो[4]. परंतु, आ ठेकाणे चेटकनो, के जेने ए सर्वे राजाओनो महाराजा तरीके बतावबामां आवे छे तेनो, पृथक् नामनिर्देश थएलो नथी. आथी संभवित छे के चेटक

---

१ जुओ कल्पसूत्रनी मारी आवृत्ति, पृ. ११३. अहीं चेटकने महावीरना मामा तरीके जणावेला छे.

२ जुओ कल्पसूत्र, जिनचरित्र, § ११०; आचारांग २, १५, § १५.

३ Turnour in the Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal, VII, p. 992.

४ Ed. Warren, p. 27.

५ जुओ कल्पसूत्र, जिनचरित्र.

पण अन्य अढार संयुक्त राजाओ जेवो मात्र एक भागीदार राजा हतो अने तेमना जेटलीज ते सत्ता धरावतो हतो. तथा, ते उपरांत तेनी सत्ता वैशालीना राज्यशासनथी नियन्त्रित हती. आथी आपणे समजी शकीए छीए के प्रथम तो चेटकनो प्रभाव कांई विशेष नहीं हतो, अने बीजुं तेनो पण उपयोग मात्र बौद्धोना प्रतिस्पर्धी एवा जैनोना पक्षमांज थयो हतो; तेथी बौद्धोए तेनो उल्लेख कर्यो नहीं होवो जोईए. जैनोए तेनी स्मृति कायम राखी, तेनुं कारण ए छे के, ते एक तो पोताना तीर्थंकर महावीरनो मामो थतो हतो अने बीजुं ए धर्मनो ते आश्रयदाता पण हतो. आ चेटक राजानी लागवगने लईनेज वैशाली जैन धर्मनुं एक संरक्षण स्थान बन्युं हतुं अने तेथीज बौद्धोए तेने पाषंडीओना एक मठ तरीके जणाव्युं छे.

महावीरना कौटुम्बिक संबंधनुं आ निरूपण करवामां मारो हेतु कांई कुतूहलरूप नथी; जो तेम होत तो तो हुं आ स्थळे ते संबंधी सघळी ऐतिहासिक हकीकत—पछी ते गमे तेटली नजीवी होत, भेगी करत. परंतु कौटुम्बिक संबंध विषयक आ माहीती अपवानुं खास कारण ए छे के ते द्वारा आपणे महावीरनी सफळतानी प्राप्तिनुं रहस्य शोधी शकीए छीए.

महावीर तथा बुद्ध ए बन्ने कृष्णसंबंधी दंतकथाओमां वर्णवेला यादवो जेवा तथा वर्तमानकालीन रजपूतो जेवा एक जातना जागीरदार सामंत मंडळमां जन्म्या हता. आवी जातना जागीरदार सामन्त मंडळोमां कौटुम्बिक संबंधो घणा मजबुत अने चिरस्मरणीय होय छे[1].

आपणे स्पष्ट जाणीए छीए के बुद्ध मुख्यत्वे करीने अमीर वर्गनेज पोतानो उपदेश आपता हता तेम जैनो पण प्रारंभमां ब्राह्मणो करतां क्षत्रियोने ऊंचा मानता हता.[2] पोताना मार्गनो प्रसार करवामां, महावीर तथा बुद्ध-बन्नेए प्रकटरीते पोतपोताना कुटुम्बनी सहायता अने लागवगनो उपयोग कर्यो हतो. तेमना बीजा प्रतिस्पर्धिओनी अपेक्षाए तेमनो अधिक उत्कर्ष थवामां केटलेक अंशे देशना प्रतिष्ठित कुटुम्बो साथे तेमनो जे विशिष्ट संबंध हतो, ते पण एक मुख्य कारण छे.

पोताना मातृपक्षद्वारा महावीर, मगधना राजवंश साथे पण सगपण धरावता हता; कारण के चेटकनी चेल्लना[1] नामनी पुत्रीनुं लग्न, राजगृहमां वसता, मगधना राजा सेणिय-बिम्भिसार[2] अथवा बिम्बिसारनी साथे थएलुं हतुं. जैनो अने बौद्धो बन्नेए आ राजानी, महावीर अने बुद्धना मित्र तथा आश्रयदाता तरीके स्तुति करी छे. परंतु सेणियनो पुत्र कूणिक अथवा तो बौद्धोना कहेवा प्रमाणे अजातशत्रु[3]-जे वैदेही राणी चेल्लनाना पेटे अवतर्यो हतो, तेणे पोताना राज्यना प्रारंभकाळमां बौद्धो तरफ कांई पण सहानुभूति बतावी न हती; परंतु ज्यारे बुद्धना निर्वाणना आठ वर्ष बाकी रह्यां हतां त्यारे ते बुद्धनो आश्रयदाता बन्यो हतो. ते वखते पण ते सद्भावपूर्वक बुद्धधर्मानुयायी थयो हतो तेम तो आपणे मानी शकता नथी. कारण ए छे के जे माणस खुल्लीरीते पोताना पितानुं[4] खून

---

१ जैनो महावीरना सगाओनां नामो तथा गोत्रो जणाववामांज मात्र चोकस जणाय छे. तेओ तेमना संबंधी बीजुं कांई विशेष लखता नथी. कल्पसूत्र, जिनचरित्रो § १०९.

२ जुओ कल्पसूत्र, जिनचरित्रो §§ १७ अने १८.

१ जुओ, वॉरननी निरयावली सूत्रनी आवृत्ति पृ. २२. बौद्धो चेल्लनाने वैदेहीना नामे ओळखे छे. तिबेटना बुद्ध चरित्रमां तेनुं नाम श्रीभद्रा आपेलुं छे के जे आपणने चेटकनी स्त्री सुभद्राना नामनुं स्मरण करावे छे. See Schiefner in Me'moires de l'Acade'mi'e Impe'riale de St. Pe'tersburg, tome IV, p. 253.

२ घणुं करीने ते मात्र सेणिय अथवा श्रेणिकना नामेज ओळखाय छे; तेनुं पूरूं नाम दशाश्रुतस्कन्धमां आपेलुं छे जुओ वेबर, Ind. Stud. XVI, p. 469.

३ आ बन्ने नामो एकज व्यक्तिवाचक होय तेम लागे छे. कारण के बौद्ध अने जैन ग्रंथकारोना कथनानुसार ते उदायिन् अथवा उदयिभद्दक-जे जैन अने ब्राह्मण ग्रंथोमां जणाव्या प्रमाणे पाटलिपुत्रनो वसावनार हतो तेनो-पिता हतो.

४ बौद्धो पण ए हकीकतवाळी विस्तारयुक्त कथा आपे

करनारो होय तथा मातामह साथे लडाई लडनारो होय तेवो माणस अध्यात्मज्ञानने माटे बहु उत्सुक बने ते असंभवित लागे छे. धर्मपरिवर्तन करवामां तेनो वास्तविक शो उद्देश हशे तेनुं आपणे सहेलाईथी अनुमान करी शकीए छीए. तेनो उद्देश्य बीजो कोई नहीं पण जेम तेना पिताए पोताना राज्यमां (मगधमां) अंगदेशनो उमेरो कर्यो हतो तेम तेने पोताना तायाना मुलकोमां विदेहने उमेरवानो हतो. आ कारणथी तेणे प्रथम विदेहनी वृजि जातिने ताबे करवामाटे–काढी मुकवा माटे नहीं–पाटलिग्राममां एक किल्लो बंधाव्यो हतो अने आखरे पोताना मातामह वैशालीना राजा साथे युद्ध कर्युं हतुं आ राजा महावीरनो मामो होवाथी अने तेथी जैनोनो संरक्षक होवाथी, एना उपर करेली चढाईना परिणामे जैनोनी सहानुभूतीने ते खोई बेठो हतो. आथी पछी तेणे जैनोना प्रतिस्पर्धी बौद्धोना पक्षमां भळवानो निश्चय कर्यो हतो; के जे बौद्धोने पोताना पिताना मित्रो होवाना सबबे प्रथम तेणे त्रास पण आप्यो हतो.

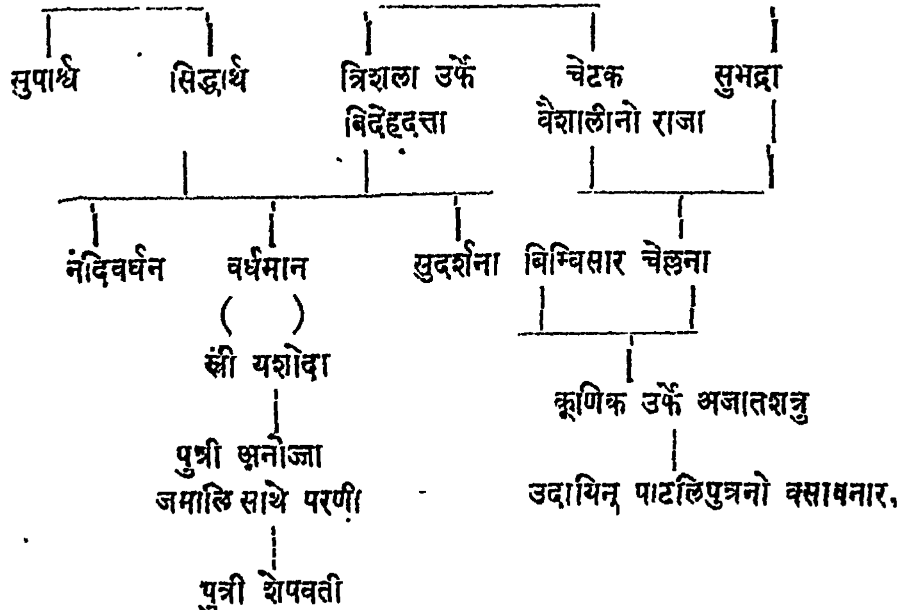
छे; जुओ, Kern, Der Buddhismus und sein Geschichte in Indien, I, p. 249 [p. 195 of the original], अने तेज प्रमाणे जैनोए पण निरयावलीमां ए हकीकत आपेली छे.

१ जुओ उपर.

२ महापरिनिव्वान सुत्त १, २६. अने महावग्ग ६, २८,

आपणे जाणीए छीए के अजातशत्रु एक तो वैशालीने जीतवामां सफळ थयो हतो; तथा बीजुं तेणे नन्दो अने मौर्योना साम्राज्यनो पायो नांख्यो हतो. आवी रीते मगधसाम्राज्यनी सरहद वधवाथी जैन अने बौद्ध ए बन्ने धर्मो माटे एक नवुं क्षेत्र खुल्लुं थयुं हतुं अने तेथी तरतज तेओ ते क्षेत्र उपर प्रसरी गया हता. ज्यारे बीजा केटलाक संप्रदायो मात्र स्थानिक अने अचिरस्थायी महत्त्वज प्राप्त करी अटकी गया हता; त्यारे ए बन्ने धर्मो आटली मोटी सफळता मेळववा समर्थ . थई शक्या हता तेनुं मुख्य कारण बीजुं कांई नहीं पण आ मंगलकर राजनैतिक संयोगज हतो.

नीचे कोष्टकमां महावीर–अथवा तो अत्यारे आपणे तेमने जैनोना तीर्थंकर तरीके नहीं संबोधता होवाथी, कहेवुं जोईए के वर्धमान या ज्ञातृपुत्र[1]–ना सगाओनो पारस्परिक संबन्ध बतावबामां आवे छे.



अहीं मारो इरादो महावीरनुं संपूर्ण जीवन–चरित्र आपवानो नथी परंतु मात्र केटलीक एवी विगतो

१ पालि तथा प्राकृतमां नातपुत्त. बौद्धो तेमने निगण्ठनातपुत्त अर्थात् निर्ग्रन्थज्ञातृपुत्र कहे छे.

एकत्रित करवानो छे, के जे द्वारा ते एक स्वतंत्र ऐतिहासिक पुरुष तरीके तथा घणीक महत्त्वनी बाबतोमां बुद्धथी ते एक भिन्न पुरुषरूपे सिद्ध करी शकाय.

वर्धमान पोताना पितानी माफक एक काश्यप (कश्यप गोत्रना) हता. वळी तेओ, पोताना मातापिताना मरणसुधी तथा तेनी पछी पण पोताना मोटा भाई नंदिवर्धनने पैतृकसंस्थाननो उत्तराधिकारी बनतां सुधी, गृहस्थावस्थामां रह्या हता. त्यार बाद अट्ठावीश वर्षनी उमरे, सर्वे सत्ताधारीओनी अनुमती लई तेमणे दीक्षा ग्रहण करी हती. रोमन केथोलिक देशोमां जेवी रीते नाना पुत्रोनी महत्त्वाकांक्षानुं क्षेत्र देवालय बन्युं हतुं तेवीज रीते हिंदुस्थानना नाना पुत्रोनुं ध्यान आध्यात्मिक प्रवृत्तिए खेंच्युं हतुं.

संसार छोड्या पछी महावीरे बार वर्ष सुधी तपस्वी जीवन गाळ्युं हतुं अने ते दरम्यान तेमणे राढा नामना देशनी जंगली जातोमां पण परिभ्रमण कर्युं हतुं. तेमना आ जीवननुं प्रथम वर्ष पूरुं थया बाद तेओ अचेलक थया हता. आवी रीते सिद्धिसाधन अर्थे बारवर्ष पर्यंत करेला आत्मदमनने अंते वर्धमानने केवळज्ञान उत्पन्न थयुं हतुं. त्यार बाद तेओ सर्वज्ञ तीर्थंकर तरीके ओळखावा लाग्या अने ते उपरांत जिन, महावीर विगेरे ना बिरुदोथी पण संबोधावा लाग्या के जे शाक्यमुनिने पण लगाडवामां आवे छे. जींदगीनां छेल्लां त्रीश वर्षो तेमणे पोताना धर्मनो उपदेश आपवामां तथा यतिमार्गनी व्यवस्था करवामां गाळ्यां हतां. आ कार्यमां, आपणे उपर जोई गया तेम, तेमने, विदेह मगध, अने अंगदेशना चेटक, श्रेणिक अने कूणिक नामना राजाओ के जेमनी साथे तेओ पोताना मातृपक्षद्वारा सगपणनो संबंध धरावता हता, तेमना तरफथी खास सहायता तेमज पुष्टि मळी हती. ए देशमां आवेलां नगरोमां तेओए पोतानी आध्यात्मिक जीवननी कारकीर्दीना लगभग सघळा चातुर्मासो तेमणे ए प्रदेशोमां आवेलां नगरोमांज गाळ्या हतां. केटलीक वखते आ देशोनी पश्चिममां श्रावस्ती सुधी अने उत्तरमां हिमालयनी तळेटी लगी पण तेओ पोतानुं परिभ्रमण लंबावता हता. तेमना जे मुख्य ११ शिष्यो गणधरो तरीके ओळखाय छे अने जेमनां नामो कल्पसूत्रनी स्थविरावली (§ १) मां आपेलां छे ते श्वेताम्बर तेमज दिगम्बर नामना बन्ने जैन संप्रदायोने समान मान्य छे. आ बाबतो उपरांत, महावीरना जीवनसंबंधी जे हकीकतो जैन सूत्रोमां मळी आवेछे ते उपर; तेमज मक्खलिपुत्र गोसालनी साथे चालेली तेमनी स्पर्धा अने तेमां थएला तेमना विजय वाळी हकीकत उपर; अने अंते तेमना निर्वाण स्थान तरीके जे पापा नामनी नानी नगरी प्रसिद्ध थएली छे ते बाबत उपर आपणे विचार करवानी जरूरत छे. आ बधी बाबतो उपर विचार करवामां आपणे मात्र जैनोनीज परंपराओ उपर आधार राखवानो छे, एम नथी. आमांनी केटलीक बाबतोना संबंधमां बौद्ध ग्रंथोमांथी पण उल्लेखो मळी आवे छे. तेथी ते प्रमाणोने पण लक्ष्यमां राखवानी जरूरत छे बौद्ध ग्रंथोमां महावीरने तेमना सुप्रसिद्ध नाम 'नातपुत्त' थी उल्लेखेला छे अने तेमने निग्गण्ठो (जैन यतिओ) ना नायक तरीके तथा बुद्धना एक प्रतिस्पर्धी तरीके जणावेला छे. ए ग्रंथोमां तेमना विषयमां जो कोई भूल थएली होय तो ते फक्त तेमना गोत्रना संबंधमां छे. तेमना गोत्रनुं नाम, बौद्ध ग्रंथोमां अग्निवैश्यायन आपेलुं छे, जे वास्तविकमां महावीरना सुधर्म नामे शिष्यनुं गोत्र हतुं. बौद्ध ग्रंथकारोए भूलथी अथवा भ्रांतिथी शिष्यना गोत्रने गुरुनुं गोत्र लख्युं छे. महावीरनिर्वाण बाद तेमना गणधरोमांथी मात्र आ सुधर्म गणधर ज एकला विद्यमान रह्या हता

१ तेमना जीवनना आ विभागना संबंधमां लखाएलुं एक प्रकरण आचारांग सूत्रमां आवेलुं छे. जुओ आचारांग (१, ८).

१ जुओ कल्पसूत्र, जिनचरित्रो, § १२२; चम्पा, ३; वैशाली, १२; मिथिला, ६; राजगृह, १४; भद्रिका, २; आलभिका, १; पणितभूमि, १; श्रावस्ती, १; पापा, १; पणितभूमि, श्रावस्ती अने कदाच आलभिका आ त्रण शिवाय उपरनां सघळां स्थळो, उपर निर्दिष्ट थएल त्रण राज्योनी सरहदोनी अंदरज आवेलां हतां.

अने तेओ तेमना पछी युगप्रधान बन्या हता. महावीर बुद्धना समकालीन हता, अने तेथी, बिम्बिसार, तेना अभयकुमार अने अजातशत्रुनामे बे पुत्रो, लिच्छविओ अने मल्लो, तथा मक्खलिपुत्र गोसाल आदि; ते बन्नेना समकालीन पुरुषो पण एकज हता. कारण के आ नामो बन्ने धर्मनां पुस्तकोमां आपणने मळी आवे छे. आपणे उपर जे ऊहापोह करी गया छीए ते उपरथी सिद्ध थयुं छे के वैशालीमां महावीरना अनुयायिओ घणीज मोटी संख्यामां रहेता हता, तेवा उल्लेखो बौद्ध पिटकोमांथी, मळी आवे छे. आ बाजु जैनग्रंथोमांथी पण एवां प्रमाणो मळी आवे छे के महावीरनुं जन्म स्थान वैशालीनी समीपमांज हतुं; तथा ते राजधानीना मुख्य अधिष्ठाता साथे तेमनो खास संबंध हतो. आ बन्ने हकीकतोने परस्पर मेळवतां ते एक बीजी साथे सुसंगत थई रहे छे एम स्पष्ट जणाई आवे छे. आ उपरांत बौद्धोए जणावेला निगण्ठोना केटलाक सिद्धान्तो, दाखला तरीके किरियावाद अने पाणीमां जीव होवानी मान्यता विगेरे—जैनग्रंथोमां पण तेवाज रूपमां मळी आवे छे अने अंते, नातपुत्तना निर्वाणना स्थळ तरीके, बौद्ध ग्रंथोमां जणावेली पापापुरी पण जैन ग्रंथोना उल्लेखानुसार यथार्थ ठरे छे.

महावीरना जीवननी आ रूपरेखाने बुद्धना जीवननी रूपरेखा साथे सरखावतां, एमां एक पण एवी बाबत नथी जणाई आवती के जेना विषयमां एवी शंका उत्पन्न थई शके के ए बाबत बुद्धना अनुकरण रूपे पाछळथी उपजावी काढवामां आवी हशे. आम होवा छतां पण आ बन्ने महापुरुषोना जीवनमां जे केटलुंक साधारण सादृश्य जोवामां आवे छे तेनुं कारण तो बन्नेनुं त्यागी जीवन छे. एवां जीवनोमां केटलीक साधारण समानताओ मळी आवे ते घणुंज स्वाभाविक छे. अने आवी समानता एक प्राचीन हिंदु करतां अर्वाचीन युरोपीय इतिहासवेत्ताने घणी महत्त्ववाळी बाबत भासे तेमां पण आश्चर्य पामवा जेवुं नथी. महावीरनां केटलाक सगांनां नामो पण बुद्धना सगांनां नामो साथे समानता धरावे छे. उदाहरण तरीके—महावीरनी पत्नीनुं नाम यशोदा हतुं अने बुद्धनी पत्नीनुं नाम यशोधरा हतुं. आ बन्ने नामो लगभग सरखां ज छे. महावीरना मोटाभाईनुं नाम नन्दिवर्धन हतुं अने बुद्धना ओरमान भाईनुं नाम नन्द हतुं. बुद्धनुं कुमारावस्थानुं नाम सिद्धार्थ हतुं अने महावीरना पितानुं नाम पण तेज हतुं. परंतु आ जातना नामसादृश्यथी जो कोई पण बाबत सिद्ध थती होय तो ते एटलीज छे के क्षत्रिय जातिमां जेम हमेशां वपराय छे तेम ते वखते पण आवा प्रकारनां नामो मोटा प्रमाणमां वपरातां हशे.[1] वळी बीजी पण एक बाबत छे, के आ बन्ने क्षत्रियोए पोताना संप्रदायो ब्राह्मण सत्ताना विरोधीरूपे अथवा तेना तिरस्काररूपे जो स्थाप्या होय तो तेमां पण कांई असंभव जेवुं नथी. कारण के हुं आगळ उपर जणावीश ते प्रमाणे ब्राह्मणो जेमने 'वेषधारिओ' (untrue) कहे तेवा त्यागी थवानो क्षत्रियो माटे घणो वधारे संभव हतो.

बुद्ध अने महावीरना जीवननो भेद बतावत्रा माटे हवे आपणे, ते बन्ने पुरुषोना जीवननी मुख्य मुख्य बीनाओने साथे साथे मूकी विचार करीए. बुद्धनो जन्म कपिलवस्तुमां थयो हतो अने महावीर वैशालीनी पासे आवेला एक गाममां जन्म्या हता. ज्यारे बुद्धनी माता तेमना जन्म पछी तरतज मरण पामी हती त्यारे महावीरना मातापिता महावीरनी पुख्त उमर थतां सुधी विद्यमान हतां. बुद्ध पोताना पितानी हयातीमां अने तेमनी मरजी विरुद्ध त्यागी बन्या हता, परंतु महावीरे पोताना मातापितानुं मरण थया पछी पण अधिकारी पुरुषोनी संमति लई दीक्षा स्वीकारी हती. बुद्धे छ वर्ष सुधी तपश्चर्या करी हती अने महावीरे बार वर्ष लगी करी हती. बुद्धे तपश्चर्यामां वीतेला पोताना काळने पाछळथी वृथा (फोगट) गयेलो मान्यो हतो; तथा पोताना ध्येयनी प्राप्तिमां आवी जातनी तपश्चर्यानी कांई उपयोगिता नथी, एम पण जाहेर कर्युं हतुं. परंतु महावीरे पोतानी तपश्चर्याने ध्येयप्राप्तिमाटे अत्यावश्यक मानी हती,[2] एटलुंज नहीं परंतु तीर्थ-

---

१. See Petersburg Dictionary, ss, vv.

२. तपश्चर्यामां गाळेलां आ बार वर्षो, हमेशां, सिद्धत्व-

कर थया पछी पण तेमणे तेवी केटलीक तपस्याओनुं अनुसरण चालु राख्युं हतुं. मक्खलिपुत्र गोसाल जेटली मोटी विरुद्धता महावीरना संबंधमां धरावे छे तेटली बुद्धना संबंधमां धरावतो जोवामां आवतो नथी. जैनधर्ममां प्रथम मतभेद उत्पन्न करनार जमालिनुं नाम बुद्धना विरोधिओनी नामावलीमां आवतुं नथी. बुद्धना सघळा शिष्योनां नाम महावीरना शिष्योथी जूदा प्रकारनां छे. आ भिन्न तान उदाहरणोमां उपसंहार तरीके अंतिम उदाहरण ए पण आपी शकाय छे के बुद्ध ज्यारे कुसिनगरमां निर्वाण पाम्या हता, त्यारे महावीर निश्चितरूपे बुद्धनी पहेलां, अने पापामां निर्वाण पाम्या हता.

महावीरना जीवन संबंधमां अहीं सुधी करेली चर्चा दरम्यान जे जे हकीकतो वाचको समक्ष मूकवामां आवी छे, तेना आधारे, जैनधर्मनी उत्पत्ति बौद्धधर्मने आश्रित छे, अथवा नहीं, ते प्रश्ननुं सहेलाईथी निराकरण करी शकाशे. जो के घणा खरा विद्वानो एटली बाबतनो तो अस्वीकार नथी करता के बुद्ध अने महावीर ए बन्ने भिन्न भिन्न व्यक्तिओ न हती; परंतु, तेओ, ते उपरथी उपरोक्त प्रश्ननुं वधुं निराकरण थई जतुं होय तेम स्वीकारवा तैयार नथी. प्रो. वेबरे 'जैनोना आगमो' उपरना पोताना विद्वत्ता भरेला निबंधमां लखे छे के—'जैनो मात्र बौद्धधर्मना एक सौथी जूना संप्रदायरूपे छे.' अने वळी जणावे छे के 'मारा मत प्रमाणे शाक्यमुनि बुद्धथी भिन्न एवा एक महापुरुष—के जेनो बौद्ध ग्रंथोमां बुद्धना एक समकालीन विरोधी तरीके उल्लेख करवामां आव्यो छे—ते द्वारा जैनधर्मनी स्थापना थई हती; एवा अर्थवाळी परंपरागत मान्यताथी पण मारा सिद्धान्तने बाध आवतो नथी. परंतु आ बाबत, मने तो आथी उलटुं, एम सूचवती होय तेम जणाय छे के जैनोए इरादा पूर्वक बुद्धनो अस्वीकार कर्यो छे. अने एम करवामां तेमने कारण मात्र सांप्रदायिक विरोधज छे. आ सिद्धान्तनी सत्यताना प्रमाण तरीके, आ बन्ने संप्रदायोना संस्थापकोनी कथाओमां जे महत्त्वनी सदृशताओ उपलब्ध थाय छे, ते रजु करी शकाय तेम छे.'

प्रो. वेबरनी आ मुख्य दलील के जेना उपर तेमनो आखो सिद्धान्त उभो थएलो छे, तेनुं निराकरण मारा धारवा प्रमाणे, उपरनी चर्चाथी संपूर्ण रीते थई जाय छे. आ सिद्धान्तने तो संभावनानी कोटिमां पण स्थान आपवा माटे घणा मजबुत प्रमाणोनी आवश्यकता रहे छे. सामान्य रीते एम जोवामां आवे छे के दरेक विरोधी संप्रदाय पोताना संस्थापकना उपदेशो अने सिद्धान्तोने शुद्ध अने प्रामाणिक रीते समजाववानो दावो करतो होय छे परंतु ज्यारे कोई संप्रदाय पोताना मुख्यधर्मना मूळ संस्थापकना सिवाय अन्यपुरुषने प्रमाणरूप मानतो थाय छे, त्यारे ते या तो कोई एक अन्य विद्यमान संप्रदायनो स्वीकार करे छे अथवा तो ते एक नवोज संप्रदाय प्रवर्तावे छे. आ विचारानुसार चालु चर्चामां आ बेमांनो जो प्रथम पक्ष स्वीकारीए तो आपणे एमज मानवुं पडशे के जैनधर्म कोई पण रूपमां बौद्धधर्मनी पूर्वे अवश्य हयाती धरावतोज हतो. अने जो बीजो पक्ष स्वीकारीशुं तो आपणे आम कल्पना करवी पडशे के, बुद्धना विचारोथी विमनस्क थएला, आ जैन बनेला बौद्धोए पोताना मूळ शास्त्रोमांथी बुद्धना एकाद विरोधीने शोधी काढी तेमां पोताना पाखंडी सिद्धान्तोनुं आरोपण कर्युं हतुं. परंतु आ पद्धतिनुं बीजा कोई बौद्ध संप्रदाये अनुकरण कर्युं होय तेम अद्यापि जणायुं नथी. चर्चाने खातर क्षणभर आपणे मानी लईए के, जे जातनो आरोप ए लोको उपर मूकवामां आवे छे, वास्तविकमां तेमणे तेमज कर्युं हतुं, तो मानवुं पडशे के तेमने आ कार्य घणीज दक्षतापूर्वक कर्युं हशे तेम करवामां तेमने पोताना प्राचीन धर्मग्रंथोमां केटलेक ठेकाणे मळी आवता 'निगण्ठो' अने 'नातपुत्त' संबंधी केटलाक उल्लेखोनो उपयोग करी, तेमां फेरफारो करवा

नी प्राप्ति माटे अत्यावश्यक मनातां हतां, अने अत्यारे पण जे कोई साधु, सांसारिक जीवननो त्याग करी कोई एक स्वर्ग या मोक्षनी अभिलाषा धरावतो होय छे, तेने माटे पण आ बार वर्षना तपश्चरणनुं विधान करेलुं छे.

१. Indische Studien, XVI, 210.

पड्या हशे; केटलीक नवी हकीकतो उपजावी काढवी पडी हशे; अने तेम करी तेमणे पोताना विरोधियोना जेवाज सर्वने प्रामाणिक लागे तेवा लेखो बनाव्या हशे. परंतु आ बधी अयुक्त कल्पनाओ छे. महावीरना संबंधमां तथा तत्कालीन परिस्थिति अने लोकोना विषयमां उपलब्ध थती जैन तेमज बौद्ध परंपराओ, परस्पर जे आटली सुंदररीते मळती होई, एक बीजीने सुधारनारी अने पूर्ण करनारी देखाय छे, ते बधी बाबतोनो खरो खुलासो अमे बतावेली उपर्युक्त रीतेज थई शके छे, अने ते मात्र एज के ए बन्ने धर्मोनी परंपराओ, मुख्यरीते एक बीजाथी स्वतंत्र छे अने जे वखते ए परंपराओनुं स्वरूप निश्चित थयुं हतुं ते वखते मनातां ऐतिहासिक सत्योज तेमां नोंधाएलां छे.

हवे आपणे, जैनधर्मना विषयमां लखनारा विद्वानोने, ए धर्म अने बौद्धधर्म बन्ने जणाई आवेला सादृश्योनो विचार करीए के जे सादृश्योए ए विद्वानोना, आ बन्ने धर्मोना पारस्परिक संबंध विषयक अभिप्राय उपर घणी मोटी असर करी छे.

प्रो. लेसने,[1] ए बन्ने धर्मोनी एकरूपताना हेतुमां चार मुद्दाओ रजु करेला छे अने ते द्वारा तेमणे जैनधर्म ए बौद्ध धर्मनी एक शाखा छे एम साबीत करवानो प्रयत्न कर्यो छे. अहीं आपणे ते चारे मुद्दाओनो अनुक्रमे विचार करीशुं.

प्रो. लेसननी पहेली दलील ए छे के बन्ने धर्मोना प्रवर्तकोने जिन, अर्हत, महावीर, सर्वज्ञ, सुगत, तथागत, सिद्ध, बुद्ध, संबुद्ध, परिनिर्वृत, मुक्त इत्यादि प्रकारनां एकज सरखां विरुदो या विशेषणो लगाडेलां जोवामां आवे छे. तेथी मूळमां ते बन्ने एकज होवा जोईए. इत्यादि.

आ बधा शब्दो अल्प या अधिक प्रमाणमां बन्ने धर्मोना ग्रंथोमां जोवामां आवे छे, एमां संशय नथी. परंतु तेमांए खास ध्यान खेंचवा लायक तफावत रहेलो छे; अने ते ए छे के जिन अने कदाचित् श्रमण ए बे शब्दो बाद करतां ज्यारे एक धर्म अमुक विरुदोनो विशेष उपयोग करे छे त्यारे तेनो प्रतिस्पर्धी (बीजो) धर्म बीजा विरुदोनो प्रयोग वधारे पसंद करे छे. उदाहरण तरीके, साधारण रीते ज्यारे बुद्ध, तथागत, सुगत अने संबुद्ध आ विशेषणो शाक्यमुनिने हमेशां लगाडवामां आवेलां होय छे, त्यारे महावीर माटे तेमनो प्रयोग क्वचित् ज थएलो होय छे. वर्धमानना विरुदो तरीके वीर अने महावीर शब्दनो ज हमेशां प्रयोग करवामां आव्यो छे. आ करतां पण अधिक भेद सूचक एक विशेषण तीर्थंकर छे. आ शब्दनो अर्थ जैन ग्रंथोमां 'धर्मप्रवर्तक' एवो थाय छे. परंतु बौद्ध ग्रंथोमां ते शब्द पाखंडीमतना संस्थापकना अर्थमां वपराएलो छे. आ प्रमाणे, आ बन्ने संप्रदायोए उक्त विशेषणसंग्रहमांथी अमुक अमुक विशेषणोने जे खास रीते पसंद करी लीधेलां जोवामां आवे छे ते उपरथी वास्तविकमां आपणने कयुं अनुमान करवानुं कारण मळे छे? शुं आपणे एम मानवुं के जैनोए आ शब्दो बौद्धो पासेथी लीधा छे? हुं एम नथी मानी शकतो. कारण ए छे के जो आ शब्दो एक वखत अमुक विरुदरूपेज नक्की थई चुक्या होय अथवा तेनी व्युत्पत्ति उपरथी निकळता अर्थ करतां कोई खास अर्थमां रूढ थई गया होय तो ते शब्दोनो या तो तेज रीते स्वीकार थई शके अगर तो अस्वीकार थई शके. परंतु जे शब्द एक वखत अमुक खास अर्थसूचक बनी गयो होय, तेने, बौद्धो पासेथी लेनारा जैनोए, फरी तेना असल अर्थमां वापर्यो हतो एम मानवुं तद्दन अशक्य छे. आ बाबतनो स्वाभाविक खुलासो तो एज थई शके के दरेक कालमां अमुक मानसूचक विशेषणो तथा नामो प्रचलित होय छे अने ते विशिष्ट गुणधारी पुरुषोने लगाडवामां आवे छे. आवां विशेषणो तथा गुणवाचक नामो ते वखते पण प्रचलित हतां. आ शब्दोनो बधा संप्रदायो तेना मूळ अर्थमां, विशेषणरूपे प्रयोग करता हता. आ शब्दोमांना केटलाक शब्दोने, तेमां रहेली अर्थ शक्ति अनुसार बधा संप्रदायोए पोताना धर्मप्रवर्तको माटे पसंद कर्या हता अने आ पसंदगीमां तेओ शब्दनी अर्थशक्ति तरफ तो जोताज हता; परंतु साथे साथे तेओ ए बाबत तरफ पण जोता हता के कया शब्दने पोताना कया प्रतिस्पर्धी मत-

---

१. Indische Alterthumskunde IV. p. 763 scg.

चाळाओए तेमनी सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति माटे पसंद कर्यो छे. उदाहरण तरीके, तीर्थकरशब्दनो व्युत्पत्त्यर्थ धर्मनो स्थापनार एटले धर्मप्रवर्तक एवो थाय छे. अने तदनुसार जैन तथा अन्य संप्रदायोए तेज अर्थमां तेनो प्रयोग करेलो छे; परंतु बौद्धोए तेने ते अर्थमां न वापरतां प्रतिस्पर्धी या पाखंडी मतना आचार्यना अर्थमां वापर्यो छे, अने तेम करी तेमणे, जेओ ते शब्दने मानसूचक अर्थमां वापरता हता तेमना तरफ पोतानो द्वेष व्यक्त कर्यो छे. आवी रीते बीजा दाखलामां, बुद्ध शब्द सामान्य रीते, मुक्त अर्थात् बंधरहित थएला आत्माना अर्थमां वपराय छे; अने ए ज अर्थमां जैन ग्रंथोमां ते शब्दनो प्रयोग थतो अद्यापि दृष्टिगोचर थाय छे. परंतु बौद्ध ग्रंथोमां ए शब्द खास तेमना धर्मप्रवर्तकना विरुद्ध रूपे रूढ थएलो छे. आ हकीकत उपरथी ए अनुमान सहज थई शके छे के जे समयमां बौद्धोनी सांप्रदायिक परिभाषा निर्णीत थई ते वखते तेओ प्रकटरूपे जैनोना प्रतिपक्षियो लेखाता होवा जोईए. आथी उलटुं, एटले जैनोए जे वखते पोतानी परिभाषा स्थिर करी ते वखते तेओ बौद्धोना प्रतिपक्षीरूपे प्रसिद्ध नहीं थएला होवा जोईए.

बुद्धधर्मनी पूर्वकालिकताना पक्षमां, प्रो. लेसन बीजी दलील ए रजु करे छे के, ए बन्ने धर्मोमां मृत्युशील मनुष्योनी अर्थात् मनुष्यरूप धर्मप्रवर्तकोनी देव तरीके उपासना करवामां आवे छे, तथा तेमनी मूर्तिओने मंदिरोमां पूजवामां आवे छे, इत्यादि.

बौद्धधर्म अने जैनधर्म सिवाय एवो अन्य कोई पण संप्रदाय, के जेनो संस्थापक, महावीर अने बुद्धनी माफक, पोताने सर्वज्ञ अने सर्वथा कृतकृत्य कहेवडावतो हतो,आपणी प्रत्यक्ष जाणमां आवी शके तेटला समय सुधी टकी शक्यो नथी. तेथी आपणने ए बन्ने धर्मो सिवाय आ बाबतनुं त्रीजुं प्रत्यक्ष उदाहरण मळी शके तेम नथी. तो पण, जे बीजा जुना संप्रदायोना विषयमां आपणने जे कांई ज्ञान मळेलुं छे ते उपरथी एम अनुमान करी शकाय छे के घणा भागे ते सघळा संप्रदायो, अने तेम नहीं तो छेवटे तेमांना केटलाक तो अवश्यमेव, बौद्धो अने जैनोनी माफक पोताना तीर्थंकरो— धर्मप्रवर्तकोने देवरूपे मानता-पूजता होवा जोईए. आथी निश्चितरूपे एम केम कही शकाय के जैनोए पोतानी आ बाबत विषयक आचार-विचारो बौद्धो पासेथीज लीधा हता पण बीजा पासेथी नहीं ? आथी विरुद्ध एम तो कहेवाने कारण छे के बुद्धना उपदेशमां एवुं कांई पण तत्त्व जोवामां आवतुं नथी जेथी तेमना अनुयायिओने बुद्धना मंदिरो बांधवा माटे अगर तेमनी मूर्तिओ स्थापित करवा माटे प्रोत्साहन मळी शके. तेमना उपदेशोमां एवी तो घणीक बाबतो अवश्य नजरे पडे छे के जे आवा प्रकारनी भक्ति-पूजा-अर्चानी (अर्थात् मूर्ति पूजानी) पद्धति तरफ विरुद्धता बतावती होय छे. परंतु जैनोना विषयमां आवुं कांई कारण बतावी शकाय तेम नथी. तेओ जो पोताना तीर्थंकर महावीरने देवस्वरूपे पूजे तो तेमां तेओ पोताना सिद्धान्त विरुद्ध वर्तन करे छे, एम कही शकाय तेम नथी. खरी रीते आ विषयमां मारुं पोतानुं स्वतंत्र मानवुं तो एवुं छे के असली बौद्धधर्म या जैनधर्मने मूर्तिपूजा साथे कांइ संबंध नहीं होवो जोईए. कारण के मूर्तिपूजानी उत्पत्ति निर्ग्रन्थो द्वारा नहीं पण गृहस्थो द्वारा थएली छे. तेनी उत्पत्तिनुं कारण पण ए लागे छे के ज्यारे भारतना धर्मविषयक विकासक्रममां भक्ति एक मोक्षना मुख्य साधन तरीके मनावा लागी त्यारे लोकोने पोताना प्राचीन अणघड (जंगली) देवी-देवताओनी प्रचलित पूजाथी असंतोष रहेवा लाग्यो अने तेथी तेमणे केटलाक उच्च प्रतिना उपास्योनी पूजा करवानी प्रथा शरु करी. खरी वस्तुस्थिति आवी होवाथी चैत्यस्थापन तथा मूर्तिपूजामां बौद्धोने पुरोगामी अने जैनोने तेमना अनुकर्ताओ न मानतां, मारा विचार प्रमाणे, आ बन्ने संप्रदायोए स्वतंत्र रीतेज हिंदु लोकोना धार्मिक विकासना शाश्वत अने अनिवार्य प्रभावने वश थई आ प्रथा स्वीकारी हती, एम मानवुं जोईए.

आ बन्ने संप्रदायो वच्चेनी समानतानी त्रीजी दलील, ए बन्नेमां सरखी रीते मळी आवता अहिंसाना सिद्धान्त विषयनी छे. आ दलीलनी चर्चा आगळ उपर करवामां आवशे तेथी अहीं हुं प्रो.

लेसननी चोथी दलील उपर आवुं छुं. ते दलील ए छे के बौद्धो तेमज जैनो बन्ने जगत्‌ना इतिहासनुं परिमाण बतावबामां एटली मोटी कालसंख्याओ वापरे छे के जे समर्थमां समर्थ कल्पनाशक्तिने पण आंजी नाखे छे अने त्रस्त करी दे छे. इत्यादि. अलबत, ए वात तो खरी छे के आ विषयमां जैनो बौद्धोने पण पाछळ पाडी दे छे. परंतु, आ प्रकारनी कालगणनामां जैनो मात्र बौद्धोनेज मळता आवे छे एम कांई कही शकाय नहीं. ब्राह्मणोनां पण आ बाबतमां तेवांज वर्णनो आपणने मळी आवे छे. जैनोनी कालगणनात्मक पद्धतिनां परिमाणो, ब्राह्मणो तेमज बौद्धो बन्नेथी सरखी रीते जुदां पडे छे. जैनोना उत्सर्पिणी अने अवसर्पिणीरूप कालचक्रनी तथा ते दरेकना छ छ आराओनी कल्पना जेटले अंशे बौद्धोना चार महाकल्पो तथा ८० नाना कल्पो के जे विश्वना क्रमथी थता सर्ग अने प्रलयरूपी नाटकना अंको तथा दृश्यो जेवा लागे छे, तेमनी-कल्पनाथी भिन्न छे, तेटलेज अंशे ते ब्राह्मणोनी युगो अने कल्पोनी कल्पनाथी पण भिन्न छे. मारो एवो मत छे के बौद्धोनी कल्पना ते ब्राह्मणोनी युगपद्धतिनुं संस्कारित रूप छे अने जैनोना उत्सर्पिणी अने अवसर्पिणीरूप कालचक्रनी कल्पना ब्रह्माना दिवस अने रात्रिनी कल्पनाने आधारे उत्पन्न थएली छे

प्रो. लेसननी त्रीजी दलीलनी चर्चा उपर मुलतवी राखवानुं कारण एटलुज हतुं के ते दलील अहिंसाना सिद्धान्त विषयक होवाथी तेने, ए बन्ने धर्मोना अन्य नीतिविषयक विचारो साथे वधारे सारी रीते चर्चवानी आवश्यकता छे. प्रो. वेबरे[१] जैनोना पंचमहाव्रतो अने बौद्धोना पांच मुख्य पापो अने शीलोनी वच्चे खास निकटवर्ती संबंध बताव्यो छे; अने प्रो. विन्डिशे (Windisch) जैनोना पंच महाव्रतोनी, बौद्धोनां दश शीलो (दससील) साथे सरखामणी करी छे.

१. Fragment der Bhagavati, II, pp. 175, 185.

२. Z. D. M. G. XXVIII, p. 222, note.

बौद्ध भिक्षुना दश शीलो नीचे मुजब छे[१]:—

१ हुं प्राणीनी हिंसा न करवानुं व्रत लउं छुं.
२ हुं चोरी न करवानुं व्रत लउं छुं.
३ हुं अब्रह्म—अपवित्रताथी विरमवानुं व्रत लउं छुं.
४ हुं असत्य न बोलवानुं व्रत लउं छुं.
५ हुं प्रगति अने सदाचारनुं प्रतिबन्धक एवुं मद्यपान न करवानुं व्रत लउं छुं.
६ हुं निषिद्ध काले भोजन न करवानुं व्रत लउं छुं.
७ हुं नृत्य, गान, संगीत अने नाटकोथी विरक्त थवानुं व्रत लउं छुं.
८ हुं हार, सुगंधी लेपन तथा अलंकारो न वापरवानुं व्रत लउं छुं.
९ हुं ऊंची अगर पहोळी पथारीनो उपयोग नहीं करवानुं व्रत लउं छुं.
१० हुं सुवर्ण तथा चांदीनो परिग्रह न करवानुं व्रत अंगीकार करुं छुं.

आ उपरांत बौद्धधर्ममां अष्टांग शीलो (अट्ठंगसील) मानेलां छे. तेमांनां पहेलां पांच दरेक बौद्धे आचरवानां छे; परंतु छेल्लां त्रण खास करीने धर्मिष्ठ गृहस्थोने तो अवश्य पाळवा माटे भलामण करेली छे[२]. ए अष्टांग शील आ प्रमाणे छे:—

१. हिंसा न करवी.
२. चोरी न करवी.
३. असत्य भाषण न करवुं.
४. मद्यपान न करवुं.
५ ब्रह्मचर्य पाळवुं-(अधर्म्य एवो परस्त्रीसंग न करवो.)
६. समयविरुद्ध रात्रिए भोजन न करवुं.
७. हार, चंदन आदि सुगंधी पदार्थो धारण न करवा.
८. जमीन उपर मात्र सादडी पाथरीने सूवुं.

बौद्धोनां पांच व्रतो, नीचे आपेलां जैनयतिओनां पांच महाव्रतो साथे लगभग मळतां आवे छे:—

१. अहिंसा--प्राणीनी हिंसा न करवी.
२. सूनृत-जूठुं न बोलवुं.
३. अस्तेय-नहीं आपेलुं न लेवुं.

१. Rhys Davids, Buddhism, p. 160.

२. Rhys Davids, Buddhism, pg. 139.

४. ब्रह्मचर्य–स्त्रीसंयोगथी विरमवुं.

५. अपरिग्रह–दुनियादारीनी चीजोमां आसक्ति न करवी. खास करीने ममत्वभावनो त्याग करवो.

जैनोनुं पांचमुं व्रत, बौद्धोना पांचमा शील करतां वधारे व्यापक छे. परंतु बाकीनां व्रतो. सहेज क्रमभेद सिवाय (जेमके बौद्धोनां नं. १–४) सरखांज छे. आ बन्ने धर्मोनां व्रतोनी वच्चेनुं साम्य खरेखर एटलुं बधुं अद्भुत छे, के सामान्य रीते एम सहजे अनुमान थई जाय छे के, आ बेमांथी एक धर्मवाळाए बीजा धर्ममांथी पोतानां व्रतो लीधां होवां जोईए. परंतु तेम छतां पण ए प्रश्न तो उभोज रहे छे के असलमां आ व्रतो जैनोए बौद्धो पासेथी लीधेलां के बौद्धोए जैनो पासेथी ? वास्तविक रीते विचार करतां जणाय छे, के आ बाबतमां जैनो अथवा बौद्धो–ए बेमांथी कोई पण एक संप्रदाय मौलिकतानो दावो करी शके तेम नथी. कारण के आ बन्ने धर्मोए प्राचीन ब्राह्मण धर्मना संन्यासिओनां जे पांच व्रतो हतां तेनोज स्वीकार करेलो छे. ब्राह्मण संन्यासिनां पांच व्रतो नीचे प्रमाणे छे[1]:–

१. अहिंसा.
२. सत्य.
३. अस्तेय.
४. ब्रह्मचर्य.
५. त्याग.

अने पांच गौण व्रतो :—

६. क्रोध न करवो.
७. गुरुनी आज्ञामां रहेवुं.
८. अनौद्धत्य.
९. शौच.
१०. आहारशुद्धि.

संन्यासिनां उपर्युक्त पांच मोटां व्रतोमांनां पहेलां चार व्रतो जैन भिक्षुनां चार व्रतोने मळतां आवे छे. अने क्रम पण एकज सरखो छे. आथी संभवित छे के जैनोए पोतानां व्रतो ब्राह्मणो पासेथी लीधां होवां जोईए; नहीं के बौद्धो पासेथी. एम मानवानुं बीजुं पण एक कारण छे, अने ते ए के, बौद्धोए सत्यव्रतने बीजुं स्थान न आपतां त्रीजुं अगर चोथुं स्थान आप्युं छे, अने तेम करी तेमणे व्रतोना पुरातन क्रमने बदल्यो छे. वळी, जैनो बौद्धो करतां घणाज प्राचीन अने अधिक प्रतिष्ठित एवा ब्राह्मणोना संन्यासाचरणने मूकी बौद्धोना आचरणनुं अनुकरण करे ए मानवुं पण असंभवित लागे छे.

आ स्थळे जणावबुं जोईए के, आ त्रणे धर्मोमां पांचमुं व्रत, पोतपोताना आचारने खास अनुलक्षीने बनाववामां आव्युं छे. जेम के ब्राह्मण संन्यासिनुं पांचमुं त्याग (उदारता) व्रत एवुं छे के जैन अगर बौद्ध भिक्षुना आचारो तरफ जोतां, स्वाभाविक रीतेज ते तेमना माटे विहित थई शके तेवुं लागतुं नथी. महावीरनी पूर्वे जैनधर्ममां चार महाव्रतो पाळवामां आवतां हतां; अने हालनुं चोथुं व्रत ते वखते पांचमा व्रतमां अन्तर्गत थतुं हतुं. परंतु महावीरे फरीथी आ चार व्रतनां पांच व्रत बनाव्यां हतां बीजी तरफ बौद्धो पण पांच शीलो माने छे. ते उपरथी एम जणाय छे के पूर्वे आ पांचनी संख्याने खास रीते पवित्र मानवामां आवती हती.

उपर्युक्त चर्चाना परिणामे आपणे ए स्पष्ट समजी शकीए छीए के जैनो तथा बौद्धोना भिक्षुसंप्रदायनो मूळ आदर्श कोण हतो ? ए आदर्श ब्राह्मण धर्मनो संन्यासी–संप्रदाय हतो अने एमांथीज तेओए पोत पोताना यतिजीवन माटे घणाक महत्वना आचारो तथा नियमो लीधा हता. आ प्रकारनुं मारुं अनुमान कांई खास नवीन नथी. प्रो. मेक्स मूलरे क्यार आगमच पोताना Hibbert Lectures (पृ. ३५१) मां एवो विचार प्रदर्शित कर्यो छे अने तेज प्रमाणे प्रो. बुह्लरे, पोताना बौधायन सूत्रना अनुवादमां; तथा प्रो. केर्ने पोताना भारतीय बौद्ध धर्मना इतिहास (History of Buddhism in India) मां पण तेवोज अभिप्राय आपेलो छे. हवे हुं जैन साधुनुं जीवन केटले अंशे ब्राह्मणधर्मना संन्यासी–जीवनना अनुकरणरूपे छे ते बतावबा

[1] बौधायन २, १०, १८; जुओ, बुल्हरनो अनुवाद Sacred Books of the East, Vol. XIV पृ. २७५.

माटे गौतम अने बौधायन धर्मसूत्रमां[1] आपेला संन्यासीना नियमोने जैन यतिओना नियमो साथे सरखावी बतावता इच्छुं छुं. घणीखरी बाबतोमां बौद्धो पण एज नियमोने अनुसरे छे तथापि तेनां पण यथावसरे संक्षेपमां सूचना करवामां आवशे

११. 'संन्यासीए कोई पण प्रकारनो संग्रह करवो जोईए नहीं.'[2] (गौतम धर्मसूत्र) जैन तेमज बौद्ध भिक्षुओने पण एवी कोई पण वस्तु राखवानो निषेध करवामां आव्यो छे के जेना माटे तेने 'आ वस्तु मारी छे' एम कहेवानो प्रसंग आवे.–जुओ जैनोनुं पांचमुं (अपरिग्रह) व्रत. जैन भिक्षु वस्त्र, पात्र, रजोहरण आदि जे केटलीक वस्तुओ पोतानी पासे हमेशां राखे छे तेने पण तेओ पोतानी मिल्कतरूपे राखता नथी. परंतु फक्त धर्मक्रियाना आचरण माटे आवश्यक साधनो (धर्मोपकरणो) मानी तेनो स्वीकार करे छे

१२. 'ब्रह्मचर्य (नुं तेणे पालन करवुं जोईए)' बौधायननी माफक जैनोनुं पण आ चोथुं महाव्रत छे. बौद्धो पन पांचमुं व्रत माने छे.

१३. 'वर्षाऋतु दरम्यान तेणे एकज स्थळे वास करवो जोईए'[3] आ सूत्र उपरनी पोतानी टिप्पणीमां बुह्लर लखे छे केः–'आ नियम उपरथी एम सूचित थाय छे के बौद्धो तथा जैनोना वस्सो (वर्षावास) पण ब्राह्मणोना (आ व्रतना) अनुकरणरूपे छे.

१४. 'मात्र भिक्षा लेवाने अर्थेज तेणे गाममां प्रवेश करवो जोईए.' आ बाबतमां जैनो आटला बधा सख्त नथी. तेओ साधुने गाम अगर नगरमां सूवानी पण छूट आपे छे. तथापि घणा लांबा वखत सुधी रहेवानो तो तेमने पण निषेधज करेलो छे. महावीर गाममां एक रात अने नगरमां पांच रातथी वधारे क्यारे पण रह्या न हता.

१५. 'तेणे मोडेथी (लोकोए भोजन करी लीधां पछी). भिक्षा माटे जवुं जोईए. तथा बीजो वार जव न जाईए[2].' जैन साधुओ सवारे अगर बपोरे भिक्षा अर्थे भ्रमण करे छे. तेम करवामां कदाच तेमनो उद्देश पोताना प्रतिस्पर्धी भिक्षुओना समागमना प्रसंगने दूर राखवानो हशे. खास करीने तो तेओ दिवसमां एकज वार भिक्षा माटे जाय छे. परंतु एकथी वधारे उपवास करेला साधुने दिवसमां बे वखत पण जवानी छूट आपेली छे[3].

१६. '(मिष्टान्न माटे) सर्व लिप्साओनो तेणे त्याग करवो जोईए.' आज बाबत जैनोना पांचमा महाव्रतना चोथा पेटा वाक्यमां पण विहित करवामां आवेली छे . ते उपरांत, भिक्षामां ग्रहण अने अग्रहणनी बाबतना जे नियमो छे ते उपरथी पण आज आशय तारवी शकाय छे.

१७. 'तेणे पोतानी वाणी, दृष्टि (अने) कर्मो उपर अंकुश राखवो जोईए.' आ बाबत जैनोनी त्रण गुप्तिओ, अर्थात् मन, वाणी, अने कायानां संयमननी साथे लगभग एक भाव धारण करे छे.

१८. 'तेणे नग्नताने ढांकवा खातर वस्त्र पहेरवुं. वस्त्रोना संबंधमां जैनोना नियमो आटला बधा सादा नथी; तेओ पोताना यतिने नग्न रहेवा माटे छूट आपे छे तेमज एक, बे तथा त्रण सुधी वस्त्रो वापरवानी पण छूट आपे छे. परंतु सशक्त अने युवान साधुने नियमपूर्वक एकज वस्त्र वापरवानुं विधान करेलुं छे.[7] महावीर तो नग्नज रह्या हता;[8] अने तेथी बने तेटलुं तेमनुं अनुकरण करवामां

---

१ जुओ, बुह्लरनुं भाषांतर, Sacred Books of the East, Vol. II, pp. 191, 192. अहीं आपेला अंको गौतमना त्रीजा अध्यायना सूत्रोने अनुसरीने छे; बौधायननां तेने मळतां सूत्रो टिप्पणीमां सूचवेलां छे.'

२ सरखावो, बौधायन २, ६, ११, १६.

३. बौधायन २, ६, ११, २०.

४. आचारांग सूत्र २, २, २, § ६.

१ कल्पसूत्र, जिनचरित्र, § ११९.

२ बौधायन, २, ६, १२, २२.

३ कल्पसूत्र सामाचारी, § २०.

४ आचारांग सूत्र, २, १५, ५, § १५.

५ कल्पसूत्र, जिनचरित्र § ११८.

६ बौधायन, l. c. § १६. ४.

७ आचारांग सूत्र २, ५, १, § १.

८ कल्पसूत्र, जिनचरित्र § ११७.

तत्पर एवा जिनकल्पी साधुओ पण नग्नज रहेता हता. एम छतां, तेओने पण नग्नता ढांकवानी छूट हती.[1]

१९. ' केटलाक (एम जणावे छे के तेणे) जीर्ण-वस्त्र धोईने (पहेरवुं जोईए). ' बोधायनमां[2] जणाव्युं छे के, 'तेणे वस्त्रने पीत-रक्त वर्णथी रंगीने पहेरवुं जोईए.' आ नियम जैनोना करतां बौद्धोना नियम साथे वधारे मळतो आवे छे. कारण के जैन यतिओने तो वस्त्रोने धोवानो अगर रंगवानो निषेध करेलो छे. तेमणे तो जे स्थितिमां जे वस्त्र मळ्युं होय तेज स्थितिमां तेने पहेरवानुं छे[3]. तेम छतां पण कहेवुं जोईए के जैनो ब्राह्मणोना ए नियमना--के जेनो भावार्थ मात्र एटलोज छे के संन्यासिओनो वेश बनी शके तेटलो सादो अने क्षुद्र होवो जोईए, तेना-मूळआशयने पराकाष्ठाना सीमाए घसडी गया छे. जैनो पोताना आचारनी कठोरताना विषयमां ब्राह्मण प्रतिस्पर्धिओने पाछळ पाडी देवामां एक प्रकारनुं गौरव समजता होय तेम देखाय छे. अने तेथी तेओ मलिनता अने कुत्सितताने यतिजीवननुं परम भूषण मानवानी भूल करे छे. आथी विरुद्ध बौद्धो हमेशां पोताना आचारने जेम बने तेम मानव-समाजना बंधारणने अनुकूल बनाववा प्रयत्नशील रह्या छे.

२०. 'तेणे वृक्षो अथवा छोडवाओना भागोने लेवा नहीं. परंतु जो ते (पोतानी मेळे) जुदा थई गया होय तो ते लेवामां बाध नथी. ' जैनोनो पण तेवोज नियम छे; परंतु तेओ आथी पण आगळ वधीने पोताना यतिओ माटे फक्त तद्दन अचित्त वनस्पति अने फळ इत्यादिनेज भिक्षामां लेवानी छूट आपे छे[4].

२१. 'वर्षाऋतु सिवाय तेणे (एकज) गाममां बे रात रहेवुं नहीं. ' आपणे उपर जोई गया छीए तेम महावीरे तो आज नियम पाळयो हतो. पछी अन्य साधुओए गमे ते रीते तेनुं आचरण कर्युं होय.

१ आचारांग सूत्र १, ७, ७, १.
२ L. c. § २१.
३ आचारांग सूत्र २, ५, २, १, अने १, ७, ५, २.
४ सरखावो, आचारांग सूत्र. २, २, २, १.
५ आचारांग २, १, ७, ६, अने ८ मुं अध्ययन.

२२. ' तेणे या तो शिर मुंडाववुं जोईए, अगर एक शिखा मात्र राखवी जोइए. ' जैनोए आ नियमने सुधारी पोताना साधुओ माटे मात्र आखुं मस्तक मुंडाववानोज विधि करेलो छे. बौधायनना[1] अनुसार संन्यासी बनती वखते ब्राह्मणे ' पोताना माथाना, दाढीना तथा शरीरना वाळ कढाववा जोईए तथा नख पण उतराववा जोईए.' जैनो पण दीक्षा लेती वखते वाळ कपाववाना आ आचारनुं अवश्य पालन करे छे अने आथीज ' मुंड बनीने (अगर पोताना वाळ उखेडी नाखीने) अगार छोडी अनगार स्थितिमां प्रवेश कर्यो.'[2] आवो उल्लेख सर्वत्र थएलो छे.

२३. ' तेणे बीजोनो नाश नहीं करवो जोईए. ' वांचनार आचारांगना बीजा स्कंधना घणा सूत्रोमां जोई शकशे के अंड, जीव, बीज. अंकुरादिने हानि न थई जाय, ते माटे जैन भिक्षुने केटलो बधो. सावचेत रहेवानो भलामण करवामां आवी छे. एम जणाय छे के जैनोए उपर्युक्त नियमने वनस्पति अने प्राणिवर्गना सघळा सूक्ष्मजीवोने लागु पडे तेवो एक व्यापक नियम बनाव्यो छे.

२४. ' (तेणे सघळा) जीवो प्रत्ये उदासीनता राखवी जोईए. पछी ते जीवो गमे तो तेमा प्रति मायाळुपणुं धरावता होय के क्रूरपणुं. '

२५. ' तेणे ऐहिक अगर पारलौकिक कल्याण-माटे कोई पण प्रवृत्ति करवी जोईए नहीं. '

छेल्ला बे नियमो तो जैनोना कोई पण आगममांथी अक्षरशः बतावी शकाय तेवा छे. कारण के ते जैनधर्मना तत्त्वना मूलभूत छे. महावीरे आ नियमोनुं यथार्थरीते परिपालन कर्युं हतुं. आना प्रमाणमां नीचेना उल्लेखो बस थशेः ' तेमना (महावीरना) शरीर उपर चार मास करतां अधिक समय पर्यंत अनेक प्रकारना प्राणिओनो ठठ जाम्यो हतो; तेओ, ते उपर हरता फरता हता अने विविध क्लेशो आपता हता.' ' तेमणे हमेशां त्रिगुप्तिपूर्वक तृण,शीत, अग्नि,माखी,मशक आदिथी जनित अनेक

१ बौधायन, २, १०, १७, १०.
२ ' मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए '
३ आचारांग सूत्र १, ८, १, २,

प्रकारनां कष्टो सहन कर्यां हतां.'[1] 'तेमणे देव, मनुष्य अने तिर्यंच जनित अनेक अनुकूल तेमज प्रतिकूल बनावो लगतार्थी सहन कर्या, खम्या तथा अनुभव्या हता' इत्यादि. जैनयतिना संबंधमां एम पण वारंवार कहेवामां आवे छे के ते पोताना आध्यात्मिक जीवननी चरम अवस्थामां 'मरण या जीवित ए बन्नेमां निराकांक्षी होय छे.'[3]

बौधायने आपेला बीजा केटलाक नियमो पण जैनोना आचारो साथे घणाज मळता आवे छे. जेमकेः—'तेणे वचन, विचार अने कर्म ए त्रणे प्रकारनां कष्टदायक साधनो द्वारा कोई पण सर्जित जीवनी हिंसा करवी जोईए नहीं.' आ नियम जैनोना प्रथम महाव्रत (जुओ उपर) नुं एक स्पष्टीकरण मात्र छे आ 'कष्टदायक साधनोने' जैनो शास्त्र कहे छे.[5]

'तेणे शौचादि कर्म माटे अपेक्षित जळने गळवा सारु वस्त्र राखवुं जोईए.' 'तेणे (आवश्यक) शौचादि (कुवा अगर तळावमांथी) काढेला अने गळेला पाणीथी करवां जोईए.'[6] आ नियमोनुं जैन साधुओ यथार्थ पालन करे छे. तेओ पाणी गळवा माटे खास वस्त्र राखे छे टीकाकार गोविन्द, आ पवित्र,-एटले पाणी गळवाना वस्त्रखंडनो अर्थ 'मार्ग उपरथी जंतुओने दूर करवा माटे राखेलो कुश जातना तृणनो एक गुच्छ,' एम करे छे.[7] गोविन्दनो बतावेलो आ अर्थ जो यथार्थ होय अने तेना प्रमाणमां जो कांई साची अने प्राचीन परंपरा रहेली होय-अने ते मारा मानवा प्रमाणे तो अवश्य होवीज जोईए--तो जैन साधुओ मार्गमां चालती वखते वच्चे आवता तथा बेसती वखत नीचे आवता जीवजंतुओने दूर करवा माटे जे रजोहरण अथवा पादप्रोञ्छन राखे छे, तेनुं प्रतिरूप ब्राह्मण ग्रंथोमां पण मळी आवे छे; एम आपणे अहीं जणावी शकीशुं.

ब्राह्मण संन्यासिजीवनना उपकरणो तरीके 'दण्डो (यष्टिकाओ), रज्जु, पाणी गाळवामाटे वस्त्र खंड, जलपात्र अने भिक्षापात्र छे.'[1] जैन साधुओ पण दण्डो राखे छे-अत्यारे तो अवश्य राखे छे. परंतु बौद्धो तरफ दृष्टि करतां. पिटकोमां एवो एक पण उल्लेख मारा जोवामां आव्यो नथी के जेमां यष्टिका राखवा माटे स्पष्ट विधान करवामां आव्युं होय.

जैन साधुओ पण ब्राह्मण संन्यासिओनी माफक भिक्षापात्र अने तेने बांधवानी एक दोरी तथा जलपात्र[2] राखे छे; पाणी गळवा माटे वस्त्रखंड अने रजोहरण आ बे वस्तुओ राखवा संबंधी उल्लेख तो आनी पहेलां ज आपणे करी आव्या छीए. जैन साधुनुं जो कांई पण एवुं खास उपकरण होय के जे अन्य संन्यासिओ पासे नहीं देखातुं होय, ते तेमनी एक मात्र मुखवस्त्रिका (मुहपत्ती) छे. आ बधी हकीकत उपरथी जणाशे के जैनोनां घणां खरां उपकरणो, तेमना माटे आदर्शरूप बनेला एवा ब्राह्मण संन्यासिओ अगर भिक्षुओनां जेवांज छे.

'तेणे तेज अन्न लेवुं जोईए के जे विना माग्ये मळेलुं होय, जेना संबंधमां पहेलां कांई व्यवस्था थएली न होय, जे अकस्मातज मळी गयुं होय, अने जे फक्त पोताना जीवितने टकाववा पूरतुं ज होय.'[3]

जैनधर्मना 'भिक्षाचर्याना नियमो' वांचवाथी सहजे जणाई आवे तेम छे, के, ब्राह्मण संन्यासिओ माटे अन्नग्रहण करवा संबंधी जे जातना नियमोनुं बौधायने उपर प्रमाणे विधान कर्युं छे, तेज प्रकारना नियमो प्रमाणे मळेला आहारने जैनोए पण 'शुद्ध अने ग्राह्य' मान्यो छे. बौद्धो आ विषयमां आटला बधा सख्त नथी. तेओ तो खास करीने

१. आचारांग सूत्र १, ८, ३, ९.
२ कल्पसूत्र, जिनचरित्र, § ११७, अंतिमभाग.
३. उदाहरण तरीके कल्पसूत्र सामाचारी § ५१.
४. बौधायन २, ६, ११, २३.
५. आचारांग सूत्र, पृ १, नोट २.
६. बौधायन २, ६, ११, २३.
७. जुओ प्रो. बुल्हरनुं भाषांतर पृ. २६०, टिप्पण.

१ बौधायन २, १०, १७, ११.
२. जो के भिक्षापात्र उपरांत साधुने जलपात्र राखवानी पण छूट आपेली छे खरी तथापि एकज पात्र राखवुं अधिक उत्कृष्ट मनाय छे.
३. बौधायन २, १०. १८, १३.

तेमना माटेज तैयार करवामां आवेला भोजनना आमंत्रण सुद्धांनो स्वीकार करे छे.

ब्राह्मण संन्यासी अने जैन यति माटे विहित करेला नियमोनी जे तुलना आपणे उपर करी छे, ते उपरथी ए स्पष्ट जणाय छे के जैनोना नियमो ते ब्राह्मणोनी नकल मात्र छे. परंतु अहीं ए प्रश्न थाय छे के 'निर्ग्रंथ' ए सीधी रीते (साक्षात्) ज संन्यासीनी नकल छे के परंपरापूर्वक? केम के एवो पण तर्क थई शके तेम छे के ब्राह्मण संन्यासिनी प्रथम बौद्धोए नकल करी हशे अने बुद्धभिक्षुनी, पाछळथी निर्ग्रंथोए. परंतु हुं जेम उपर सूचवी गया छुं तेम ओ तर्क प्रमाणशून्य छे. कारण के वधारे प्राचीन अने प्रमाणभूत आदर्शने छोडी, जैनो अल्पप्रतिष्ठित अने नकली एवा पोताना प्रतिस्पर्धी बौद्धोनुं अनुकरण करे ए असंभवित छे. आथी एज कहेवुं वधारे योग्य जणाय छे के तेमणे सीधी रीतेज ब्राह्मणोनुं अनुकरण कर्युं हतुं. आ मुख्य दलील उपरांत, प्रस्तुत प्रश्न विरुद्ध बीजी पण ए एक दलील छे के—उपर जणाव्या प्रमाणे जे केटलाक ब्राह्मण आचारोनुं ज्यारे जैनोए अनुकरण कर्युं छे त्यारे बौद्धोए तेम कर्युं जणातुं नथी तेथी एम साबीत थाय छे के बौद्धो जैनोना आदर्शभूत बिल्कुल हता नहीं.

अहीं एक एवो पण वितर्क उठवानो संभव रहे छे के ब्राह्मण संन्यासीज जैन निर्ग्रंथ अथवा बौद्ध भिक्षुनी नकलरूपे केम न होय? परंतु आ वितर्क तद्दन प्रमाणविरुद्ध छे. संन्यासमार्ग ब्राह्मणोनी आश्रम व्यवस्थानुं एक खास अंग छे. अने आ आश्रम व्यवस्थाने कदाचित् ब्राह्मण धर्म जेटली प्राचीन न मानीए तो पण जैन तथा बौद्ध धर्मथी तो तेने अवश्य प्राचीन मानवी पडे तेम छे. वळी ब्राह्मण संन्यासिओ ज्यारे आखा भारतवर्षमां प्रसरेला हता, त्यारे बौद्धो तेमना संघनी स्थापना थया पछी, निदान प्रथमनी बे शताब्दीओमां तो, तेओ मात्र देशना एक अमुक भाग जेवा संकुचित प्रदेशमांज रहेता हता. तेथी आखा देशना संन्यासिओ माटे तेओ आदर्शभूत बन्या होय एम मानवुं सर्वथा प्रमाण शून्य छे. बीजी बाबत वळी ए छे के—ब्राह्मण धर्मशास्त्रना कर्ता गौतम निश्चितरूपे बौद्ध धर्मनी उत्पत्तिनी पूर्वे थई गया छे. कारण के, प्रो. बुल्हरना मत प्रमाणे आपस्तम्ब सूत्रनी रचनानो काळ मोडामां मोडो ई. स. पूर्वे पांचमी अगर चोथी शताब्दीमां मूकवो जोईए.[1] बौधायन ते आपस्तम्बनी पूर्वे थएलो छे. अने डॉ. बुल्हरना[2] कहेवा प्रमाणे ते बन्ने वच्चेना वर्षोनुं अंतर दशकथी नहीं परंतु शतकथी मापवा जेटलुं छे. गौतम ए बौधायनथी पण पूर्वकालीन छे.[3] आ हिसाबे गौतम, अने घणुं करीने बौधायन पण, बौद्धधर्मनी उत्पत्तिनी पूर्वे थई गएला निश्चित थाय छे. हवे उपर वर्णवेला ब्राह्मण संन्यासमार्गना सघळा नियमो तो खास गौतम द्वाराज बांधवामां आवेला छे तेथी ते मार्गने बौद्धोनी नकलरूपे मानवो ए प्रत्यक्ष भूल छे. धारो के उक्त धर्मशास्त्रोनी रचनाना समयना विषयमां प्रो. बुल्हरे करेलुं कथन कदाचित् खोटुं ठरे; तो पण ते धर्मशास्त्रो बौद्धधर्मनी उत्पत्ति पछी सैकाओ वीत्यां बाद रचायां हतां, एम तो कोई पण रीते सिद्ध करी शकाय तेम छेज नहीं. तथापि मानो के, कदाचित् तेम पण सिद्ध करी शकाय—जो के तेम थवुं तो सर्वथा असंभवितज छे—तो पण आ स्मृतिकार ब्राह्मणो पोते जेमने आधुनिक काळमां उत्पन्न थएला मानता होय तथा जेमने मिथ्यामतिओ मानी तिरस्कारता होय तेवा बौद्धो पासेथी मोटा प्रमाणमां पोताना आचार-नियमो ग्रहण करे, ते सर्वथा अशक्य बाबत छे. तेमज नास्तिको पासेथी पोते लीधेला नियमोने ब्राह्मणो एटला बधा पवित्र माने ए पण नहीं मानवा जेवी बाबत छे. परंतु, आथी उलटुं, बौद्धोएज ब्राह्मणोना नियमोनुं अनुकरण कर्युं हतुं, एम मानवुं युक्तियुक्त अने प्रमाणसंगत लागे छे. कारण के ब्राह्मणोनी बुद्धिविषयक अने नीतिविषयक उत्कृष्टताने माटे बौद्धो हमेशां ऊंचो अभिप्राय धरावता अने ते बदल बहुमान करता हता. एज कारण छे के जैनो तेमज बौद्धोए ब्राह्मण ए शब्दने एक मानसूचक बिरुद

१. Sacred Laws of the Aryas, part I, introduction, p. XL III.

२. L. c. p. XXII.

३ L. c. p. 49.

तरीके स्वीकारेलो छे, अने ब्राह्मणेतर जातिना पुरुषोने माटे पण तेमणे तेनो प्रयोग करेलो छे.

आ स्थळे जणाववुं जोईए के जैनो तेमज बौद्धोनो भिक्षुमार्ग, ब्राह्मणोना संन्यासमार्गना अनुकरणरूप होवा छतां, ते मूळमां तथा मुख्यरीते क्षत्रियो माटेज योजाएलो हतो. प्रो. ओल्डनबर्गना दर्शाव्या मुजब बुद्धे प्रथम पंक्तिमां उमराव अने अमीर लोकोनेज स्थान आप्युं हतुं[1]. कारण के, बनारसमां आपेला पोताना प्रथम उपदेशमां, बुद्धे पोताना धर्मना संबंधमां कह्युं हतुं के 'यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पव्वजन्ति'— जेने माटे कुलीन जातिना पुत्रो घर छोडीने अनगारता स्वीकारे छे.[2]

जैनो पण ब्राह्मणो करतां क्षत्रियोने उच्चकोटिना मानता हता, ए बाबत, महावीरना गर्भसंक्रमना संबंधमां जे एक आश्चर्यभरेली पुराण कथा प्रसिद्ध छे ते उपरथी साबीत थाय छे. ते दंतकथा एवी छे के-महावीरनो गर्भ देवानंदा ब्राह्मणीनी कुक्षिमांथी त्रिशला क्षत्रियाणीनी कुक्षिमां फेरववामां आव्यो हतो. अने तेम करवानुं कारण मात्र एटलुंज बताववामां आव्युं छे के ब्राह्मणी अगर अन्य कोई नीच जातिनी स्त्रीना उदरथी तीर्थंकरनो जन्म थई शके नहीं[3].

बीजी बाजुए जोतां ब्राह्मण संन्यासिओ पण पोताना जेवाज परम आस्तिक ब्राह्मणेतर जातीय संन्यासिओने स्वसमान उच्च कोटिना न होता मानता. कारण के पाछळना समयमां एवो मत प्रचलित थएलो स्पष्ट देखाय छे के ब्राह्मण सिवाय अन्य कोई वर्णने चतुर्थ आश्रमनो अधिकार हतो नहीं. आ मतना प्रमाणमां, प्रो. बुल्हरना जणाव्या प्रमाणे, मनुनो ६, ९७ मो श्लोक बताववामां आवे छे. परंतु, भिन्न भिन्न टीकाकारोना अभिप्राय तरफ दृष्टिपात करतां, आ श्लोकना अर्थना संबंधमां बधा टीकाकारो एक मत थता जणाता नथी. तेथी आ विवादग्रस्त उल्लेखने बाजुए मूकीए तो

१ Buddha, sein Leben, &c., p. 157 seq.

२. महावग्ग १, ६, १२.

३. दिगंबरो आ दंतकथाने युक्तिशून्य कही, एनो अस्वीकार करे छे. परंतु श्वेतांबरो तेने दृढतापूर्वक साची जणावे छे. आ दंतकथा आचारांग तथा कल्पसूत्र आदि घणा ग्रंथोमां मळी आवे छे, तेथी तेनी प्राचीनतामां तो आपणने शंका रहेती नथी. परंतु ए कांई स्पष्ट समजातुं नथी के कया कारणथी आ युक्तिशून्य दंतकथा उत्पन्न थई लोकमां प्रचार पामी हशे? आ अंधकारग्रस्त प्रश्न उपर मने जो अभिप्राय आपवानी छूट होय तो, मारुं तो एवुं मानवुं छे के सिद्धार्थने ब्राह्मणी देवानंदा–जे महावीरनी साची माता हती ते–अने क्षत्रियाणी त्रिशला एम बे स्त्रीओ हती. पहेली स्त्रीना पति तरीके बताववामां आवतुं ऋषभदत्तनुं नाम घणुं प्राचीन होय तेम लागतुं नथी. कारण के जो ते प्राचीन होय तो तेनुं प्राकृत रूप 'उसभदत्त' थवाने बदले प्रायः 'उसभदिन्न' एवुं थवुं जोईए. विशेषमां, आ नाम पण एक जैनने छाजे तेवुं छे; ब्राह्मणने छाजे तेवुं नथी. तेथी मारुं तो एम चोकस मानवुं थाय छे के ऋषभदत्त ए फक्त जैनोए देवानंदाना बीजा पति तरीके एक कल्पी काढेलो पुरुष छे. आपणे जाणीए छीए के सिद्धार्थ पोताना त्रिशला साथेना लग्नद्वारा अनेक ऊंची पदवीवाळा अने मोटा प्रभाववाळा पुरुषो साथे संबंध धरावतो हतो. तेथी कदाचित् एवो विचार तेने उत्पन्न थयो होय, तो ते संभवित छे के महावीरने त्रिशलाना सपत्नीसुत तरीके प्रसिद्ध करवाने बदले औरस पुत्र तरीके जो जाहेर करवामां आवे तो वधारे लाभदायक बाबत बनशे. कारण के तेम करवाथी, महावीर त्रिशलानां प्रभावशाली सगांओना आश्रयनो हक्कदार बनी शकशे. आ दंतकथा लोकोमां विश्वासपात्र पण घणीज सहेलाईथी मनाई गई हशे. कारण के महावीर तीर्थंकर तरीके प्रसिद्धिमां आव्या तेनी पहेलां घणां वर्षो अगाउ तेमनां मातापिता गुजरी गयां हतां. परंतु खरी वस्तुस्थिति लोकोनी स्मृतिमांथी सर्वथा लुप्त नहीं थई होय तेथी पाछळथी गर्भसंक्रमनी आ कथा उपजावी काढवामां आवी हशे. आ कल्पनाना मूळ उत्पादक जैनो नथी. तेमणे तो मात्र देवकीनी कुक्षिमांथी रोहिणीनी कुक्षिमां धरेला कृष्णना गर्भसंक्रमनी पौराणिक कथानुं स्पष्ट रीते अनुकरण कर्युं छे. आ उपरथी एम पण जणाय छे के जैनधर्मना विकासनी प्रथमनी सदीओमां कृष्णनी उपासना लोकप्रिय थई रही हती. कारण के जैनोए पोताना बावीशमा तीर्थंकर अरिष्टनेमि जे एक प्रसिद्ध यादव हता, तेमनुं चरित्र लखवामां केटलाक फेरफार सिवाय कृष्णनुं आखुं जीवन यथार्थ रीते आलेखी दीधुं छे.

पण एटलुं तो स्पष्ट देखाय छे के पाछळना समयमां ए विचार तो खास रूढ बनी गयो हतो के च्यारे आश्रमनो अधिकारी एक मात्र ब्राह्मण वर्णज होई शके छे. क्षत्रियो माटे त्रण, वैश्यो माटे बे अने शूद्र माटे फक्त एकज आश्रमनो अधिकार जणाववामां आव्यो छे[१]

आ सघळी हकीकतो उपरथी ए विचार तो निश्चित लागे छे, के प्राचीन काळमां पण ब्राह्मणेतर संन्यासिओ,ब्राह्मणसंन्यासिओथी एक जुदाज वर्गना तथा पृथग्भूत मनाता हता. अने तेथी आपणने एम मानवानुं कारण मळे छे के ब्राह्मणेतर संन्यासिओनी आ प्रकारनी अवस्थाने लईने एवा संप्रदायोनो जन्म थयो हतो के जेमणे ब्राह्मणधर्म सामे पोतानो प्रकट विरोध जाहेर कर्यो हतो. आवाज कारणने लईने वेशधारिओ – पाखंडिओ उत्पन्न थया हता एवो भाव वशिष्ठना कथन उपरथी पण तारवी शकाय छे. त्यां एम जणावेलुं छे के केटलाक संन्यासिओए धार्मिक क्रियाओ (विधिओ) करवी छोडी दीधी हती अने वळी केटलाके तो आथी पण आगळ वधी वेदमंत्रोच्चारण पण छोडी दीधुं हतुं. आ प्रकारे क्रियामार्गनुं उल्लंघन करनाराओने उद्देशीने वशिष्ठेमां नीचे प्रमाणेनुं कथन करेलुं छे, के 'भले कोई मनुष्य सघळी धार्मिक विधिओनुं अनुष्ठान छोडी दे परंतु वेदमंत्रोच्चारण तो तेणे कदापि न छोडवुं जोईए. कारण के वेदनी उपेक्षा करवाथी शूद्र थवाय छे. तेटला माटे तेणे तेम करवुं नहीं.' आटला बधा भारपूर्वक करेला प्रतिबंध उपरथी सहज अनुमान थाय छे के आवुं क्रियानुष्ठान एक वखते खरेखर बंध थयुंज हशे. वळी आ उपरथी जो आपणे एटलुं अनुमान करी शकता होईए के केटलाक संन्यासिओए आवी रीते वेदोच्चारण—वेदाभ्यास करवो पण छोडी दीधो हशे, तो आपणे तेवुं अनुमान पण करी शकीए, के बीजाओए, वेदने ईश्वरप्रणीत तथा स्वतः प्रमाणभूत तरीके मानवानो इनकार पण कर्यो हशे. आ विचार उपरथी ए कल्पना सहज करी शकाय तेवी छे के आ मार्ग स्वीकारनार तेज पुरुषो हता जेओ एक प्रकारना पृथग्भूत अने ब्राह्मणेतर संन्यासिओ मनाता हता. आ रीते प्रस्तुत विवेचन उपरथी एक तो आपणे ए बाबत जोई शकीए छीए के जैन अने बौद्ध जेवा विरोधी संप्रदायोना मतभेदनुं बीज चतुर्थ आश्रमनी संस्थामां रहेलुं हतुं. अने बीजुं ए पण आपणे जोई शकीए छीए के मतान्तर धारिओए चतुर्थ आश्रमनुं अनुसरण कर्युं हतुं. आ उपरथी आपणे मानवुं पडे छे के जैनधर्म अने बुद्धधर्म ए ब्राह्मणधर्ममांथी उत्पन्न थएला एक आकस्मिक सुधारा स्वरूप मतो नथी परंतु लांबा वखतथी चालता आवता एक धार्मिक आन्दोलनना क्रमिक परिणाम स्वरूप छे.

आपणे उपर जोई गया तेम, जैनोनी तेमना छेल्ला तीर्थंकर संबंधी परंपरागत कथाओ; अथवा जैन साधुओ माटे विहित करवामां आवेला आचारो; अगर ते धर्मना श्रद्धालु गृहस्थो माटे योजाएली धार्मिक क्रियाओ उपरथी एवुं कांई पण सिद्ध थतुं नथी के जेथी आपणने एम मानवानुं कारण मळे के जैनधर्म ए बौद्धधर्ममांथी निकळ्यो हतो. ए उपरांत बन्ने धर्मोना मुख्य सिद्धान्तोमां पण परस्पर एटलो बधो भेद रहेलो छे के जेथी आ बन्ने धर्मोनुं मूळ उत्पत्ति स्थान एक हशे एम पण मानी शकाय तेम नथी. बुद्धे निर्वाणनी अवस्थाना संबंधमां गमे तेम विचार्युं अगर उपदेश्युं होय–अर्थात् ते अवस्थाने या तो सर्वथा अभावात्मक बतावी होय के पछी तेने एक अगम्य अने अचिन्त्य सत्तावाळी कल्पी होय; परंतु एटलुं तो निःसंदेह छे के तेमणे ब्राह्मणधर्मना आत्मवादनो, के जे वादमां विश्वदेवतावादिओ तथा अणुवादिओना मत प्रमाणे आत्मा स्वतंत्र अने नित्य मानवामां आव्यो छे तेनो, स्पष्ट विरोध कर्यो हतो. अने ते विरोधज ए बौद्धधर्मनी एक खास विशिष्टता छे. परंतु आ विषयनो ज्यारे जैनोनो सिद्धान्त तपासीए छीए तो, ते संपूर्णरीते ब्राह्मणमतने मळतो आवे छे. जे भेद छे ते मात्र एटलोज छे के जैनो ज्यारे आत्माने मर्यादित आकाशव्यापी माने छे; त्यारे सांख्य, न्याय अने वैशेषिक दर्शन जेवा ब्रा-

१. Maxmuller, The Hibbert Lectures, p. 343.

२ Chapter X, 4. Buhler's Translation.

ह्मण संप्रदायो आत्माने सर्व विश्वव्यापी माने छेः वळी, जेवी रीते बौद्धोनो असंख्य उपविभागात्मक पञ्चस्कन्धवाद जैनोना अध्यात्मशास्त्रमां बिलकुल जणातो नथी. तेवी रीते जैनोनो अतिविस्तृत चेतनवाद (Hylozoistic theory) जेवो सिद्धान्त पण बौद्धोना तत्त्वज्ञानमां दृष्टिगोचर थतो नथी. जैनोनो ए सिद्धान्त तेमना संपूर्ण तत्त्वज्ञान अने आचारशास्त्रमां ओतप्रोत थएलो जोवामां आवे छेः अने ए सिद्धान्तानुसार प्राणी अने वनस्पति उपरान्त पृथ्वी, जल, तेज अने वायु जेवां तत्त्वोनां सूक्ष्ममां सूक्ष्म अणुओ सुद्धांने चेतनायुक्त मानवामां आवे छे. भारतवर्षना सघळा तत्त्वज्ञानिओए सर्वज्ञता सुधीनी ज्ञाननी जुदी जुदी तरतमताओ–पायरीओने एक अति महत्त्वनो विषय मान्यो छे. तदनुसार जैनो पण आ विषयमां पोतानो एक स्वतंत्र मत धरावे छे. अने ए विषयनी तेमनी परिभाषा पण ब्राह्मण अने बौद्धोथी तद्दन जुदाज प्रकारनी छे तेओए ज्ञानना नीचे प्रमाणेना पांच प्रकारो मानेला छेः—(१) मति–सम्यग् अवबोध; (२) श्रुत–माति वाद थएलुं स्पष्ट ज्ञानः (३) अवधि–एक जातनुं अतीन्द्रिय ज्ञान; (४) मनः पर्याय–परकीय विचारोनुं विशद ज्ञान; (५) केवल–सर्वोत्कृष्ट प्रकारनुं अथवा संपूर्ण ज्ञान. जैनोनो आ एक मौलिक आध्यात्मिक सिद्धान्त छे, अने ए सिद्धान्त तीर्थंकरोनां चरित्रो लखती वखते लेखकोना मगजमां हमेशां प्रधान पणे रमी रहे छे. आ प्रकारनो सिद्धान्त बौद्धग्रन्थोमां बीलकुल जोवामां आवतो नथी. ए सिवाय बन्ने संप्रदायोना मुख्य सिद्धान्तो वच्चे बीजा पण एवा घणा भेदो बतावी शकाय तेम छे. परंतु ते बधानुं वर्णन वांचतां कदाच वाचकने कंटाळो आवे तेवा भयथी अमे आटलेथी ज विरमीए छीए.

जैनोना जे केटलाक सिद्धान्तो बौद्ध सिद्धान्तो साथे मळता आवे छे ते तो ब्राह्मणधर्ममां पण समान छे—उदाहरण तरीके पुनर्जन्मनो सिद्धान्त अर्थात् मरण पछी फरीथी जन्म धारण करवो ते; कर्मनो सिद्धान्त—अर्थात् पूर्वकृत कर्मोना धर्माधर्मरूपी परिणामो आ भवमां अगर आगामी जन्ममां जीवात्माने भोगववां पडे छे ते; तेमज संपूर्ण ज्ञान अने उत्तमचारित्र—के जेथी मनुष्य भवचक्रपरिभ्रमणनो अन्त लावी शके छे ते;–इत्यादि सिद्धान्तो लई शकीए. बीजो पण जैनो अने बौद्धोनो एक समान विचार छे, जेनी अनुसार एम मानवामां आवे छे के अनादि काळथी तीर्थंकरो अने बुद्धो एकज प्रकारना सिद्धान्तो प्ररूपता आव्या छे तथा नष्ट थता धर्मने पुनर्जीवित करता आव्या छे. ए विचार पण ब्राह्मणोना विष्णुना अवतारोवाळा विचार साथे मळतो आवे छे. परंतु, ते उपरांत, जैन अने बौद्ध ए बन्ने धर्मना एक अत्यावश्यक प्रयोजनरूपे पण आ विचारनी उत्पत्ति थएली समजाय छे. कारण ए छे के बुद्ध अगर महावीरे जे कांई प्रतिपादन कर्युं हतुं तेने तेमना अनुयायिओ सत्य—एकमात्र सत्य मानता हता. हवे आ सत्यने पण ब्राह्मणोना वेदनी माफक अनादि काळथीज अस्तित्व धरावतुं मानवुं जोईए. कारण के जो एम न मानवामां आवे तो प्रश्न थशे के शुं आ सत्य तीर्थंकरोना अवतारनी पूर्वे व्यतीत थई गएला अनंत काळ सुधी मात्र अज्ञातज रहयुं हतुं ? आ प्रश्नना उत्तरमां दरेक श्रद्धालु जैन अगर बौद्ध एमज कहेशे के नहीं एम बनवुं तो तद्दन अशक्य छे. ते तो एमज कहेशे के आ सत्यधर्मनो उपदेश भिन्न भिन्न काळमां उत्पन्न थएला एवा असंख्य तीर्थंकरो तथा बुद्धो द्वारा हमेशां अपातो आव्यो छे अने भविष्यमां पण तेवी ज रीते अपातो रहेशे. आ प्रमाणे भूतकालमां अनेक धर्मप्रवर्तको थई गयानो आ बन्ने धर्मोनो विचार—सिद्धान्त न्यायशास्त्रानुसार एक अत्यावश्यक प्रयोजनरूपे छे.

वळी जैनोना आ विचार–सिद्धान्तने प्रमाणशून्य ठरावी शकाय तेम पण नथी. कारण के बौद्ध ग्रंथोमां कोई पण स्थळे निर्ग्रंथोने एक नवीन उत्पन्न थएला संप्रदाय तरीके अथवा तो नातपुत्तने तेना संस्थापक तरीके वर्णवामां आव्या नथी. तेथी बुद्धना समयमां निर्ग्रंथोनो संप्रदाय, ते प्रायः एक प्राचीन संप्रदायज मनातो हतो, एम सिद्ध थाय छे. तेमज नातपुत्त ते, घणुं करीने पार्श्व नामे तेवीशमा तीर्थंकर द्वारा स्थापित थएला जैन धर्मना

एक मात्र सुधारक समझाता हता. परंतु आमां आश्चर्य उत्पन्न करवावाळी बाबत ए छे के जैनो तेमज बौद्धो बन्ने वर्तमान युगना धर्मप्रवर्तकोनी संख्या लगभग सरखीज माने छे.—एटलेके जैनो २४ तीर्थंकरो माने छे; अने बौद्धो २५ बुद्धो माने छे. आ मान्यताना विषयमां हुं ए वातनी ना नथी पाडी शकतो, के, आमां एक संप्रदायनी बीजा संप्रदाय उपर असर नहीं थई होय. परंतु हुं एटलुं तो दृढतापूर्वक कही शकुं छुं के आ बन्नेमांना कया धर्मे प्रथम आ मान्यता शोधी काढी हती; अगर तो सौथी प्रथम कोणे ब्राह्मणो पासेथी तेनो स्वीकार कर्यो हतो; तेनो निर्णय करवो कठण छे. कारणके बौद्धोमां जेम, बुद्ध-निर्वाण पछीनी प्रारंभनी ज शताब्दिओमां पचीस बुद्धोनी उपासना दाखल थई हती, तेम चोवीश तीर्थंकरोनी मान्यता पण, महावीर निर्वाण बाद घणुं करीने बीजी ज शताब्दिमां जुदा पडेला दिगम्बर तथा श्वेताम्बर ए बन्ने संप्रदायोने सरखी रीते मान्य होवाथी, ते पण तेटली ज जुनी छे. परंतु आ प्रश्ननुं निराकरण करवुं ते अहीं कांई महत्वनो विषय नथी. कारण के पूर्वोक्त विवेचन द्वारा जे निर्णयो उपर आपणे आव्या छीए ते उपर तेनी बिलकुल असर थती नथी. ते निर्णयो एज छे के—(१) जैनधर्म, ए बौद्धधर्मथी तद्दन स्वतंत्र रीते उत्पन्न थएलो एक प्राचीन धर्म छे; तेनो विकास पण तेटलीज स्वतंत्र रीते थएलो छे; तेमज तेमां बौद्ध धर्ममांथी विशेष कांई लेवामां आव्युं नथी. तथा (२) जैनो तेमज बौद्धो ए बन्नेना तत्त्वज्ञान, आचार, नीतिशास्त्र, अने जगदुत्पत्तिशास्त्रनुं मूळ ब्राह्मणो—खास करीने संन्यासिओने आभारी छे.

अत्यार सुधीनी आपणी सघळी चर्चा जैनोना पवित्र ग्रंथोमांथी उपलब्ध थती परंपरागत कथाओनी प्रामाणिकता उपर ज चालेली छे. परंतु एक अतिशय विशाल ज्ञानवाळा अने कुशल विचारक विद्वाने ए प्रामाणिकताना संबंधमां ज शंका करेली छे. ए विद्वान् ते मी. बार्थ (Barth) छे. ते पोताना Revue de Il' Histoire des Religions, Vol. III, p. 90. मां नातपुत्त नामनी एक ऐतिहासिक व्यक्तिनो स्वीकार करे छे खरो, परंतु जैनोना पवित्र ग्रंथो, छेक ई० स० नी पांचमी शदीमां,—एटलेके ए संप्रदायनी स्थापना थया पछी लगभग एक हजार जेटलां वर्षो व्यतीत थयां बाद, लखाएला होवाथी तेना आधारे कोई पण सबळ अनुमान करी शकवाना संबंधमां ते मोटी शंका धरावे छे. जैनधर्मना संबंधमां तेनो एवो अभिप्राय छे के ए संप्रदायना, ते प्राचीन काळथी लई पुस्तको लखाता सुधीना समय सुधीना, स्वसंवेदित अने सतत एवा अस्तित्वनो—अर्थात् तेना खास खास सिद्धान्तो अने नोंधोनी निरंतर परंपरानो—हजी सुधी निर्णयात्मक रीते निकाल थयो नथी. वळी ते जणावे छे के 'घणी शदीओ सुधी तो जैनो, तेमना जेवा बीजा अनेक संन्यासिवर्गो के जे फक्त अप्रसिद्ध अने अस्थिररूपे पोतानुं जीवन गाळता हता तेओथी भिन्नरूपे ओळखायाज न होता.' तेथी मि. बार्थना अभिप्राय मुजब जैनोनी सांप्रदायिक परंपराओ ते मात्र बौद्ध परंपराओना अनुकरणरूपे, तेमणे पोतानां अस्पष्ट अने अनिश्चित स्मरणोमांथी उपजावी काढेली छे.

मि. बार्थनो आ मत एवा अनुमान उपर स्थिर थएलो मालुम पडे छे के जैनो पोतानुं पवित्र ज्ञान एक पेढिथी बीजी पेढिने आपवामां घणाज बेदरकार रह्या हता; अने तेम रहेवामां कारण ए छे के ते घणी शदीओ सुधी मात्र एक नानो अने अनुपयोगी संप्रदाय हतो. मि. बार्थनी आ दलीलमां हुं कोई प्रकारनुं वजन जोई शकतो नथी. हुं अहीं ए प्रश्न पूछुं छुं के—जे धर्म पोताना थोडाक अनुयायिओ वडे एक मोटा प्रदेश उपर पथराएलो होय ते धर्म पोताना मौलिक सिद्धान्तो अने परंपराओने वधारे सुरक्षित राखी शके छे, के जे धर्मने एक मोटा जनसमूहनी धार्मिक जरूरीआतो पूरी पाडवानी होय छे ते! आ बेमांनी कई बाबत वधारे संभवित छे? जो के एकंदर रीते आ प्रकारनी हेत्वाभासात्मक तर्कपद्धतिथी आवा प्रश्ननो निर्णय थवो तो अशक्य ज छे. उपर्युक्त बे पक्षोना प्रथम पक्षमां याहुदी तथा पारसीओनुं उदाहरण रजु करी शकाय छे अने बीजा पक्षमां रोमनकॅथोलिक धर्मनो दाखलो आपी शकाय छे. परंतु जैनो संबंधी प्रस्तुत प्रश्नना वादविवादनो निर्णय करवामां आवी

जातना सामान्य सिद्धान्तो उपर आधार राखवानी कांई आवश्यकता नथी कारण के तेओने (जैनोने) पोताना सिद्धान्तोनुं एटलुं बधुं स्पष्ट ज्ञान हतुं के तेओए घणीज नजीवी बाबतमां मतभेद धरावनार पुरुषोने पण निह्नवरूपे जाहेर करी, पोताना श्रद्धालुओना विशाल समुदायमांथी तेमने जूदा करी दीधा हता. आ कथननी सत्यताना प्रमाण तरीके डॉ. ल्यूमने (Dr Leumonn) प्रकट करेली श्वेताम्बर संप्रदायनी सात निन्हवो विषेनी परंपरा[१] छे. तथा दिगम्बरो, जे श्वेताम्बरोथी महावीर निर्वाण पछी प्रायः बीजी अथवा त्रीजी शताब्दिमां, जुदा पड्या हता, तेथी कांई तेमना प्रतिस्पर्धिओ (श्वेताम्बरो) थी तात्त्विक सिद्धान्तोमां मोटो मतभेद धरावता नथी छतां पण आचारविषयक तेमना केटलाक भिन्न नियमोने लीधे, श्वेताम्बरोए तेमने पाखंडिओना नामे वगोव्या छे.

आ सघळी हकीकतो उपरथी आ बाबत स्पष्ट रीते सिद्ध थाय छे के जैन आगमो [तेनुं हालनुं स्वरूप] नक्की थयां पहेलां पण जैनधर्म एवा अव्यवस्थित अथवा अनिर्दिष्ट स्वरुपमां विद्यमान न हतो, के जेथी, तेनाथी अत्यंत भिन्न एवा अन्यधर्मो (दर्शनो) ना सिद्धान्तो द्वारा तेनुं असल स्वरूप परिवर्तित अगर कलुषित थयुं हतुं; एम मानवाने आपणने कारण मळे. परंतु आथी विरुद्ध उपर्युक्त प्रमाणो एम तो सिद्ध करी आपे छे खरां के तेमनी सूक्ष्ममां सूक्ष्म मान्यता पण सुनिश्चित स्वरूपवाळी हती.

जेवी रीते जैनोना धार्मिकसिद्धान्तोनी बाबतो आ रूपे सिद्ध थई शके छे तेवीज रीते तेमनी ऐतिहासिक परंपराविषयक बाबतो पण सिद्ध थई शके तेवी छे. वंशपरंपराथी चालती आवती जे विविध गच्छोनी विस्तारयुक्त गुर्वावलीओ※ मळी आवे छे तथा जैन आगमग्रंथोमां जे स्थविरावलीओ उपलब्ध थाय छे ते स्पष्ट बतावी आपे छे के जैनो पोताना धर्मनो इतिहास राखवामां केटलो बधो रस धरावता हता. हुं एम कांई चोक्स नथी केहतो के आवी गुर्वावलीओ पाछळथी पण जोडी कढाती नथी के अपूर्ण पट्टावलीओने पूर्ण, एटले हिंदुओना शब्दमां कहीए तो 'पक्की ' बनावी शकाती नथी. कारण के दरेक संप्रदायने, पोतानो संप्रदाय एक प्रतिष्ठित आप्तपुरुषथी प्रामाणिकरीते उतरी आवेलो छे, एम बताववा खातर पोतानी गुरुपरंपराना नामो उपजावी काढवानी स्वाभाविक रीतेज जरूर पडे छे. परंतु कल्पसूत्रमां जे एक, स्थविरो, गणो अने शाखाओनी विस्तृत नामावली आपेली छे तेने कल्पी काढवामां जैनोने कोई पण प्रकारनुं प्रयोजन होय तेम हुं मानी शकतो नथी. कल्पसूत्रमां जेटली विगतो आपेली छे-तेटली पण विगतोनुं ज्ञान त्यार पछीना जैनोने रह्युं न हतुं. तेम तेथी अधिक जाणवानो तेओए क्यारे डोळ पण कर्यो न हतो. गुरुपरंपरानो नोंधयोग्य बधो व्यवहार चलाववा माटे कल्पसूत्रमां आपेली संक्षिप्त स्थविरावली पर्याप्तज हती. तेम छतां पण तेमां आवेली विस्तृत स्थविरावली—के जेमां पण केटलांक तो एकलां नामोज जोवामां आवे छे-ते ए बाबत स्पष्टरीते जणावे छे के जैनो पोताना प्राचीन धर्माचार्यो-स्थविरोनी यादगिरी राखवामां केटलो बधो रस धरावता हता. ते स्थविरावलीमां आलेखेला युगो तथा बनावोनी यथार्थ माहीती तेना पछी थोडीक ज सदीओमां नष्ट थई गई हती.

परंतु, मात्र आटलुं सिद्ध करी बताववाथी के जैनो तेमना आगमोनुं स्वरूप नक्की थया पहेलां पण पोताना धर्म तथा संप्रदायने सतत चालु राखवा माटे, तेम ज अन्यदर्शनीय सिद्धान्तोना संमिश्रणयोगे उत्पन्न थती भ्रष्टताथी तेने बचावी सुरक्षित राखवा माटे योग्य गुणसंपन्न हता; आपणे आ विषयमां कृतकार्य थई शकता नथी. आपणे ए पण बतावी देवुं जरूरनुं छे के तेओमां जे जे बाबत करी शकवानुं सामर्थ्य हतुं ते सघळुं तेमणे संपूर्णरीते कर्युं हतुं. आ चर्चा उपरथी आपणे स्वाभाविकरीते ज वर्तमान जैनसाहित्यना काळनी चर्चा उपर आवी जईए छीए. आ विषयमां जो आपणे आटलुं सिद्ध करी शकीए के जैन साहित्य अथवा तो छेवटे ते पैकी जे केटलाक सौथी प्राचीन ग्रंथो

१ See Indische Studien, XVI.

※ See Dr. Klatt, Ind. Ant. Val. XI.

छे, ते जैन पुस्तकारोहणना समयथी घणी सदीओ पहेलां रचायला हता, तो ते द्वारा आपणे जैनोना (अंतिम) तीर्थंकर अने प्राचीनमां प्राचीन ग्रंथो ए बन्ने वच्चेना गाळाने, जो के सर्वथा दूर नहीं करी शकीए तो पण घणे अंशे अल्प करी आपवा समर्थ थई शकीशुं-- -- .. -- ...

सर्वसंमत संप्रदायनी अनुसार जैनसिद्धान्त वलभिनी सभामां देवर्धिगणीना अध्यक्षपणा नीचे, निश्चित करवामां आव्यो हतो. आ बनाव वीर निर्वाण पछी ९८० (अथवा ९९३) मा वर्षे एटले इ० स० ४५४ (अगर ४६७) मां[१] बन्यो हतो, एम कल्पसूत्र [§ १४८] उपरथी जणाय छे. संप्रदाय एवो छे के ज्यारे देवर्धिगणीए सिद्धान्तने नष्ट थई जवाना जोखममां जोयो त्यारे तेमणे तेने पुस्तकाधिरूढ कराव्यो. तेनी पहेलां, आचार्यो क्षुल्लकोने सिद्धान्त शीखवती वखते लिखित ग्रंथोनो बिलकुल उपयोग करता न होता. देवर्धिगणीना समय पछी ज लिखित पुस्तकोनो उपयोग शरू थयो. आ हकीकत तद्दन साची छे. कारण के प्राचीन समयमां पुस्तकोनो बिलकुल उपयोग थतो न हतो एम आपणने बीजी हकीकतो उपरथी पण जणाई आवे छे. ब्राह्मणो तो लिखित पुस्तक करतां पोतानी स्मरणशक्ति उपर ज विशेष आधार राखता हता. अने निःसंदेहरीते जैनोए तेमज बौद्धोए तेमनी ज आ प्रथानुं, अनुकरण कर्युं हतुं. परंतु अत्यारे जैनयतिओ पोताना शिष्योने शास्त्र शीखवती वखते लिखित पुस्तकोनो उपयोग अवश्य करे छे. आ उपरथी आपणे मानवुं पडे छे के शिक्षण पद्धतिमां थएलो आ फेरफार देवर्धिगणीने आभारी छे, एम बतावनारो वृद्ध संप्रदाय तद्दन साचो छे. कारण के आ बनाव बहुज महत्त्वनो होवाथी भुली शकाय तेम नथी. प्रत्येक आचार्यने अथवा तो छेवटे प्रत्येक उपाश्रयने आ पवित्र आगमोनी नकलो पूरी पाडवा माटे देवर्धिगणीने सिद्धान्तना पुस्तकोनी खरेखर घणी मोटी संख्या तैयार करावची पडी हशे. हवे देवर्धिगणीए सिद्धान्तने पुस्तकारूढ कराव्यो एवो जे लेखी संप्रदाय मळे छे तेनो भावार्थ प्रायः उपर प्रमाणेनोज होवो जोईए कारण के ए तो भाग्ये ज मानी शकाय तेवुं छे के तेनी पहेलां जैन साधुओ जे कांई कंठस्थ करता हशे तेने सर्वथा नज लखता होय. ब्राह्मणो वेदनुं अध्ययन कराववामां लिखित पुस्तकोनो उपयोग करता नथी छतां पण तेमनी पासे तेवां पुस्तको तो जरूर जोवामां आवे छे. तेओ (ब्राह्मणो) आ पुस्तकोने खानगी उपयोग माटे एटले के गुरुनी स्मरणशक्तिने मदत करवा माटे राखे छे. मारूं दृढ मानवुं छे के जैनो पण आ ज पद्धतिने अनुसरता हशे. बल्के तेओ ब्राह्मणोथी पण वधारे आ पद्धतिनुं अनुसरण करता हशे, केमके ब्राह्मणोनी माफक तेओनुं एवुं मानवुं तो हतुं ज नहीं के लिखित पुस्तको अविश्वस्य छे. तेओ तो मात्र जे एक प्रचलित रिवाज हतो, के आगमनुं ज्ञान मौखिकरीते ज एक पेढीद्वारा बीजी पेढीने अपावुं जोईए, तेने लईने ज लिखित ग्रंथोनो विशेष उपयोग करवामां संकोचाता हता. हुं अहीं एम प्रतिपादन करवा इच्छतो नथी के जैनोना पवित्र आगमो असलथी ज छुटा छवाया पण आखी रीते, पुस्तकोमां लखेला ज हता. अने एम न कहेवानुं खास कारण बीजूं कांई नहीं, परंतु बौद्ध भिक्षुओ पासे लिखित पुस्तको न हतां एम जे कहेवाय छे तेज छे. बौद्ध भिक्षुओ पासे आवां पुस्तको नहतां तेना प्रमाण तरीके एवुं कहेवामां आवे छे के तेमनां सूत्रोमां, ज्यारे प्रत्येक जंगमवस्तुथी लईने नानामां नानी अने क्षुद्रमां क्षुद्र एवी घरमां वापरवा लायक वासणो जेवी चीजोनो पण कोई ने कोई रीतिए उल्लेख थएलो अवश्य जडे छे"[१] त्यारे लिखित पुस्तकनो क्यां ए पण बिलकुल उल्लेख थएलो जोवामां आवतो नथी. आ कथन, मारा मानवा प्रमाणे, ज्यां सुधी जैन यतिओ, भ्रमणशील जीवन गुजारता हता त्यां सुधी तेमने पण लागु पडे तेवुं छे. परंतु ज्यारथी तेओ पोताना ताबाना

१. संभवित न लागतुं होवा छतां ए शक्य छे के सिद्धान्तनिर्णयनो समय आ करतां ६० वर्ष पछी एटले ई. स. ५१४ (अथवा ५२७) होवो जोईए. जुओ कल्पसूत्र, उपोद्घात पृ. १७.

१. Sacred Books of the East, Vol, XIII Introduction, p, XXXIII,

अथवा पोताना माटे बनावेला उपाश्रयोमां रहेवा लाग्या त्यारथी तेओ पोतानां हस्तलिखित पुस्तको पण अत्यारनां माफक, राखवा लाग्या हता.

आ दृष्टिए जोतां, देवर्धिगणीनो जैन आगमसाहित्यसाथेनो संबंध, साधारणरीते जेम मनाय छे, तेनाथी कोई विलक्षण प्रकारनो होय तेम जणाय छे. तेमणे वस्तुतः तेमनी पहेलां अस्तित्वधरावता हस्तलिखित ग्रंथोने सिद्धान्तना आकारमां गोठवी दीधा हता. अने तेम करती वखते जे जे सूत्रो–आगमोना हस्तलिखित ग्रंथो उपलब्ध थया न होता, ते सघळा तेमणे विद्वान् धर्माचार्योना मुखेथी लखी लीधा हता.

वळी, आवी रीते धार्मिक शिक्षणपद्धतिमां दाखल थएला आ नवा फेरफारने लीधे पुस्तको एक अत्यावश्यक साधनरूप थई पडेलां होवाथी प्रत्येक उपाश्रयने ए आगमग्रंथोनी नकलो पूरी पाडवा माटे तेनी घणी नकलो कराववामां आवी हशे. आ रीते जोतां देवर्धिगणांनी सिद्धान्तनी आवृत्ति ते, तेमनी पहेलां अस्तित्व धरावता पवित्र सिद्धान्तग्रंथोनो लगभग प्राचीन ज आकारमां निर्णीत करेलो एक नवो पाठ मात्र छे. आ आवृत्तिकारे, संभव छे के, प्राचीन सिद्धान्तमां कोईक कोईक उमेरा कर्या हशे. परंतु आटला उपरथी संपूर्ण सिद्धान्त नवो बनाववामां आव्यो छे एम तो खरेखर नज कही शकाय. आ अंतिम आवृत्तिमां निर्णीत थएला पाठनी पूर्वेनो सिद्धांत पाठ पण केवळ यतिओनी स्मरणशक्तिना आधारे ज लखवामां आवता पाठ जेवो अव्यवस्थित न हतो परंतु ते पाठ हस्तलिखित प्रतिओ साथे मेळवेलो हतो.

आटलुं विवेचन कर्या बाद हवे आपणे जैनोना पवित्र आगमोनी रचनानो समयविषयक विचार करीए. संपूर्ण आगमशास्त्र प्रथम तीर्थंकरनुं ज प्ररूपेलुं छे ए जातना जैनोना विचारनुं तो निराकरण करवा खातरज हुं अहीं सूचन करूं छुं. सिद्धान्तना मुख्य ग्रंथोनो समय नक्की करवा माटे आपणे आना करतां वधारे सारां प्रमाणो–पुरावाओ एकत्र करवा जोईए. छूटक अने असंबद्ध सूत्रा लाखो गमे त्यारे आगमग्रंथोमां दाखल थई गया होय तथा देवर्धिगणीए पण भले तेने पोतानी आवृत्तिमां स्वीकारी लीधा होय. पण तेटला उपरथी आपणे कोई प्रकारनुं सबळ अनुमान काढी शकीए नहीं. हुं म्लेच्छ अथवा अनार्य जातिओनी[1] जे यादीओ ए सूत्रोमां मळी आवे छे ते उपर वधारे वजन मूकी शकतो नथी. तेमज साते निह्नवो, के जेमांनो छेल्लो वीरनिर्वाण पछी ५८४ वर्षे थयो[2] हतो, तेना उल्लेख उपरथी पण कांई अनुमान काढी शकाय नहीं. आवा प्रकारनी विगतोना संबंधमां जो एम मानवामां आवे के जे आचार्यो पोतानी शिष्यपरंपराने पेढी दरपेढीए लिखित या कथित रूपे सिद्धान्तपाठ सोंपता गया हता, तेओए ते (विगतो) ने सिद्धान्तनी टीका-टिप्पणीरूपे अगर तो मूळ सुद्धांमां पण दाखल करी दीधी हती तो तेमां कांई अस्वाभाविकता जेवुं नथी. परंतु सिद्धान्तमां एक महत्त्ववाळी बाबत ए जणाय छे के तेमां कोई पण स्थळे ग्रीक लोकोना खगोळशास्त्रनी गंध सरखी जोवामां आवती नथी. कारण के जैन ज्योतिषशास्त्र ते, वास्तविकमां, एक अर्थरहित अने अश्रद्धेय कल्पना मात्र छे. तेथी आपणे एम अनुमान करी शकीए छीए छे के जैन ज्योतिषशास्त्रकारोने ग्रीक जातिना खगोळ शास्त्रनी स्हेज पण माहीती होत तो तेवुं असम्बद्ध तेओ जरूर न लखत. हिन्दुस्थानमां ग्रीसनुं आ शास्त्र ई.स. नी त्रीजी अगर चोथी शताब्दिमां दाखल थयुं हतुं एम मनाय छे आ उपरथी आपणे ए रहस्य काढी शकीए छीए के जैनोना पवित्र आगमो ते समयनी पहेलां रचायां हतां.

जैन आगमोनी रचनाना समयनिर्णयमाटे बीजुं प्रमाण ते तेनी भाषा विषयक छे. परंतु, कमनसीबे हजी सुधी ए प्रश्ननुं स्पष्ट निराकरण थयुं नथी के जैनागमो, जे भाषामां अत्यारे आपणने उपलब्ध थाय छे ते ज तेनी मूळभाषा छे

---

१ अनार्य जातिओमांनो 'आरब' शब्द ते, वेबरना धारवा प्रमाणे, कदाच 'आरब' वाचक बने, परंतु मारा मानवा प्रमाणे ते शब्द 'तामिलो' नो वाचक छे. कारण के तामिलोनी भाषाने द्रविडीयन लोको अरवमु कहे छे.

२. See Weber Indische Studien, XVI, P. 237.

अर्थात् जे भाषामां सौथी प्रथम तेनी संकलना थई हती तेज भाषामां अत्यारे आपणने उपलब्ध थाय छे, के पाछळथी, पेढी दरपेढीए ते ते काळनी रूढ (प्रचलित) भाषानुसार तेमां उच्चारण-परिवर्तन थतां थतां छेक देवर्धिगणीना नवीन संस्करण वखतनी चालु भाषाना उच्चारण पर्यंतनी भाषाथी मिश्रित थएला आजे मळे छे? आ बे विकल्पोमांनो मने तो बीजो ज विकल्प स्वीकरणीय लागे छे. कारण के ए आगमोनी प्राचीन भाषाने चालु भाषानी रूढिमां फेरववानो वहीवट ठेठ देवर्धिगणी सुधी चालु रह्यो हतो. अने अते देवर्धिगणीना संस्करण ज ते वहीवटनो अंत आण्यो हतो. एम मानवाने आपणने कारणो मळे छे. जैन प्राकृत भाषामां स्वरूपसंगत वर्णविन्यासनो जे अभाव दृष्टिगोचर थाय छे तेनु कारण, जे लोकभाषामां (Vernacular Language) ते पवित्र आगमो हमेशां उच्चाराइ रह्या हता, ते भाषामां निरंतर थतुं रहेलुं क्रमिक परिवर्तन ज छे. जैनसूत्रोनी सघळी प्रतिओमां एक शब्द एकज रीते लखेलो जोवामां आवतो नथी. आ वर्णविन्यासविषयक विभिन्नतानां मुख्य कारणोमांनु एक कारण तो बे स्वरो वच्चे आवता असंयुक्त व्यंजननो प्रकृतिभाव (तदवस्थ राखवारूप), लोप, के मृदूकरण थवारूप छे; अने बीजुं कारण बे संयुक्त व्यंजनोनी पूर्वेना ए अने ओ ने तदवस्थ एटले कायम राखवारूप अथवा तेने क्रमथी इ अने उ ना रूपमां परिवर्तित करवा (लघूकरण) रूप छे ए तो अशक्य ज छे के एकज शब्दना एकज समयमां एकथी वधारे शुद्ध गणावा लायक उच्चारो होई शके. उदाहरण तरीके—भूत, भूय; उद्ग, उदय अने उअय; लोभ,लोह; इत्यादि. आपणे आ प्रकारनी जुदी जुदी लेखन पद्धतिओने ऐतिहासिक लेखनपद्धतिओ मानवी जोईए. एटले के देवर्धिगणीवाळा सिद्धान्तसंस्करणमां साहाय्यभूत बनेली बधी हस्तलिखित प्रतिओमां जे जे भिन्न भिन्न लेखनपद्धतिओ मळी आवती हती ते बधी प्रामाणिक मानवामां आवी हती अने तेथी ते सघळी पद्धतिओने ए सूत्रनी नकलोमां साचवी राखवामां आवी हती. आ विचार जो युक्तियुक्त जणातो होय तो, आपणे, सौथी प्राचीन अने रूढिबहिष्कृत लेखनपद्धतिने आगमरचनाना आदि समयनी अथवा तो तेना निकट समयनी उच्चारसूचक मानी शकीए. अने सौथी अर्वाचीन लेखनशैलीने सिद्धान्तना अंतिम संस्करणना समयनी अगर तेनी नजीकना समयनी उच्चारदर्शक मानी शकीए.[1] वळी सौथी प्राचीनरूपमां उपलब्ध थती जैन प्राकृत भाषाने, पाली तथा हाल, सेतुबन्ध विगेरेनी (पाछला समयनी) प्राकृत साथे जो आपणे सरखावीशुं तो आपणने स्पष्ट जणाशे के जैन प्राकृत ए पाछळनी प्राकृत करतां पालीने वधारे मळती आवे छे. आ उपरथी आपणे एवा निर्णय उपर आवी शकीए छीए के कालगणनानी दृष्टिए पण जैनोना आगमो, त्यार पछीना समयमां थएला प्राकृत ग्रंथकारोना ग्रंथो करतां दक्षिणना बौद्धसूत्रो [ना रचना समय] साथे वधारे समीपता धरावे छे.

परंतु, आपणे जैन आगमोनी रचनाना समयनी मर्यादा, तेमां प्रयोजाएला छंदोनी मददथी, आथी पण वधारे निश्चिततराते आंकी शकीए तेम छीए. हुं

---

१ हुं एम नथी कहेतो के कोई पण शब्दनां एक काळमां बे रूपो ज न होई शके बल्के रूपोवाळा घणाए शब्दो थया हशे. परंतु प्रायः प्रत्येक शब्दना बब्बे त्रण त्रण रूपो एक साथे प्रचालित रहेवानी बाबतमां मने जरूर शंका रहे छे.

१. कोई अहीं एवी दलील कर्या करे छे के आवी आर्ष एटले रूढिबहिष्कृत लेखनपद्धतिना अस्तित्वनुं कारण मात्र संस्कृत भाषानी असर छे. परंतु जैनोनुं प्राकृत-भाषानुं ज्ञान हमेशां एटलुं बधुं संगीन रह्यं हतुं के जेथी तेमने पोताना आगमोने समजवा माटे संस्कृतनी सहायता लेवी ज पडती नहोती के जेथी तेनी तेना उपर असर पडे. परंतु आथी उलटुं, जैनोना संस्कृत ग्रंथोनी प्रतिओमां प्राकृत शब्दो जेवा लखेला घणा शब्दो मळी आवे छे. उपर प्रमाणे मानतां पण केटलीक जोडणीओ तो एवी मळी आवे छे के जेने संस्कृतीकरणनी दृष्टिए पण समजावी शकाय तेम नथीः—ड त. दारयने बदले मळतुं दारग एवुं रूप लईए. आ शब्दनुं संस्कृत प्रतिरूप ' दारक ' थायछे परंतु ' दारग ' एवुं थतुं नथी.

આચારાંગ અને સૂત્રકૃતાંગ સૂત્રના પ્રથમ સ્કંધોને, સિદ્ધાન્તના સૌથી પ્રાચીન ભાગ તરીકે માનું છું. અને મારા આ અનુમાનના પ્રમાણ તરીકે હું આ બે ગ્રંથોની (સ્કંધોની) શૈલી બતાવીશ. સૂત્રકૃતાંગ સૂત્રનું આખું પ્રથમ અધ્યયન, વૈતાલીય વૃત્તમાં રચાએલું છે. આ વૃત્ત ધમ્મપદ આદિ દક્ષિણના અન્ય બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં પણ વપરાએલો જોવામાં આવે છે. પરંતુ પાલીસૂત્રોનાં પદ્યોમાં પ્રયોજાએલો વૈતાલીય વૃત્ત, તે, સૂત્રકૃતાંગ સૂત્રના પદ્યોમાં મળી આવતા વૈતાલીય વૃત્તની દૃષ્ટિએ જોતાં, વૃત્તના વિકાસ ક્રમના પ્રાચીન સ્વરૂપનો દ્યોતક છે. આ બાબતમાં હું અહીં વધારે ન લખતાં, થોડાજ સમયમાં જર્મન ઓરિએન્ટલ સોસાઇટીના જર્નલમાં, ‘ વેદની પછીના કાલના છંદો ’ (‘ Post-Vedic Metres ’) એ મથાળા નીચે પ્રકટ થનારા મારા લેખમાં વિસ્તૃતરીતે ચર્ચવા ઇચ્છું છું. સંસ્કૃત સાહિત્યના સામાન્ય વૈતાલીય [વૃત્તના] શ્લોકો, કે જેમાંના કેટલાક લલિતવિસ્તરામાં પણ મળી આવે છે, તેની સાથે મુકાબલો કરી જોતાં, સૂત્રકૃતાંગનો વૈતાલીય વૃત્ત તેથી વધારે પ્રાચીન રૂપનો જણાય છે. વળી એ બાબત પણ અહીં લક્ષ્યમાં લેવા લાયક છે કે પ્રાચીન પાલીસાહિત્યમાં આર્યાવૃત્તમાં ગુંથેલાં પદ્યો મળી આવતાં નથી; ધમ્મપદમાં તો તે સર્વથા નથી જ. તેમ અન્ય બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં પણ તેવાં પદ્યો મારા જોવામાં આવ્યાં નથી. પરંતુ, આચારાંગ અને સૂત્રકૃતાંગ સૂત્રોમાં તો એક એક સંપૂર્ણ અધ્યયન આર્યાવૃત્તમાં લખેલું મળી આવે છે. આ આર્યાવૃત્ત, સામાન્ય [રીતે ઓળખાતા] આર્યા વૃત્તથી સ્પષ્ટ રીતે પ્રાચીન તથા તેનો જનક સ્વરૂપ દેખાય છે. સામાન્ય આર્યાવૃત્ત તે, સિદ્ધાન્તના વધારે અર્વાચીન ભાગોમાં, તથા પ્રાકૃત અને સંસ્કૃત ભાષાના બ્રાહ્મણ ગ્રંથોમાં અને લલિતવિસ્તરાદિ જેવા ઉત્તરના બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં પણ નજરે પડે છે પ્રાચીન જૈનગ્રંથોમાં પ્રયોજાએલો ત્રિષ્ટુપ્ છંદ પણ પાલી ગ્રંથોમાં મળી આવતા તે છંદ કરતાં અર્વાચીન રૂપનો અને લલિતવિસ્તરામાંના કરતાં પ્રાચીનરૂપનો છે. અંતે, લલિતવિસ્તરાદિ ગ્રંથોમાં જોવામાં આવતા આ સિવાયના બીજા અનેક પ્રકારના કૃત્રિમ વૃત્તો—જેમાંનો એક પણ વૃત્ત જૈનસિદ્ધાન્તમાં જડી આવતો નથી—ઉપરથી એમ સિદ્ધ થતું હોય તેમ જણાય છે કે આ પ્રકારના અર્વાચીન ગ્રંથોની રચનાના સમય પૂર્વે જૈનોની સાહિત્ય વિષયક અભિરુચિ નિશ્ચિત થએલી હતી. આ સઘળી બાબતો ઉપરથી આપણે એવો નિર્ણય કરી શકીએ છીએ કે, જૈનોના સૌથી પ્રાચીન સાહિત્યની સમયમર્યાદા પાલી સાહિત્ય અને લલિતવિસ્તરા એ ઉભયના રચનાકાલની વચ્ચે નિશ્ચિત થાય છે. પાલી પિટકોનું પુસ્તકાધિરોહણ (અર્થાત્ પુસ્તકરૂપે લખાણ) વટ્ટગામણિ જેણે ઈ. સ. પૂર્વે ૮૮ વર્ષે પોતાનું રાજ્યશાસન શરૂ કર્યું હતું તેના સમયમાં થયું હતુ. જો કે આ સમયથી કેટલીક શતાબ્દિઓ પૂર્વે પણ તે પિટકો અસ્તિત્વ તો ધરાવતાં હતાં જ. આ વિષયની ચર્ચા કરતાં છેવટે પ્રો. મેક્સમૂલરે નીચે પ્રમાણેના વિચારો જણાવ્યા છે ‘ તેટલા માટે, મારા વિચાર પ્રમાણે, અત્યારે તો આપણે બૌદ્ધ સૂત્રોના અર્વાચીનમાં અર્વાચીન રચના–સમય તરીકે ઈ. સ. પૂર્વે ૩૭૭ મા વર્ષને, નિર્ણીત કરી, સંતોષ માનવો જોઈએ,–કે જે સમયે દ્વિતીય સંગિતિ મળી હતી.’[1] ત્યાર બાદ પણ એ પાલી સૂત્રોમાં ઉમેરા તથા ફેરફારો થયા હોય એ અસંભાવિત નથી. પરંતુ આપણી પ્રસ્તુત દલીલ ધમ્મપદના કોઈ એકાદ ફકરાકે ભાગને આધારે ઉભી થએલી ન હોઈ, તેમાં તથા અન્ય પાલીગ્રંથોમાં મળી આવતા વિવિધ છંદો ઉપરથી તારવી કઢાતા છંદઃશાસ્ત્રના નિયમોના પાયા ઉપર સ્થાપિત કરવામાં આવેલી છે. તેથી, એ ગ્રંથોમાં દાખલ થએલા ઉમેરા યા ફેરફારોથી, અમારા એ નિર્ણયને–કે સમસ્ત જૈન સિદ્ધાન્ત સાહિત્ય ઈ. સ. પૂર્વે ચોથી શતાબ્દિ બાદ રચાએલું છે,–તેને કોઈ પણ પ્રકારની હાનિ પહોંચી શકતી નથી.

આપણે ઉપર જોઈ ગયા કે જૈનસિદ્ધાન્તનો સૌથી પ્રાચીન વિભાગ લલિતવિસ્તારાની ગાથાઓથી અધિક જૂનો છે. આ ગ્રંથ (લલિતવિસ્તરા) ના વિષયમાં એવું કહેવાય છે કે તેનો ઈ. સ. ૬૫ માં ચીની ભાષામાં અનુવાદ થયો હતો. આ ઉપરથી વર્તમાન જૈન સાહિત્યની ઉત્પત્તિનો સમય ઈ. સ.

---

૧ Sacred Books of the East, Vol. X, p. XXXII.

नी शरुआत पहेलां मानवो जोईए. वळी दक्षिण अने उत्तरना पद्यात्मक बौद्ध ग्रंथोनी छन्द अने भाषाशैली विषयक विशिष्टताओना प्राचीनतम पद्यात्मक जैन सिद्धान्तोमां मळी आवता अल्प या अधिकांश साम्यद्वारा, आपणे जो, आ बे सीमाओं वच्चे आवेला प्रस्तुत विवादास्पद समयना कालविषयक अंतरनो विचार करीए छीए तो जैन साहित्यनी शरुआतनो समय, उत्तरना बौद्ध साहित्यना समय करतां पाली साहित्यना समयनी अधिक समीप ठरे छे.

वळी आ प्रकारना अनुमानने श्वेताम्बर संप्रदायनी एक परंपरागत कथाद्वारा समर्थन पण मळे छे. परंपरा[1] एवी छे के जे वखते भद्रबाहु युगप्रधान हता ते वखते बार वर्षनो एक दीर्घ दुष्काळ पड्यो हतो. ते दुष्काळना अंते पाटलीपुत्रमां संघ भेगो थयो हतो अने तेणे सघळां अंगो एकत्र कर्यां हतां. आ भद्रबाहुना अवसाननी तारीख श्वेताम्बरोना कथन प्रमाणे वीर पछी १७० वर्षे छे; अने दिगम्बरोना कथन प्रमाणे ते १६२ वर्षे छे. आ उपरथी तेओ चंद्रगुप्त, के जे श्वेताम्बरोना उल्लेखानुसार वी. नि. पछी १५५ मा वर्षे गादीए आव्यो हतो, तेना समयमां थया हता. प्रो. मेक्समूलरे चन्द्रगुप्तनो समय ई. स. पूर्वे ३१५–२९१ जणावेलो छे तथा वेस्टरगार्ड (Westergaard) अने कर्न (Kern)[2] वधारे संभवित रीते ते समय ई. स. पूर्वे ३२० जणावे छे. आ बन्ने वर्षो जे अल्प तफावत छे ते महत्त्वनो नथी. लगभग आ हिसाबे जैन सिद्धान्तनो रचना-समय ई. स. पूर्वे चोथी शदीना अंतमां अगर तो त्रीजी शदीनी शरुआतमां आवे छे. साथे साथे ए पण लक्ष्यमां राखवानुं छे के उपरोक्त संप्रदाय–परंपरानो भावार्थ ए छे के पाटलिपुत्रना संघे, भद्रबाहुनी साहाय्य सिवाय ज अगीआर अंगो एकठां कर्यां हतां. भद्रबाहुने दिगम्बरो अने श्वेताम्बरो बन्ने सरखी रीते पोताना आचार्य माने छे; तेम छतां श्वेताम्बरो पोताना स्थविरोनी यादीने भद्रबाहुना नामथी आगळ नहीं चलावतां, तेमना समकालीन स्थविर संभूति-विजयना नामथी आगळ लंबावे छे. ए उपरथी एम फलित थाय छे के पाटलिपुत्रना संघे एकत्र करेलां अंगो मात्र श्वेताम्बरोना ज सिद्धान्तो बनाया हशे, पण आखी जैन समाजना नहीं. आवी वस्तुस्थिति होवाथी, आपणे सिद्धांत रचनाना कालने जो युगप्रधान श्रीस्थूलभद्रना समयमां एटले ई. स. पूर्वे त्रीजी शताब्दिना प्रथम भागमां स्थिर करीए तो ते खोटुं नहीं गणाय.

आपणी उपरोक्त तपासनुं परिणाम जो प्रामाणिकताने पात्र थवतुं होय,—अने ते थवुंज जोईए कारण के तेना बाधक प्रमाणोनो अभाव छे—तो वर्तमान जैन साहित्यनी उत्पत्तिनो समय ई. स. पूर्वे लगभग ३०० वर्ष पहेलां अथवा ए धर्मनी उत्पत्ति पछी लगभग बे शताब्दी पहेलां मूकी शकाय नहीं परंतु आ उपरथी एम तो खास कांई मानी लेवानी जरूर नथी ज के जैनो पासे पोताना अंतिम तीर्थंकर अने सिद्धान्तरचनाना आ समय वच्चेना अन्तरालमां, एक अनिश्चित अने असंकलित धार्मिक तथा पौराणिक परंपरा उपरांत खास आधार राखवा योग्य वधारे सुदृढ धर्मसाहित्य हतुं ज नहीं. कारण के एम जो मानवामां आवे तो पछी जैन परंपरानी विश्वसनीयताना विषयमां जे विरोधदर्शक प्रमाणो मी. बार्थ रजु करेलां छे ते वास्तविकमां पाया विनानां छे एम कही शकाय नहीं. तथापि एक बाबत अहीं ध्यानमां लेवा लायक छे; अने ते ए छे के श्वेताम्बरो अने दिगम्बरो ए बन्नेनुं एम कहेवुं छे के अंगो सिवाय पहेलांना कालमां तेनाथी पण वधारे प्राचीन एवां चौद पुर्वो हतां. अने ते पूर्वोनुं ज्ञान क्रमथी नष्ट थतुं थतुं अंते सर्वथा नष्ट थई गयुं हतुं.

चौद पूर्वोना विषयमां श्वेताम्बरोनी मान्यता आ प्रमाणे छेः–चौद पूर्वो ए दृष्टिवाद नामना बारमा अंगमां समाएलां हतां अने ते महावीर निर्वाण पछी १००० वर्षे व्यतीत थया पहेलां नष्ट थयां हतां. जो के आ कथन प्रमाणे चौद पूर्वो तो सर्वथा नष्ट

१ परिशिष्ट ९,५५.

२. Geschiedenis van het Buddhisme in Indie, ii, p. 266 note.

थई गयां छे, तो पण दृष्टिवाद अने तेमां अंतर्गत थएलां चौद पूर्वोना विषयोनी विस्तृत सूचि अद्यावधि समवायांग नामना चोथा अंगमां तथा नन्दीसूत्रमां आपेली जोवामां आवे छे.[1] आ दृष्टिवादमां आवेलां पूर्वो ते खास मूळ पूर्वोज हतां के, जेम हुं मानुं छुं, तेना साररूप हतां. तेनो आपणे निश्चय करी शकता नथी. गमे तेम हो परंतु तेमां समाएला विषयोना संबंधमां एक घणी विस्तृत परंपरा तो अवश्य जोवामां आवे छे.

खरेखर आपणे, कोई पण नष्ट थई गएला एवा अति प्राचीन ग्रंथ या ग्रंथसमूहना विषयमां मळी आवती परंपराने साची मानी लेवामां घणीज सावधानी राखवानी जरूर छे. कारण के आवा प्रकारनी प्राचीन परंपरा, घणीक वखते केटलाक ग्रंथकारोद्वारा पोताना सिद्धान्तोनी प्रामाणिकताना पूरावा रूपे कल्पी काढवामां आवी होय छे. परंतु प्रस्तुत बाबतमां, पूर्वोना विषयमां मळी आवती आटली बधी सामान्य अने प्राचीन परंपरानी सत्यताना विषयमां शंका करवाने आपणने कोई कारण जणातुं नथी. कारण के अंगोनी प्रामाणिकता ते कांई पूर्वोने लईने मानवामां आवती नथी. अंगो तो जगत्‌ना निर्माणना समकालीन (एटले अनादि ज) मनाय छे. तेथी जो पूर्वो संबंधी आ परंपराने मात्र एक कूटलेख रूपेज मानीए तो तेनो कांई पण अर्थ थई शके नहीं. परंतु तेने जो सत्यरूपे मानी लईए तो, जैनसाहित्यना विकासविषयक आपणा विचारो साथे ते बराबर बंधबेसती आवी जाय छे. ' पूर्व ' ए नामज ए वातनी पूरेपूरी साक्षी आपे छे के तेनुं स्थान पाछळथी बीजा एक नवा सिद्धान्ते लीधुं हतुं. अर्थात् पूर्वनो अर्थ पहेलानुं एवो थाय छे.[2] अने आ दृष्टिए ज्यारे आपणे विचारीए छीए त्यारे निःसंदेहरीते प्रतीत थाय छे के, जे समये पाटलीपुत्रना संघे अंगसाहित्य एकत्रं कर्युं हतुं, तेज समयथी पूर्वोनुं ज्ञान व्युच्छिन्न थतुं चाल्युं हतुं, एवी जे हकिकत कहेवाय छे, ते तद्दन वास्तविक छे. उदाहरण तरीके भद्रबाहु पछी चौदमांथी दशज पूर्वोनुं ज्ञान अवशिष्ट रह्युं हतु, एवुं जे कथन छे ते आपी शकाय छे.

आ उपरथी खात्री थशे के चौद पूर्वविषयक प्रचलित परंपरानो अमे जे एवो खुलासो करेलो छे के पूर्वो ते सौथी प्राचीन सिद्धान्तग्रंथो हता, अने तेना पछी तेनुं स्थान एक नवा सिद्धान्ते लीधुं हतुं, ते युक्तिसंगत छे. परंतु आटलो खुलासो आप्या बाद आ प्रश्न उभो थाय छे के आवी रीते प्राचीनसिद्धान्तनो त्याग करवामां तथा नवा सिद्धान्तनुं निरूपण करवामां शुं प्रयोजन उपस्थित थयुं हशे ? आ विषयमां मात्र कल्पना सिवाय अन्य कोई गति नथी. अने तदनुसार मारो स्वतंत्र अभिप्राय आ प्रमाणे छेः—आपणे जाणीए छीए के दृष्टिवाद नामना बारमा अंगमां चौद पूर्वो आवेलां हतां तथा ते पूर्वोमां मुख्यत्वे करीने दृष्टिओनुं एटले जैन अने जैनेतर दर्शनोना तात्त्विक विचारो—अभिप्रायोनुं वर्णन करेलुं हतुं. आ उपरथी आपणे एम कल्पी शकीए छीए के तेमां महावीर अने तेमना प्रतिस्पर्धी धर्मसंस्थापकोनी वच्चे थएला वादोनुं वर्णन आवेलुं हशे. मारा आ अनुमानना समर्थनमां प्रत्येक पूर्वना नामना अंते जे ' प्रवाद ' ए शब्द मूकवामां आव्यो छे ते आपी शकाय छे. आ उपरांत ए पण एक वात ध्यानमां राखवानी छे, के महावीर कोई एक नवा धर्मना संस्थापक न हता, परंतु, जेम में सिद्ध करेलुं छे, तेओ एक प्राचीन धर्मना सुधारक मात्र ज हता. तेथी पण ए घणुंज संभवित छे के महावीरने पोताना प्रतिपक्षिओना अभिप्रायोनुं मजबुतरीते खंडन करवुं पड्युं हशे; अने जाते स्वीकारेला अगर सुधारेला एवा पोताना सिद्धान्तोनुं घणुंज समर्थन करवुं पड्युं हशे आम कहेवानुं कारण ए छे के प्रत्येक धर्मसंस्थापकने यथार्थमां पोताना नवा सिद्धान्तोनुं प्रतिपादन करवा पूरतो ज प्रयत्न करवानी आवश्यकता रहे छे. तेने

१ See Weber, Indische Studien, XVI p. 341.

२. ' पूर्व ' शब्दनो अर्थ जैनाचार्योए नीचे मुजब समजावेलो छेः—तीर्थंकरे पोतेज प्रथम पोताना गणधर नामे प्रसिद्ध शिष्योने पूर्वोनुं ज्ञान आप्युं हतुं, त्यार पछी गणधरोए अंगोनी रचना करी. आ कथन, पहेलाज तीर्थंकरे अंगो प्ररुपेलां छे एवा आग्रह साथे जेटलं अंशे ऐक्य धरावतुं नथी, तेटलं अंशे ते खरेखर सत्य गर्भित लेखावा योग्य छे.

एक सुधारकना जेटलो प्रवादो वनी जवाना जोखमने उपाडवानी अवश्यकता रहेती नथी. हवे वखत जतां ज्यारे महावीरना ते प्रतिस्पर्धिओ आ जगतमांथी अदृश्य थई गया हता, तथा तेओ द्वारा स्थापित थएला संप्रदायो पण नामशेष थई गया हता, त्यारे महावीरना ए प्रवादो, के जे तेमना गणधरोए स्मरणमां राख्या हता तथा तेओ द्वारा पाछळनी शिष्यपरंपराने पण जे सोंपवामां आव्या हतां, ते पाछळना लोकोमां महत्त्ववाळा न मनाया होय ए स्वाभाविक छे. ए कोण कही शके एम छे के जे एक जमानामां आ प्रकारना दार्शनिकोना तत्त्वज्ञान विषयक विविध प्रवादो अने कलहो व्यावहारिक उपयोगितावाळा जणाया होय तेज प्रवादो अने कलहो, सर्वथा परिवर्तित थएला एवा अन्य जमानामां पण तेवाज उपयोगी सिद्धान्तो तरीके मनाई शके? आ ज विचारानुसार, नवा जमानाना जैनसमाजने पोतानी सामायिक परिस्थितिने अनुकूल आवे तेवा एक नवा सिद्धान्तनी जरूर जणाई हशे अने तेने परिणामे, मारूं मानवुं छे के, नवा सिद्धान्तनी रचना अने जूना सिद्धान्तनी (पूर्वोना ज्ञाननी) उपेक्षा थवा पामी हशे.

प्रो. वेबर[1] दृष्टिवाद् अंगने नष्ट थवामां एवुं कारण जणावे छे के श्वेताम्बर समाज ज्यारे एक समये एवी अवस्थाए आवी पहोंच्यो हतो के जे वखते तेने पोताना (प्रचलित) विचारो अने ते ग्रन्थमां (दृष्टिवादमां)-आलेखित विचारोनी वच्चे अत्यंत अनुपेक्षणीय अंतर स्पष्ट देखावा लाग्युं, त्यारे ए चौद पूर्वोवाळुं दृष्टिवाद अंग उपेक्षाने पात्र थयुं हतुं. परंतु, प्रो. वेबरनी आ कल्पनानी विरुद्ध, श्वेताम्बरोनी माफक दिगम्बरो पण, पोताना पूर्वो अने ते उपरांत अंगो सुद्धांने व्युच्छिन्न थएलां जणावता होवाथी, हुं तेमना मतने मळतो थई शकतो नथी. तेमज निर्वाणनी तुरतज पछीनी वे शताब्दिमां जैन समाजे एटली वधी झडपथी प्रगति करी लीधी होय के जेथी ते समाजना बन्ने मुख्य संप्रदायोने पोताना पूर्व सिद्धान्तनो त्याग करवा जेटली आवश्यकता जणाई होय, एम पण मानी वेसवुं तद्दन असंभवित लागे छे. वीजी ए पण बाबत लक्ष्यमां राखवा योग्य छे के जैन धर्ममां वे संप्रदायो थया पछी तेना तत्त्वज्ञानमां वीलकुल फेरफार थयो न होतो—अर्थात् ते तद्दन स्थिरज रह्युं हतुं. आनुं प्रमाण मात्र एज छे के आ बन्ने संप्रदायोना तत्त्वज्ञानमां कोई विशेष उल्लेखयोग्य भेद नजरे पडतो नथी. आचारशास्त्रना विषयमां अलबत आ बन्ने संप्रदायोमां केटलाक भिन्न भिन्न विचारो जोवामां आवे छे, परंतु, अत्यारे पण ज्यारे श्वेताम्बरोमां लांबा समयथी, तेमना वर्तमान सिद्धान्तसमूहमां विहित थएला घणाक आचारोनुं पालन बंध थएलुं होवां छतां पण तेओ तेना तरफ उपेक्षा धरावता नथी त्यारे तेवाज कारणने लईने ते वखते अस्तित्व भोगवता एवा तेमना पूर्वात्मक सिद्धान्तसमूहना विषयमा श्वेताम्बरोए तेटला बधा आवेशमां आवी जई पोताना पूर्व साहित्यनो सर्वथा त्याग सुधां करी नांख्यो हतो एम मानवुं युक्तिसंगत जणातुं नथी. आ उपरांत नवा सिद्धान्तनो जे समय आपणे उपर निर्णीत कर्यो छे, ते समय पछी पण लांबा वखत सुधी पूर्वो विद्यमान हतां एम मानवामां आवे छे परंतु, आखरे ज्यारे पूर्वोना प्रवादमय साहित्य करतां नवा सिद्धान्तद्वारा जैन तत्त्वो वधारे स्पष्टरीते प्रकाशित थता देखावा लाग्यां अने वधारे व्यवस्थासर लोको समक्ष मूकावा लाग्यां त्यारे पूर्वो स्वभाविक रीते ज, नहीं के तेमनी बुद्धिपूर्वक कराएली उपेक्षाने लीधे, अदृष्ट थयां हतां.

आपणी प्रस्तुत चर्चा जे आ स्थळे समाप्त थाय छे ते उपरथी, हुं धारूं छुं के, आटली बाबतो प्रकटरीते सिद्ध थएली छेः—जैनधर्मनी उत्क्रांति (प्रगति) कोईपण समये कोईपण अत्यंत असाधारण एवा बनावोथी, जबरदस्त अटकाव पामेली नथी. बीजुं ए के आपणे आ उत्क्रांतिनी शरुआतनी अवस्था उपरांत तेनी सघळी विविध अवस्थाओनो पत्तो मेळवा शकीए छीए, अने त्रीजुं ए के जैनधर्म ए निर्विवादरीते स्वतंत्र मनाता एवा कोई पण धर्मनी माफक स्वतंत्ररीते उत्पन्न थएलो छे—परंतु कोई अन्य धर्म अने खास करीने बौद्धधर्मनी शाखा रूपे

---

१. Indische Studien, XVI, p. 248.

बिलकुल प्रवर्तेलो नथी. आ विषयनी विशेष विगतोना संशोधननुं कार्य भावि शोधखोळ उपर निर्भर छे तेम छतां मने आशा छे के, हुं जैनधर्मनी स्वतंत्रताना संबंधमां तथा तेना पवित्रग्रंथ (आगमो) ने, ते धर्मना प्राचीन इतिहासने कट करवामां क लेखी साधनोरूपे स्वीकारवाना विषयमां, अत्यार सुधी जे केटलाक विद्वानोना मनमां अमुक संदेहो स्थान पामी रह्या छे, तेने दूर करवा सफळ थयो छुं.

साहित्य—समालोचन.



१

धनपालकृत भविष्यदत्त कथा.

[डॉ. हर्मन जेकोबी द्वारा संपादित अने जर्मनीमां प्रकाशित.]

प्रख्यात जर्मन विद्वान् डॉ. हर्मन जेकोबिनुं नाम एक जैन स्कॉलर तरीके जगत्प्रसिद्ध छे. तेमणे जैनधर्म अने जैन साहित्यनो घणो ऊंडो अभ्यास कर्यो छे. जैन धर्मना केटलाए संस्कृत-प्राकृत ग्रंथोनुं तेमणे संशोधन अने संपादन कर्युं छे. तेमज केटलाएनुं जर्मन अने इंग्रेजी भाषामां भाषांतर कर्युं छे. जैन धर्म, जैन इतिहास अने जैन साहित्य उपर तेमणे अनेक लेखो लख्या छे, अने भाषणो आप्यां छे. आजे अमे, आ नीचे, डॉ. साहेबे संपादन करेला एक जैन पुस्तकनुं संक्षिप्त परिचय आपवा इच्छीए छीए जे हमणांज प्रकट थयुं छे.

ए पुस्तकनुं नाम भविष्यदत्त कथा ('भविस्सयत्त कहा') छे अने ते धनपाल नामे एक वणिक् विद्वाननुं बनावेलुं छे. धनपाल नामे प्रसिद्ध जैन ब्राह्मण पंडित, जे विक्रमनी ११ मीं शताब्दीमां, संस्कृतसाहित्यप्रसिद्ध नृपति भोजना समयमां थई गयो छे अने जेणे तिलकमंजरी नामे एक श्रेष्ठ जैन आख्यायिका बनावी छे, तेनाथी आ धनपाल भिन्न समजवो जोईए. ते धनपाल जाते ब्राह्मण हतो अने आ धनपाल धक्कडवंशीय वैश्य जातिनो छे. एना पितानुं नाम महेश्वर अने मातानुं नाम धनश्री हतुं. ए उपरांत, ए क्यांनो वतनी हतो अने क्यारे थई गयो, ते जणायुं नथी. एनी कृतिनी भाषा उपरथी जे अनुमान थाय छे ते प्रमाणे ए विक्रमनी १२ मी अगर १३ मी शताब्दी थयो होवो जोईए.

भविष्यदत्त कथा जैन समाजमां जाणीती छे अने संस्कृत प्राकृतमां बनेली ए नामनी बीजी पण घणी कथाओ उपलब्ध थाय छे कथानी वस्तुमां ज्ञान पंचमीनुं माहात्म्य वर्णवामां आव्युं छे. धनपालनी आ कथानुं संपादन करवामाटे डॉ. जेकोबीए जे परिश्रम उठाव्यो छे ते तेमां रहेली वस्तुनी दृष्टिए नहिं परंतु तेनी भाषानी दृष्टिए छे. आ कथानी रचना अपभ्रंश भाषामां थएली छे. अपभ्रंश भाषा ए भारतवर्षनी हिन्दी गुजराती आदि प्रचलित मुख्य भाषाओनी अनंतर जननी छे. मूळ संस्कृतमांथी प्राकृत निकळी, प्राकृतमांथी अपभ्रंश जन्मी अने अने अपभ्रंशमांथी आजनी देशभाषाओ अवतरी; एवुं भाषाशास्त्रनुं कथन छे. अपभ्रंश भाषानुं व्याकरण तो हेमचंद्रसूरिए पोताना सिद्धहेम व्याकरणना आठमा अध्यायना चोथा पादमां विस्तृत रीते आपेलुं छे परंतु भाषाशास्त्रिओने आज सुधीमां ए वातनी खबर न होती मळी के, केटलाक छूटा छवाया दोहाओ के तेवाज बीजा पद्यो सिवाय ए भाषामां रचाएला अखंड ग्रंथो पण जैनोना जूना पुस्तक भंडारोमां पड्या पड्या सड्या करे छे ! सन् १९१४ नी सालमां ज्यारे डॉ. जेकोबी हिंदुस्थाननी मुलाकाते आव्या त्यारे तेमणे ए संबंधमां केटलीक पूछ-परछ करी, जेना परिणामे अमदावाद निवासी साहित्यरसिक श्रावक भाई श्रीकेशवलाल प्रेमचंद मोदीना प्रयत्नथी प्रस्तुत कथानी एक प्रति तेमना जोवामां आवी. डॉ. जेकोबी ए ग्रंथ जोई बहु खुशी थया अने तुरत ते आखा पुस्तकनो फोटोग्राफ पडावी लई पोतानी साथे जर्मनी लई गया. पाछळथी तेमणे ए ग्रंथनी बीजी प्रतो मेळववामाटे

पण प्रयत्न कर्यो अने तेना लीधे पाटणना भंडारमांथी तेनी एक जूनी प्रति कढावी प्रवर्तक श्रीकांतिविजयजीए डॉ. जेकोबी तरफ मोकली आपी. परंतु कमनसीबे तेज अरसामां जर्मनीए इंग्लांड साथे महायुद्ध जाहेर कर्यो, तेथी ते प्रति डॉ. जेकोबीने न मळतां थोडा माहिना पछी पाछी पाटण आवी. डॉ साहेबने युद्धना कारणे बीजी प्रत मळवानी आशा रही नहिं अने युद्धनी समाप्ति सुधी वाट जोईने तेमनाथी बेशी शकाय नहिं, तेथी तेमणे एक मात्र ते फोटोग्राफना आधारे ज महान् परिश्रम उठावी आ ग्रंथनी प्रस्तुत आवृत्ति, लढाई दरम्यान ज (सन् १९१८ मां) प्रकट करी छे अने तेम करी तेमणे भाषाशास्त्रिओ माटे एक नवीन विषयना उपयोगी अध्ययननुं महाद्वार खुल्लुं कर्युं छे.

ए समग्र पुस्तकमां डेमी ४ पेजी जेवी पहोळी साईझना एकंदर ३२० लगभग पानां छे, जेमां प्रारंभनां १०० पानां प्रस्तावना अने विवरणमां (जे जर्मन भाषामां लखाएलां छे) रोकाएलां छे. विवरणमां प्रथम ग्रंथ, कर्ता, ग्रन्थगत वस्तु आदिनो परिचय आपवामां आव्यो छे अने पछी, लंबाणथी अपभ्रंश भाषा, तेनो इतिहास, तेनो विकास, तेनुं व्याकरण, तेनुं छन्दशास्त्र, अन्यान्य भाषाओ साथे रहेलो तेनो संबंध, साहित्यमां मळेलुं तेने स्थान, इत्यादि अनेक प्रकारना ज्ञातव्य विषयो, घणी ऊंडी शोधखोळ साथे, चर्चवामां आव्या छे.

विवरण पछी मूळ ग्रंथ आप्यो छे जेणे १२० पृष्ठ रोक्यां छे ग्रंथ रोमन लिपिमां मुद्रित करवामां आव्यो छे. ग्रन्थान्ते, ग्रन्थमां आवेला बधा शब्दोनो कोष आप्यो छे अने ते साथे दरेक शब्दनो संस्कृत प्रतिशब्द पण आप्यो छे.

पोताना देशमां चाली रहेला महान् युद्धना भयंकर अशांतिकाळमां पण जगत्ने एक तद्दन नवीन विषयनुं उपयोगी ज्ञान आपवा माटे, आटली वृद्धावस्थामां उठावेला अथाग परिश्रम निमित्ते, विद्वत्समाज तरफथी डॉ. जेकोबी खरेखर बहु बहु धन्यवादने पात्र छे.

आ अमूल्य पुस्तकना विषयमां अमने बे वात बहु खटके छेः-एक तो एनी प्रस्तावना तेमज विवरण जे जर्मन भाषामां लखवामां आव्यां छे, ते इंग्रेजीमां लखायां होत तो वधारे ठीक थात. कारण के भारतना अभ्यासियोमां जर्मन भाषा जाणनार विरल ज होय छे. तेथी वधा जिज्ञासु अभ्यासियो एनो यथेष्ट लाभ नहिं मेळवी शके. बीजुं. मूळ ग्रन्थ जे रोमन लिपिमां छापवामां आव्यो छे ते पण भारतीयोनी दृष्टिए निरुपयोगी जेवो ज छे. भारत वर्षना मोटा मोटा स्कॉलरो सुधांने रोमनलिपिमां छापेला संस्कृत-प्राकृत ग्रंथो वांचता घणो परिश्रम पडे छे; ता पछी साधारण आभ्यासिओना माटे तो कहेवुं ज शुं परंतु ए विषयमां तो अमने संतोष राखवानुं कारण छे के वडोदरा राज्य तरफथी प्रकट थती गाइकवाड ओरिएन्टल सीरीजमां पण ए ग्रंथ छपाय छे जेनी लिपी देवनागरी (बालबोध) ज छे, जो कोई पण विद्वान् आ पुस्तकनी बहुतथ्यपूर्ण प्रस्तावनानो इंग्रेजीमां के देश भाषामां जो अनुवाद करी-करावी आपे तो भाषाशास्त्रनी दृष्टिए बहु मोटो लाभ थवानो संभव छे.

२

सूरीश्वर अने सम्राट्.

[कर्ता मुनिराज विद्याविजय. प्रकाशक, यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर. पृष्ठसंख्या, २१-४१७. पाकुं पूंठुं. किं. रु० २-८-०]

जैन समाज तरफथी, आधुनिक गुजराती भाषामां, जे बे चार मुनिओ अगर श्रावकोना हाथे लखाएलां नानां मोटां ५-१० पुस्तको प्रकट थयां छे, ते सौमां मुनिराज विद्याविजयजीनुं लखेलुं ' सूरीश्वर अने सम्राट् ' नामनुं पुस्तक प्रथम स्थान भोगवे छे, एम कहेवामां जराए अतिशयोक्ति जणाती नथी. मुनिजीनी आ कृतिए केवळ जैन साहित्यमां ज नहिं परंतु समग्र गुजराती साहित्यमां-खास करीने ऐतिहासिक पुस्तकोमां-एक उपयोगी उमेरो कार्यो छे, एम कहेतां आमने आनंद थाय छे.

जगद्गुरु हीरविजयसूरिए मुगल सम्राट् अकबरना बादशाही दरबारमां जई, धर्मजिज्ञासु क हे

अथवा राज्यनीतिकुशल कहो-गमे ते कहो परंतु ते असाधारण व्यक्तित्ववाळा बादशाहने जे रीते ए त्यागी जैनाचार्ये पोताना धर्मनो प्रभावोत्पादक बोध आप्यो हतो, अने ते बोधने सांभळी जे रीते ते दयालु बादशाह जैनधर्म प्रति पोतानी सविशेष प्रीति प्रकट करी हती, तेनो संक्षिप्त पण सारभूत इतिहास अमे अमारा कृपारसकोष नामना पुस्तकनी लांबी प्रस्तावनामां (जे हिन्दी भाषामां लखाएली छे) आज थी ४-५ वर्ष अगाउ आप्यो हतो. ते प्रस्तावना लखती वखते ज अमारा मनमां एवो संकल्प थयो हतो के प्रसंग मळे, हीरविजयसूरिना जीवन संबन्धमां मळी आवतां सघळां साधनोने एकत्र करी, ते उपरथी एक सविस्तर जीवनचरित्र ए महान् जैनयतिनुं अवश्य तैयार करवुं जोईए. प्रस्तुत पुस्तक जोईने अमने आनंद थाय छे के अमारो ए शुभ संकल्प, अमारा एक योग्य मुनिबंधुना साथे उत्तमरीते पूर्ण थयो छे.

हीरविजयसूरिनुं आसन जग धर्मगुरुओमां एक उच्च स्थान भोगवे छे. अकबर जेवा महाबुद्धिवान्. व्यवहारचतुर, गूढहृदयी, सूक्ष्मदर्शी अने राजनीतिकुशल सम्राट्ना अंतःकरणमां, तेना देश, जाति, धर्म, स्वभाव, अने ध्येयथी तद्दन विरुद्ध संस्कारवाळा धर्मगुरुनो विरक्तिप्रबोधक धर्मबोध अनायासे उच्चस्थान मेळवे ए एक जगतना इतिहासमां आश्चर्यजनक नोंध गणावी जोईए.

ए प्रतापी सम्राट्ना,तेनी आसपासनी समग्र परिस्थितिथी अने तेना खास आनुवंशिक जीवन-संस्कारोथी विरुद्ध जता अनेक विचारो अने आचारो भिन्न भिन्न इतिहासकारोए अनेक स्थळे नोंध्या छे, परंतु ते आचार-विचारोनुं यथार्थ कारण कोई पण लेखके स्पष्टरीते आपेलुं न होवाथी आधुनिक इतिहासज्ञोए-खास करीने युरोपीय इतिहासज्ञोए-ए विषयमां अनेक तर्क-वितर्को चलाव्या छे अने हजी ए चलाव्ये जाय छे. पण कहेतां खेद थाय छे के, जैन साहित्यमां, ए विषयनो खरो खुलासो आपनारा असंख्य पुरावाओ विद्यमान होवा छतां, कोई पण विद्वाने आज सुधीमां ए पुरावाओनी तपास सुधां करी नथी. युरोपना विद्वानो तो विदेशी होवाथी कदाच ए बाबतमां ओछा उपालंभने पात्र होई शके परंतु भारतना पुरातत्त्वज्ञोनी ए विषयक उपेक्षा तो खरेखर अक्षम्य ज गणी शकाय. युरोपना केटलाक विद्वानोने अकबरनी विविध अने परस्पर विरुद्ध एवी जीवनवार्ताओमां क्रिश्चियन धर्मनी असरना स्वप्न आववां लाग्यां अने तेमनां स्वप्नस्मरणोने अमारा देशबंधु विद्वानो यथार्थरूपे पण मानवा अने कहेवा लाग्या; परंतु कोईना मनमां ए विचार नथी आव्यो के जैनोना सैंकडो लेखोमां अकबरनी जे आटली बधी प्रशंसा करवामां आवी छे तेनुं शुं कारण छे, ए तरफ पण जरा दृष्टि तो नांखी जोईए. अमारा लोकोनी आवीज अनुकरणप्रियता के प्रमादशीलताने जोईने परदेशी विद्वानो जे अमने मौलिकताशून्य अने गंभीरविचारविहीननी कुत्सित उपाधिओथी संबोध्या करे छे तेमां केटलेक अंशे सत्य अवश्य छे, एम अनिच्छाए मानवानी फरज पडे छे.

अकबरना प्रधान मंत्री शेख अबुल-फजले आईन-ए-अकबरीमां अकबरना साम्राज्यमांनी प्रधान प्रधान व्यक्तिओनी जे लांबी टीप आपी छे, तेमां, प्रथम श्रेणिमां गणावेला सर्व श्रेष्ठ मनुष्योमां हीरविजय सूरिनुं पण नाम दर्ज छ; तेमज पांचमी श्रेणिना मनुष्योनी नामावलीमां ए सूरिना प्रधान शिष्य विजयसेनसूरि अने भानुचंद्र उपाध्यायनां नामो पण आपेलां छे. परंतु आजथी दश वर्ष पहेलां कोई पण देशी के विदेशी विद्वाने अबुल फजले नोंधेला सर्व श्रेष्ठ मनुष्योमांना एक एवा ए हीरविजयसूरि, तेमज पांचमा वर्गमां आपेला विजयसेनसूरि अने भानुचंद्र नामना पुरुषो कोण छे अने शा कारणथी तेमना नामो आईन-ए-अकबरी जेवा महान् ग्रंथमां नोंधवामां आव्यां छे तेनी तपास करवा माटे परिश्रम कर्यो न हतो. 'हीरविजय सूरि ' ए नाम फारसीमां कोई जुदा प्रकारनी जोडणीथी लखवामां आव्युं हशे तेथी आईन-ए-अकबरीना इंग्रेजी अनुवाद कर्ता मी. ब्लॉकमेने ते नाम इंग्रेजीमां 'हारिजीसूर (Harigi Sur)'आवी रीतनी जोडणी करीने आप्युं छे. मी. ब्लॉकमेने आईन-ए-

अकबरीमां आपेली नामोनी उक्त लांबी टीपमांनी घणीक व्यक्तिओनी, बीजा बीजा इतिहासो उपरथी पण ओळखाण आपवा बाबत महेनत लीधी छे; परंतु 'हरिजीसूर' नाम माटे तेणे कोई पण नोंध करी नथी.

आईन-ए-अकबरीमांनुं आ नाम सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हीरविजयसूरिनुं छे, एवुं ज्ञान करावबानुं मान अमारा सद्गत स्नेही श्रीयुत चिमनलाल डाह्याभाई दलाल, एम्. ए. ने घटे छे. तेमणे बनारसथी निकळता 'जैनशासन' नामक एक साप्ताहिक पत्रना, वीर संवत् २४३९ ना दीवाळीना खास अंकमां 'हीरविजयसूरि अथवा अकबरना दरबारमां जैनो' (HIRAVIJAYASURI or THE JAINAS AT COURT OF AKBAR) एवा मथाळा नीचे, 'C' एवी संक्षिप्त सही साथे, एक प्रामाणिक लेख इंग्रेजीमां प्रकट कराव्यो हतो.[1] ते लेखमांज; भाई श्रीदलाले सौथी प्रथम पुरातत्त्वज्ञोने ए अज्ञात बाबतनी माहीती आपी हती के आईन-ए-अकबरीमां जे 'हरिजीसूर' एवुं नाम मळी आवे छे ते नाम बीजा कोईनु नथी पण जैन समाज अने जैन इतिहासमां प्रसिद्ध एवा आचार्य हीरविजयसूरिनुं ज छे. अने तेनी साथे तेमणे संक्षेपमां हीरविजयसूरि अने अकबरना समागमनो सप्रमाण इतिहास पण आलेखी बताव्यो हतो.

भाई श्रीदलालनो ए मौलिक आविष्कार वांचीने ज प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ मि. विन्सेन्टए. स्मीथ साहेबे 'अकबरना जैन गुरुओ' (THE JAIN TEACHERS OF AKBAR) ए नामनो एक महत्त्वनो इंग्रेजी निबन्ध 'भांडारकर स्मारक निबन्ध संग्रह' (R. G. Bhandarkar Commemoration Volume) मां प्रकाशित कराव्यो हतो, अने तेमां अकबरना जीवनमां हीरविजयसूरिए भजवेलो भाग संक्षिप्त परंतु स्पष्ट रीते बतावबामां आव्यो हतो. तेवीज रीते पोताना 'अकबर' नामना प्रसिद्ध पुस्तकमां पण ए साचा इतिहासप्रेमी विद्वाने, हीरविजयसूरिने केटलेक अंशे उचित स्थान आपी, ए बाबतमां इतिहासवेत्ताओथी थती आवती मोटी भूलनुं कांईक संशोधन कर्युं छे.

सूरीश्वर अने सम्राट्मां मुनिराज विद्याविजयजीए एज विषय अनेक ऐतिहासिक प्रमाणोना आधारे संपूर्णरीते आलेख्यो छे अने सम्राट् अकबरना इतिहासमां जगद्गुरु हीरविजयसूरि केवुं महत्त्वनुं स्थान धरावे छे ते सारी पेठे समजाव्युं छे. पुस्तकने प्रामाणिक बनाववामाटे मुनिजीए यथेष्ट संभाळ लीधी छे. परिशिष्टमां जे केटलाक फारसी फरमानो आप्या छे, ते आज सुधीमां जाणमां नहिं आवेला एवा छे अने तेथी पुस्तकनी महत्तामां उपयोगी उमेरो थयो छे. हीरविजयसूरि, अकबर अने अबुल-फजल विगेरेनां चित्रोथी पुस्तकनी शोभा वधारे आकर्षक बनी छे. परंतु, हीरविजयसूरीनी जे मूर्तिनुं चित्र आप्युं छे ते तेवुं सुन्दर अने आल्हादक नथी, तेथी कोई बीजी वधारे सुन्दराकृति मूर्तिनुं चित्र मेळववामां आव्युं होत तो वधारे ठीक लागत ।

अंते, आवुं उपयोगी, प्रामाणिक अने मूल्यवान् पुस्तक लखवा माटे मुनिराज विद्याविजयजीनुं पुनः एकवार अभिनंदन करी अमे अमारुं वक्तव्य समाप्त करीए छीए अने दरेक जैन अने जैनेतर विद्वान् ने एक वार आ पुस्तक अवश्य जोई जवानी खास भलामण करीए छीए.

३

तत्त्वार्थ परिशिष्ट मूल अने भाषांतर.

['मूल कर्ता आगमोद्धारक आचार्य श्रीसागरानंद सूरीश्वरजी,—भाषांतर कर्ता मुनी (?) मानसागरजी. प्रसिद्धकर्ता मास्तर उमेदचंद रायचंद. मु. अमदाबाद. मूल्य ज्ञानाभ्यास.' पृ. १८-१४८,]

समग्र जैन साहित्यमां एक तत्त्वार्थसूत्र ज एवो ग्रंथ छे के जेना अध्ययनथी जिज्ञासु मनुष्य संक्षेपमां जैन धर्मनुं संपूर्ण स्वरूप समजी शके छे. ए ग्रंथ जैन धर्मना श्वेतांबर अने दिगंबर-बन्ने संप्रदायोने समानभावे पूज्य अने मान्य छे. अलबत्, बन्ने

---

१ ए लेख पाछळथी, वडोदराथी प्रकट थता 'लाईब्रेरी मेसेलेनी' नामना त्रैमासिकमां पण प्रकाशित थयो हतो.

संप्रदायोंना सूत्रपाठमां केटलोक पाठ-भेद अवश्य रहेलो छे, परंतु तेथी तेनी पूज्यतामां कोई पण प्रकारनो भेद नथी. ए सूत्र पर बन्ने संप्रदायोना समर्थ पूर्वाचार्योए भाष्य टीका आदि अनेक व्याख्यानो करेलां छे अने तेनो सर्वत्र प्रचार पण छे. एज सूत्रना परिशिष्टरूपे समालोचित पुस्तकनी रचना करवामां आवी छे. वास्तविकमां, तत्त्वार्थसूत्रनी रचनामां एवी कोई खास न्यूनता नथी के जेथी तेनी पूर्ति करवा माटे परिशिष्ट बनाववानी आवश्यकता प्रतीत थाय. अने कदाच तेवी आवश्यकता जणाय तो पण ते कार्य पूर्ण अनुरूप तो बीजा उमास्वातीथी ज थई शके. बीजाए तेवो प्रयत्न करवो ते अमारा लघुमत प्रमाणे तो एक प्रकारे अनधिकारचेष्टा जेवुं ज गणाय. पूर्वना महान् महान् आचार्योए केटलाक शास्त्रोनी पूर्ति माटे एवा केटलाक प्रयत्नो कर्या छे खरा परंतु ते वार्तिक के भाष्यना रूपमां छे, सूत्रना रूपमां तो नहिं ज. अस्तु.

मूल तत्त्वार्थशास्त्रनी सूत्र-संख्या श्वेताम्बरोना पाठ प्रमाणे ३४४ छे अने दिगम्बरोना पाठ प्रमाणे ३५७ छे. जो के आम संख्यानी दृष्टिए जोतां बन्ने संप्रदायोना पाठमां मात्र १३ ज सूत्रोनो फेर जणाय छे परंतु वास्तविकमां तेम नथी. कारण के श्वेताम्बरीय सूत्रपाठमांना केटलांए सूत्रो दिगम्बरीय सूत्रपाठमां नथी अने तेवीज रीते दिगम्बरीय सूत्रपाठोना केटलांए सूत्रो श्वेताम्बरीय सूत्र पाठमां नथी. त्रीजा अध्यायमां ज्यां जंबूद्वीपनुं भौगोलिक वर्णन आवेलुं छे त्यां एक साथे श्वेताम्बरीय पाठ करतां दिगम्बरीय पाठमां २०—२१ सूत्रो सर्वथा वधारे छे. सर्वथा वधारे एटला माटे के ते सूत्रोमां आपेलुं वर्णन श्वेताम्बरीय पाठमां बिल्कुल नथी. श्वेताम्बरीय सूत्र पाठना समर्थ टीकाकार आचार्य हरिभद्रे दिगम्बरीय पाठना ए आधिक्य माटे टीका पण करी छे अने जणाव्युं छे के आ सूत्रो पाछळथी कोईए बनावी लीधां छे अने सूत्रकारना संक्षेप करणात्मक अभिप्रायनी दृष्टिए तेनुं अस्तित्व अयुक्त छे. आश्चर्य छे के जे जातनां सूत्रोने हरिभद्रसूरि सूत्रकारनी अपेक्षाए अयुक्त जणावे छे तेज जातनां नवां सूत्रो रची तत्त्वार्थना परिशिष्टरूपे सागरानंदसूरि प्रकट करावे छे.

आ परिशिष्टात्मक सूत्रोनी संख्या १३० जेटली छे अने ए सूत्रोमां घणा भागे खगोल अने भूगोलना विषयनीज पूर्ति करवामां आवी छे. जैन मान्यता प्रमाणेना खगोल अने भूगोलनुं वर्णन केटलाक सूत्रग्रन्थो सिवाय मुख्य करीने क्षेत्रसमास अने संग्रहणी नामना प्रकरण ग्रंथोमां विस्तृतरीते वर्णवामां आवेलुं छे. ए ग्रंथो वधारे विस्तृत होवाथी संक्षेपमां तेनुं ज्ञान कराववामाटे आ परिशिष्टनी रचना सागरानंदसूरिए करी छे, एम भाषांतरकार जणावे छे. परिशिष्टकार आचार्य, आ विषयक जैन साहित्यना शब्द-शरीरना समर्थ ज्ञाता छे एमां संशय नथी. ए विषयमां तेमना जेटलुं सूक्ष्म ज्ञान भाग्येज बीजा कोई मुनि धरावता हशे. परंतु तेमनी आ प्रस्तुत कृति अमने तो अनुपयुक्त अने असंबद्ध जेवी लागे छे. कारण के एक तो आ परिशिष्टमां आपेलां सूत्रोनी रचनामां कोई पण क्रम गोठववामां आव्यो नथी, अने बीजुं सूत्रोनी संकलना पण क्लिष्टार्थ भरेली छे. जो आवा प्रकारना परिशिष्टनी तेमने खास आवश्यकता ज जणाई हती तो जाते नवीन सूत्रकार थवानी आकांक्षा करतां जूना ग्रन्थोमांथी तेवां सूत्रो चूंटी काढी संग्रहकार थवानी इच्छा वधारे प्रशंसनीय गणाई होत. तत्त्वार्थ सूत्रकारनी ज कृतिरूपे मनाता जंबूद्वीपसमास नामना ग्रंथमांथी आ परिशिष्ट पूर्णरीते संग्रही शकाय तेम छे. तेमज दिगम्बर संप्रदायना सुप्रसिद्ध ग्रंथरत्न तत्त्वार्थराजवार्तिकमां आ जातनां एकथी एक उत्तम अने अत्युपयोगी वार्तिको भरेलां छे, तेमांथी पण जो आ विषयनां वार्तिको उद्धृत करवां होय तो घणी सारी रीते करी शकाय तेम छे. प्रस्तुत परिशिष्टमांए पण केटलांक सूत्रो तो दिगम्बरीय सूत्र पाठमांथीज—शब्दो उलट पालट करीने जेमनां तेम—लीधेलां अमारा जोवामां आवे छे. तेथी तेम न करतां तेना तेज शब्दोमां जो ते सूत्रो राख्यां होत तो, आमां जे क्लिष्टार्थता नजरे पडे छे ते न पडत.

मुनि मानसागरजीनुं करेलुं भाषान्तर बहुज साधारण प्रतिनुं छे अने केटलेक टेकाणे तो उलटो अर्थ-विपर्यास करावे तेवो छे. उदाहरण तरीके

एक दाखलो आपीशुं. पांचमा पानामां नीचे प्रमाणे सूत्र छे.—

' उद्धृताश्चक्रिहरियुगलार्हज्जिनयतिदेश-

सम्यक्त्ववन्तः । '

आ सूत्रनी रचनामां जे खामी छे तेनो तो अमे अहिं निर्देश ज करवा इच्छता नथी. भाषान्तरना विषयमां ज अमारे थोडुंक कहेवुं छे. आ सूत्रनो शब्दार्थ अने विशेषार्थ नीचे प्रमाणे करवामां आव्यो छे.

' शब्दार्थ—अनुक्रमे पहेली नारकी आदीथी नीकळेला चक्रवर्ती, बलदेव अने वासुदेव. अरिहंत केवली, सर्वविरति, देशविरति अने सम्यक्त्व वाळा थाय छे. '

' वि०—पहेली नारकीथी नीकळेलो चक्रवर्ती थाय. बीजी नारकीथी नीकळेलो जीव वासुदेव अथवा बलदेव थाय. त्रीजी वालुका प्रभाथी नीकळेलो जीव तीर्थंकर थाय.' इत्यादि.

आ शब्दार्थ अने विशेषार्थनी वाक्यरचनाथी तो वचकने एवोज अर्थावबोध थाय के पहेली नरकमांथी निकळेलो प्राणी चक्रवर्तीज थाय, बीजीमांथी निकळेलो वासुदेव अगर बलदेवज थाय. त्रीजीमांथी निकळेलो तीर्थंकर ज थाय. इत्यादि। परंतु यथार्थमां परिशिष्टकारनो सूत्रनो कहेवानो भावार्थ एम नहिं हशे. कारण के तेम होय तो ते तद्दन असंगत गणाय. आ विषयमां शास्त्रकारोनो अभिप्राय तो एवो छे के नरकमांथी निकळेलो जीव जो चक्रवर्ती पद प्राप्त करवाने योग्य होय तो ते फक्त पहेली नरकमांथी ज निकळेलो होय छे. वासुदेव अगर बलदेव पदनी प्राप्ति पहेली अने बीजी एम बन्ने नरकमांथी निकळेला जीवोने होई शके छे अने तेवीज रीते तीर्थंकर पदनी प्राप्ति पहेली, बीजी अने त्रीजी नरकसुधीमांथी निकळेला प्राणियोने थई शके छे. इत्यादि. आवी रीते बीजां पण घणां स्थळे अर्थ-करणमां भूलो थयेली नजरे पडे छे. आशा छे के बीजी आवृत्तिमां आ संबंधमां उचित लक्ष्य आपवामां आवशे. बाकी एकंदर रीते परिशिष्टमां ए विषयनो सारो संग्रह थयो छे अने साथे जे आकृतियो विगेरे आपी छे तेथी ए विषयना अभ्यासीने सहेलाईथी अर्थज्ञान थई शके तेम छे.

अहिं प्रसंगथी एक जरा कडवी पण हितकर वात सूचववानुं मन थई आवे छे के— सागरानंदसूरि जेवा विद्वान् अने प्रतिभाशाली मुनिए आजना जमानामां आवा अनावश्यक अने अनुपयोगी कामोमां काळक्षेप करवो उचित नथी. समय घणो बदलाई गयो छे. सर्वसाधारणनी अभिरुचि कोई जुदा ज विषयोना अभ्यास तरफ वधती जाय छे. विद्वानोना अध्ययन-मननतुं साहित्य क्षेत्र भिन्नज प्रकारनुं थई रह्युं छे. नवीन वातावरणमां उछरती अने केळवणी पामती प्रजानो आवी जातना लूखा, नीरस, अनुपयुक्त, जूना विषयो तरफ अभिरुचि वधे के श्रद्धा वसे तेम बिल्कुल नथी. वर्तमान समयमां प्रत्यक्ष प्रमाणथी निश्चित थएला खगोल अने भूगोलना सिद्धान्तो आगळ जगत्‌ना दरेक धर्मना ए विषयना जूना विचारो निस्तेज अने अर्थहीन साबित थया छे, अने प्रत्येक धर्मना बहुश्रुत विद्वान् ते विचारोने अधिकांश कल्पना-प्रसूत माने छे.

तत्त्वार्थसूत्र में जाते कॉलेजियनो तेमज ग्रेज्युएट-डबलग्रेज्युएट जेवा उच्च शिक्षण पामेला अनेक जैन—अजैन अभ्यासियोने तुलनात्मक पद्धतिए पण शीखव्युं अगर वंचाव्युं छे तेमां आवतो खगोल-भूगोल विषयक भाग केवळ विनोदनी खातर समजावतां पण मने घणो संकोच थतो हतो अने शीखनार तेवा एके एक सूत्र उपर सादर उपहास व्यक्त करता हता. जो के हुं केटलेक अंशे तेनुं समाधान अमुक पद्धतिए करी शकतो. परंतु यथार्थ समर्थन तो माराथी कोई पण प्रमाणथी न ज थई शकतुं. मने घणाक विद्वानोए तो आवी खास सूचनाओ करी छे के तत्त्वार्थसूत्रमांथी आ विषयने लगतो विभाग काढी नांखी तेने संक्षिप्त बनाववानी अवश्यकता छे के जेथी नवीन शिक्षितोने आ विषयनी गंध सुधां न आवे अने तेथी तेमना मनमां, आपणा पूर्वाचार्योनी बीजी अननुपमेय कृतियोनी प्रामाणिकताना संबंधमां कोई पण प्रकारना कुतर्को किंवा सन्देहो उत्पन्न

थवा न पामे. त्यारे बीजी बाजू सागरानंदसूरि जेवा एक सारा विद्वान् आ विषयना परिशिष्टो रचवामां महत्त्व समजी रह्या छे। जैन विद्वानोनुं कर्तव्य छे के तेओ जगत्मां प्रसार पामती भिन्न भिन्न ज्ञान-शाखाओनुं विशाल अध्ययन करी, तत्त्वज्ञान, ईतिहास अने साहित्य जेवा गंभीर विषयो उपर वधारे प्रकाश पाडे अने तेम करी जैन धर्मनुं गौरव प्रकाशित करे. आ विषयमां अमारे जैन विद्वानोने घणुंक कहेवानुं छे जे यथावसरे कहेवामां आवशे. आजे तो फक्त सूचनारूपे आ बे शब्दो लख्या छे आशा छे के नम्र अने प्रेमभावे लखाएलां आ वाक्योनो सरल ज अर्थ करवामां आवशे अने भविष्यमां सागरानंद सूरिनी कोई आदर्श कृतिनी स्मरणीय समालोचना करवानो उत्तम अवसर अमने प्राप्त थशे.

मुंबई युनिवर्सिटीनो एम्. ए. क्लासनो अर्धमागधीना कोर्स.

गत अङ्कमां, मुंबई युनिवर्सिटीए पोताना अभ्यासक्रममां आ वर्षथी जे अर्धमागधी (अथवा तो प्राकृत) भाषाने दाखल करी छे तेनो बी. ए. सुधीनो कोर्स आपी देवामां आव्यो छे. स्थळाभावने लीधे एम्. ए. नो कोर्स आपवो रही गयो हतो ते आ नीचे आपवामां आवे छे.

ई. स. १९२१ ना वर्षमां.

1. उत्तराध्ययनसूत्र-संस्कृत टीका साथे.
2. (a) Comparative Philology—
   (1) Relation between Sanskrit and Prakrit and between the Prakrits themselves, as in Bhandarkar's Wilson Philological Lectures.
   (2) General Principles, as in Gune's Introduction to Comparative Philology.
   (b) History of Jain Literature —
   (1) Buhler.-Indian Sect of the Jainas, translated by J. Burgess. Lazac & Co., London.
   (2) Weber. Sacred Literature of Jainas.
   (3) Warren.—Jainism.
3. Jaina Philosophy:—
   Pravachanasara of Kundakunda, With the Baudha, Sankhya and Arhata Darsana, from Sarvadarsanasamgraha (Anandasrama Series)
4. Translation from and into Ardha-Magadhi.

ई. स. १९२२ ना वर्षमां.

1. आवश्यक सूत्र पूर्वार्ध, हरिभद्रसूरिनी टीका साथे, आगमोदय समितिए छपावेलुं.
2. उपर प्रमाणे.
3. Jaina Philosophy:—
   Syadvadamanjari of Mallisena, with Baudha, etc. Darsanas as in 1921.
4. Translation from and into Ardha-Magadhi.

ए सिवाय बी. ए. क्लासना ऐच्छिक विषयमां जे एक पेपर जैन साहित्यनो राखेलो छे तेमां नीचे प्रमाणेनां पुस्तको पाठ्यपुस्तको तरीके नियुक्त करेलां छे.

१९२०.

१. आचारांग सूत्र (मूळ मात्र).
२. हेमचन्द्राचार्यरचित त्रिषष्टिशलाका पुरुष—चरित्र, पर्व १० (महावीर चरित्र) मांना सर्ग १—८.

१९२१-१९२२.

१. प्रवचनसार दीपिका साथे.
२. बीजामां उपर प्रमाणेज.

पंजाब-युनिवर्सिटिमें जैन साहित्यको स्थान।

बंबई और कलकत्ता युनिवर्सिटिमें तो आज कई वर्ष हुए जैन साहित्यको कितनाएक स्थान मिल चुका है। परंतु. पंजाब-युनिवर्सिटिमें अभीतक उसे किञ्चित् भी अवकाश नहीं मिला था। उसमें कारण केवल पंजाबके जैन भाईयों-की अनभिज्ञता और उपेक्षा ही है। पंजाबके जैनियोंमें मामूली शिक्षाका भी बडा भारी अभाव है तो फिर ऊंची कक्षाकी शिक्षाके बारेमें तो कहना ही क्या। यही सबब है कि आजतक पंजाबमें, अन्य धर्मीय सेंकडों ही ग्रेज्युएट संस्कृतके पारंगत विद्वान् हो गये हैं परंतु जैनियोमें वैसा एक भी मनुष्य नहीं था। हमें यह जान कर प्रसन्नता हो रही है कि पंजाबके जैन समाजकी इस न्यूनताकी पूर्ति करनेवाला एक पुरुष तैयार हो गया है और वह है लुधियाना निवासी श्रीयुत लाला बनारसी दास जैन। बनारसी दासजीने एम्. ए. तककी ऊंची शिक्षा प्राप्त की है और संस्कृत-प्राकृतका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है। आपका एक इंग्रजी लेख जै. सा. सं. के प्रथम अंकमे प्रकाशित हो चुका है। आप लाहोरके ओरिएन्टल कालेजमें प्रोफेसर हैं। आपने हालहीमें बहुत कुछ परिश्रम करके पंजाब युनिवर्सिटिकी एम्. ए. की परीक्षामें जैन साहित्यको उचित स्थान दिलाया है और इसके शुभ समाचार जैन साहित्य संशोधकमें प्रकट करनेके लिये भेजे हैं जो आपहीके शब्दोंमें नीचे प्रकट किये जाते हैं:—

"बडे हर्ष की बात है कि पंजाब युनिवर्सिटिने अपनी (संस्कृत की) सब से उच्च परीक्षा अर्थात् एम० ए० (M. A.) में जैन फिलॉसफी तथा साहित्य को भी स्थान दे दिया है। इस वर्ष निम्न लिखित ग्रन्थ नियत हुए हैं:—

१ स्याद्वाद मञ्जरी (संपूर्ण)।
२ सूत्रकृतांग (प्रथम के ६ अध्ययन)।
३ उत्तराध्ययन (प्रथम के दस अध्ययन)।
४ जैन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास (अंग्रेजी)।

इसके लिये सारी जैन समाजको श्रीयुत ए० सी० वूलनर (Captain A. C. Woolner)—लाहोर के ओरिएन्टल कालेज के प्रिंसीपाल—को धन्यवाद देना चाहिये जो कि इस देशमें जैन साहित्य के प्रचार का बडा प्रयत्न कर रहे हैं। आप स्वयं भी प्राकृत के अद्वितीय विद्वान हैं, और जैन साहित्यसे हार्दिक प्रेम रखते हैं।

चूं कि पंजाबमें संस्कृत पढनेवाले जैन विद्यार्थी बिरले हैं, इस लिये अन्य धर्मी विद्यार्थीयों को जैन साहित्य की ओर लाने के लिये एक वजीफा (Scholarship) की आवश्यकता है जिस को स्थायी रूप देने के लिये रु० १०००० चाहिए। जो महाशय इस खाते में दान देना चाहें वे इसी पत्र द्वारा सूचना देवें ताकि रुपया शीघ्र यूनिवर्सिटिमें भेजने का प्रबन्ध किया जावे।"

स्कॉलर्शिपके लिये जो सूचना बनारसी दासजीने इस निवेदनमें की है उसकी तरफ हम प्रत्येक विचारशील और उदाराचित्त भाईका लक्ष्य खींचना चाहते हैं। खास कर पंजाबी जैन भाईयोंको इस विषयमें पूरा खयाल करना चाहिए और अपना कर्तव्य बजाना चाहिए।

अशुद्ध–संशोधन.

गया अंकमां प्रकट थयला श्रीयुत हीरालाल अमृतलाल शाहना "हरिभद्रसूरिनो समयनिर्णय" शीर्षक लेखमां भ्रमथी एक–बे ठेकाणे अशुद्ध पाठ छपाई गयो छे, तो ते नीचे प्रमाणे सुधारी वांचवानी भलामण करवामां आवे छे.

पृष्ठ ४१, कालम २, पंक्ति १३–१४ मां नीचे प्रमाणे पाठ छेः—

'आ ५९८ ने वर्तमान गणतरीए गणाता गुप्त संवत् तरीके....'

तेना बदले नीचे प्रमाणे वांचवुं—

'आ ५९८ ने मारी गणतरी मुजबना मूळ गुप्त संवत् तरीके....'

तेवीज रीते, तेनी नीचे पंक्ति २४ मां नीचेप्रमाणे पाठ छे—

गुप्त संवत् ५९८....सिद्धर्षिए श्रीचन्द्रकेवली चरित्र रच्युं.'

तेने नीचे प्रमाणे सुधारी वांचवुं—

'गुप्त-संवत् ५९८....सिद्धर्षिए (श्रीचंद्रकेवली चरित्रमां जणाव्या मुजब) ग्रन्थ रचना करी.'

बृहट्टिप्पनिकानामप्राचीनजैनग्रंथसूची



एकादशाङ्गानि ।

१. श्रीआचारांगसूत्रं श्रीसुधर्मस्वामिकृतम्—२५२५ ।
  (१) निर्युक्तिः श्रीभद्रबाहुकृता ग्रन्थाग्रम् ४५०, गाथा ३६२ ।
  (२) चूर्णिः ८३०० ।
  (३) वृत्तिः शीलाचार्यीया ९३३ वार्षिका, १२००० ।
२. श्रीसूत्रकृतांगसूत्रम् – २१०० ।
  (१) निर्युक्तिः २६५, गाथा २०८ ।
  (२) चूर्णिः १०००० ।
  (३) वृत्तिः शीलाचार्येण कृता, १२८५० ।
३. श्रीस्थानांगसूत्रम्—३६०० ।
  (१) वृत्तिः श्रीअभयदेवैः ११२० वर्षे कृता,१४२५० ।
४. श्रीसमवायांगसूत्रम्— १६६७ ।
  (१) वृत्तिः ११२० वर्षे अभयदेवीया, ३५७४ ।
५. भगवतीसूत्रम्—एकचत्वारिंशत्–शतकमयम् १५७५२ ।
  (१) चूर्णिः ३११४ ।
  (२) अवचूर्णिः पत्तनचित्कोशेऽस्ति ।
  (३) वृत्तिः ११२८ वर्षे अभयदेवसूरिकृता १८६१६ ।
६. ज्ञातधर्मकथासूत्रम्—५४०० ।
  (१) वृत्तिः ११२० वर्षे कृता ३८०० ।
७. श्रीउपासकदशासूत्रम्–८१२ ।
८. श्रीअन्तकृद्दशासूत्रम्—८९९ ।
९. श्रीअनुत्तरौपपातिकदशासूत्रम्—१९२ ।
  (१) उपासक–अन्तकृत्–अनुत्तरौपपातिकवृत्तिः– १३०० ।
१०. श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रम्–१२५६ ।
  (१) वृत्तिः ४६०० ।
११. श्रीविपाकसूत्रम्–१२१६ ।
  (१) वृत्तिः ९०० ।
  एकादशांगीसूत्रसंख्या ३५३३९ ।
  वृत्तिसंख्या ७४७९० ।

द्वादशोपाङ्गानि ।

१२. उववाइयसूत्रम्—११६७ ।
  (१) वृत्तिः ३१२५ अभयदेवीया ।
१३. राजप्रश्नीयसूत्रम्—२०७९, २१२० ।
  (१) वृत्तिर्मलयगिरीया ३७०० ।
१४. जीवाभिगमसूत्रम्–४७०० ।
  (१) चूर्णिः—१५०० ।
  (२) वृत्तिर्हारिभद्री प्रदेशवृत्तिनाम्नी ११९२ ।
  (३) वृत्तिर्मलयगिरीया १४००० ।
१५. प्रज्ञापनासूत्रम्—षट्त्रिंशत्पदमयम् - ७७८७ ।
  (१) लघुवृत्तिर्हारिभद्री—३७२८ ।
  (२) वृत्तिर्मलयगिरीया—१६०००, १४५०० (?) ।
  (३) प्रज्ञापनातृतीयपदसंग्रहणी श्रीअभयदेवसूरिकृता गाथा १३३ । तदवचूरिश्च–४३० ।
१६. श्रीचन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रम्—२०५४ ।
  (१) वृत्तिर्मलगिरीया ९५०० ।
१७. श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रम्–२२९६ ।
  (१) वृत्तिर्मलयगिरीया ९००० ।
१८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रम्—४४५४ ।
  (१) चूर्णिः १८७९ ।
  (२) वृत्तिर्मलयगिरीया ९५०० ।
१९–२३. निरयावलिका—कल्पावतंसिका–पुष्पिता–पुष्पचुलिका–दशा–(५) सूत्राणि–११०९ ।

(१) निरयावलिकादीनां पंचानां वृत्तिः, १२२८ वर्षे ।

आवश्यक-मूल-च्छेद-सूत्र-वृत्त्यादीनि ।

२४. मूलावश्यकसूत्रसामायिकादीनि, षड् अध्ययनानि—१०० प्रमाणानि ।

(१) साधुप्रतिक्रमणसूत्रं तु १३० ।
(२) ललितविस्तरा चैत्यवन्दनावृत्तिर्हारिभद्री १२७० ।
(३) ललितविस्तराटिप्पनकं देवसूरिगुरुमुनिचन्द्रीयम् १६०० ।
(४) चैत्य-साधुवन्दन-श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः ९५६ वर्षे पार्श्वेण कृता २००० प्रमाणा ।
(५) ईर्यापथिकी—चैत्यवन्दनासूत्र—वन्दनकानि ।
(६) ईर्या० १५० चैत्य० ८४० वन्द० ७२७ चूर्णयः ११७४ वर्षे यशोदेवकृताः ।
(७) प्रत्याख्यानस्वरूपं यशोदेवकृतम् गाथा—३६० ।
(८) प्रत्याख्यानवृत्तिः—५५० ।
(९) चैत्यवन्दनादिसूत्र-साधु-श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रपदपर्यायमंजर्यः—अकलंकदेवसूरीयाः ।
(१०) श्राद्धसामायिक-प्रतिक्रमणसूत्रव्याख्याप्रकरणम्—११८३ वर्षे जैनदेवम् गाथा २९३ श्लोक ३६५ ।
(११) चैत्यवन्दनामहाभाष्यं श्रीशान्तीयम्, सूत्रव्याख्याचरणादिवाच्यम्—'महामहपणमंत' इत्यादिपदम् गाथा ९२२ ।
(१२) चैत्यवन्दनाभाष्यवृत्तिः ।
(१३) षडावश्यकं चैत्यवन्दनादिसर्वसूत्रव्याख्यारूपम् तपाश्रीदेवेन्द्रसूरिकृतम् २७२० ।
(१४) चैत्यवन्दनादिवृत्तिः कुलप्रदीपः २४५८ ।
(१५) चैत्यवन्दना-वन्दनकं-प्रत्याख्यानवृत्तयः श्रीतिलकीयाः ५५० ।
(१६) श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रलघुवृत्तिः श्रीतिलकीया ३०० ।
(१७) साधुप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः श्रीतिलकीया २९६ ।
(१८) चैत्यवन्दनाटीका हरिभद्रीया ४८२ ।
(१९) साधुप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः आवश्यकबृहद्वृत्तिगता ।
(२०) साधुप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः १३६४ वर्षे जैनप्रभी ५४८ ।
(२१) श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णिः ११८३ वर्षे विजयसिंहीया ४५९० ।
(२२) श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः १२२२ वर्षे श्रीचंद्रीया १९५० ।
(२३) चैत्यवन्दनाविचारो ग.धाइन्धेन सूत्रव्याख्यारूपः ।
(२४) चैत्यवन्दनकप्रत्याख्यानभाष्याणि त्रीणि तपाश्रीदेवेन्द्रसूरिकृतानि, गाथा ६३, ४१, ४८ ।
(२५) चैत्यवन्दनाभाष्यवृत्तिः संघाचारनाम्नी तपाश्रीधर्मघोषसूरिकृता ८५०० ।
(२६) बालावबोधा चैत्यवन्दनावृत्तिः खरतरतरुणप्रभसूरिभिः १३३१ वर्षे कृता ७००० ।
(२७) साधुप्रतिक्रमणादिषड्विधावश्यकसूत्रवृत्तिः नेमिसाधुना ११२३ वर्षे कृता १५५० ।
(२८) पंचपरमेष्ठिविवरणं प्राकृतगाथामयं बह्वन्तरकथम् ११६८ वर्षे मतिसागरम् गाथा २५० ।
(२९) आवश्यकनिर्युक्तिः ३१००, २५५० ।
(३०) आवश्यकचूर्णिः १३६००, १८४७४ ।
(३१) आवश्यकबृहद्वृत्तिर्हारिभद्री २२००० ।
(३२) तट्टिप्पनकं मलधारि-हेमचन्द्रीयम् ४६४० ।
(३३) आवश्यकवृत्तिर्मलयगिरीया १८००० ।
(३४) लघुवृत्तिः श्रीतिलकीया १२९६ वर्षे कृता १२३२५ ।
(३५) आवश्यकावचूरिः प० २२६ ।
(३६) विशेषावश्यकसूत्रं श्रीजिनभद्रगणिकृतम् ४००० ।
(३७) बृहद्वृत्तिर्मलधारि-हेमचन्द्रीया २८००० ।
(३८) वृत्तिर्मलयगिरीया ९००० नास्ति ।
(३९) जीर्णा वृत्तिः १४०००, पत्तनं विना नास्ति ।

२५. ओघनिर्युक्तिसूत्रम् ११६४ ।

(१) चूर्णिर्नास्ति ।
(२) भाष्यम् ३००० नास्ति ।
(३) वृत्तिर्द्रोणीया ६८२५ ।
(४) वृत्तिर्मलयगिरीया सूत्रमिश्रा ८८५० नास्ति ।

२६. दशवैकालिकसूत्रम् ७०० ।

(१) निर्युक्तिः गाथा ४४५, ४५२ ।
(२) चूर्णिः ७०००, ७९७० ।
(३) बृहद्वृत्तिर्हारिभद्री ७५५० ।
(४) वृत्तिः श्रीतिलकीया नेमिचरित्रगर्भा ७००० ।
(५) लघु-बृहद्वृत्त्युद्धाररूपा सुमतिसूरीया २६०० ।

२७. पाक्षिकसूत्रम् ३०० ।

(१) वृत्तिः यशोदेवकृता ११८० वर्षे २७०० ।

२८. पिण्डनिर्युक्तिसूत्रम् ७०८ ।

(१) वृत्तिर्नास्ति ४००० ।
(२) लघुवृत्तिराद्या, तत्राद्यानि १३५० हारिभद्राणि,

शेषाणि तु १५५० देवाचार्यशिष्यवीराचार्यकृतानि ३३०० ।

(३) वृत्तिर्मलयगिरीया सूत्रमिश्रा ७५०० ।

२९. उत्तराध्ययनं षट्त्रिंशदध्ययनमयं सूत्रम् २००० ।

(१) निर्युक्तिः ७००, गाथा ६०७ ।

(२) चूर्णिर्गोपालिकमहत्तरशिष्यकृता ५९००, ५८५० ।

(३) लघुवृत्तिः ११२९ वर्षे देवेन्द्रगणापरनामश्रीनेमिचन्द्रसूरीया ससूत्रा १४००० ।

(४) शान्त्याचार्यीया बृहद्वृत्तिः सूत्रमिश्रा १८००० ।

३०. निशीथसूत्रं विंशोद्देशमयम् ८१२, ९५० ।

(१) बृहद्भाष्यम् १२००० ।

(२) भाष्यम् ७००० ।

(३) निर्युक्ति-चूर्णि-सूत्र-भाष्याणि २८००० ।

(४) निशीथचूर्णिविंशोद्देशव्याख्या ११७३ वर्षे पार्श्वदेवगणिकृता ११०० नास्ति ।

(५) निशीथविंशतमोद्देशवृत्तिः ११७३ वर्षे श्रीचन्द्रीया ११०० ।

३१. कल्पविशेषचूर्णिः ३१००० ।

३२. कल्पचूर्णिः १२७०० ।

३३. कल्पवृत्तिः सूत्रभाष्यगर्भा. आद्यानि ४६०० मलयगिरीयाणि, शेषा तु १३३२ वर्षे तपाक्षेमकीर्तीया ४२००० ।

३४. व्यवहारसूत्रं दशोद्देशकमयम् ३७३ ।

(१) भाष्यम् ६४०० ।

(२) चूर्णिः १२००० ।

(३) व्यवहारवृत्तिः सूत्र-भाष्यगर्भा मलयगिरीया ३३६२५, ३४६२५ ।

३५. कल्पसूत्रं षड्-उद्देशमयम् ४७३ ।

(१) बृहद्भाष्यम् १२००० ।

(२) भाष्यम् ७६०० ।

(३) विशेषचूर्णिः ११०० ।

३६. दशाश्रुतस्कन्धसूत्रं दशाध्ययनमयम् २१०६, २२२५ ।

(१) निर्युक्तिः १५४, २२० ।

(२) चूर्णिः ४३२१ ।

३७. पर्युषणाकल्पसूत्रम् १२१६ ।

(१) निर्युक्तिः गाथा ६८ ।

(२) चूर्णिः ७०० ।

(३) कल्पनिरुक्तटिप्पनकं विनयचन्द्रसूरिकृतम् १५८ ।

(४) कल्पटिप्पनकं पृथ्वीचन्द्रीयम् ६४० ।

(५) संदेहविषौषधिवृत्तिः १३६४ वर्षे जैनप्रभी ।

३८. महानिशीथसूत्रं लघु-मध्यम-बृहद्वाचनम् ३५००, ४२००, ४५४८ ।

३९. पंचकल्पसूत्रं ११३३ ।

(१) निर्युक्तिर्नास्ति ।

(२) भाष्यं संघदासगणिकृतम् गाथा २५७४, ३०३५ ।

(३) चूर्णिः ३०००, ३१३६ ।

४०. जीतकल्पसूत्रं जिनभद्रीयम् गाथा १०५ ।

(१) भाष्यम् ३१२५ नास्ति ।

(२) चूर्णिः सिद्धसेनीया १००० ।

(३) चूर्णिटिप्पनकं श्रुत० गु० ३ विना न ।

(४) वृत्तिः १२२८ वर्षे श्रीतिलकीया १८०० ।

(५) जीतकल्पविवरणं संक्षिप्तगमार्थकारूपम् 'सिरिवीरजिणं नमिउं' इति ५४३ ।

(६) श्राद्धजीतकल्पस्य सूत्र-वृत्ती श्रीतिलकीये गाथा ३० वृत्ति० ११५ ।

(७) यतिजीतकल्पस्य श्रीसोमप्रभसूरीयस्य वृत्तिः साधुरत्नसूरीया ५७०० ।

(८) श्राद्धजीतकल्पस्य तपाश्रीधर्मघोषसूरीयस्य वृत्तिः श्रीसोमतिलकसूरीया २६०० न ।

४१. नन्दीसूत्रम् ७०० ।

(१) चूर्णिः ७३३ वर्षे कृता, स्तम्भतीर्थं विना नास्ति ।

(२) लघुवृत्तिर्नास्ति २३०० प्रमाणा ।

(३) नन्दीबृहद्वृत्तिर्मलयगिरीया ७७३२ ।

(४) टिप्पनकं श्रीचन्द्रीयमाद्यावृत्तिसत्कम् ३३०० ।

४२. अनुयोगद्वारसूत्रम् गाथा १६०४ ।

(१) चूर्णिर्जिनदासमहत्तरीया २२६५ ।

(२) लघुवृत्तिर्नास्ति ।

(३) बृहद्वृत्तिर्मलधारिहेमचन्द्रीया ५८०० ।

४३. आतुरप्रत्याख्यानम् गाथा ८४–१३४ ।

(१) आतुरप्रत्याख्यानवृत्तिरान्चलिकभुवनतुंगसूरिकृता ६३ ध्यानकनामगर्भा ४२० ।

४४. महाप्रत्याख्यानसूत्रम् १४३ ।

४५. देवेन्द्रस्तवः गाथा ३०३ ।

४६. तंदुलविचारिकम् ४०० ।

४७. संस्तारकः गाथा १२१ ।

४८. भक्तपरिज्ञा १७१ ।

४९. आराधनापताका, १०७८ वर्षे वीरभद्राचार्यकृता ९९३ ।

५०. गणिविद्या गाथा ८५ ।

५१. अंगविद्या षष्टिअध्यायात्मिका ९००० ।
५२. चउसरणम् गाथा ६४ ।
(१) चउसरणवृत्तिः आञ्चलिकभुवनतुंगसूरीया ८०० ।
५३. द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः गाथा २२३ श्लोकाः २८० ।
५४. ज्योतिष्करण्डवृत्तिः सूत्रं मलयगिरीया सू० १८५० वृ० ५००० ।
५५. मरणसमाधिः गाथा ६५६ ।
५६. तीर्थोद्गारः गाथा १२३३ ।
५७. सिद्धप्राभृतसूत्र-वृत्तिः, सूत्रम् १२०, वृत्तिः ८५० ।
५८. निरयावलिः २०० नास्ति ।
५९. चन्द्रवेध्यकम् १७४ ।
६०. अजीवकल्पः गाथा ४४ ।
६१. गच्छाचारः गाथा १३८ ।
६२. वीरस्तवः गाथा ४३ ।

आगमेतर-चरणकरणानुयोगादिग्रन्थाः ।

६३. वसुदेवहिंडिप्रथमखण्डम् संघदासवाचककृतम् ११००० ।
६४. वसुदेवहिंडिद्वितीयखण्डं धर्मदासाचार्यकृतं १६६०० ।
६५. वसुदेवमध्यमखण्डे सर्वग्रहणीकं ९००० ।
६६. ऋषिभाषितानि ४५।८५० ।
६७. खण्ड-पुद्गल-निगोद-बन्ध-षट्त्रिंशिकावृत्तयो रत्नसिंहसूरि-विरचिताः ।
६८. तत्त्वार्थसूत्रं औमास्वातं २२५ ।
(१) भाष्यं वृत्तिरूपं ।
(२) टीका भास्वामिसिद्धसेनीया म यसव्याख्या-त्मा १८२८२, २२२८२ ।
(३) तत्त्वार्थलघुवृत्तिः दिगम्बरी देव० विना नास्ति ।
६९ श्रावकप्रज्ञप्तिसूत्रं औमास्वातं ४०० ।
(१) वृत्तिर्हारिभद्री २३३० ।
७०. विशेषणवतीसूत्रं जिनभद्रक्षमाश्रमणकृतं गाथा ४३८ ।
(१) विशेषण-वृत्तर्नास्ति ।
७१ प्रवचनसारोद्धारसूत्रं २७६ द्वारमयं नेमिचन्द्रीयं श्लोकाः २००० गाथा १६०६ ।
(१) वृत्तिः २००० नितसूत्रमर्मा, २७६ द्वार, १२४२ वर्षे सिद्धसेनसूरिकृता १८५००, १६५०० ।
(२) विषमपदटीका मुद्र. विना न ।
(३) धर्मसंग्रहणीवृत्तिर्मलयगिरीया, मूलसंख्या ११०००, १०५०० ग्रन्थाग्रे ।
७२. समयसारटीका अमृतचन्द्रसूरीया मुद्र [पत्तन] देव [पत्तनं] वि [ना] न ।
७३. पञ्चास्तिकायसंग्रहाऽभिधानकस्य वृत्तिः, अमृतचन्द्रसूरीया देव [पत्तनं] विना न ।
७४. प्रवचनसारस्य वृत्तिः, अमृतचन्द्रसूरीया देव० विना न ।
७५. पाक्षिकसूत्रं प्राकृतमूलम्, सूत्राणि २१० ।
(१) वृत्तिश्च हारिभद्री ८८० ।
७६. पञ्चवस्तुकसूत्रं हारिभद्रम्, १६९४ ।
(१) पञ्चवस्तुटीका हारिभद्री, ५०५० ।
७७. पञ्चाशकानि १९, हारिभद्राणि, ११८४ ।
(१) पञ्चाशकवृत्तिः १९, नवाङ्गअभयदेवैः ११२४ वर्षे कृता, ७४८० ।
(२) आवश्यकचूर्णिः, ११७२ वर्षे यशोदेवीया प्रभावाच्या, ३३०० ।
७८. षोडशकसूत्रं हारिभद्रं, ३३० ।
(१) षोडशकवृत्तिः, १५०० ।
७९. ३२ अष्टकवृत्तिः १०८० वर्षे जैनेन्द्री, ३३७४ ।
८०. धर्मसूत्राऽष्टक ३२ सूत्रे हारिभद्र २७३, २५६ ।
८१ धर्मबिन्दुवृत्तिर्मौनिचन्द्री, ३००० ।
८२. योगबिन्दुसूत्रं हारिभद्रं, ५२० ।
(१) योगबिन्दुवृत्तिः ३६२० ।
८३. प्रशमरतिवृत्तिः ११८५ वर्षे हरिभद्रीया, १६०० ।
८४. श्रावकधर्मप्रकरणादि-विचार-गाथादिवृत्तिर्विनयदेवसूरिकृता, ५५७ ।
८५. दर्शनसत्तरी हारिभद्री, गाथा, १२० ।
८६. जीवसमासवृत्तिर्मलधारिहेमचन्द्रीया, ६६२७ ।
८७. नवतत्त्वगाथानां देवगुप्तदानां भाष्यस्य नवाङ्गाभयदेवीयस्य वृत्तिः ११७४ वर्षे यशोदेवी, २४०० ।
८८. "एगविहं सम्मत्तं" इत्यादि सम्यक्त्व गाथा-वृत्तिः, १०५ ।
८९. विचारसारप्रकरणं प्रद्युम्नसूरिकृतं सोपयोगि, बहुसंग्रहं गाथा, ८९७ ।
९०. प्रवचन संदोहः .... ।
(१) प्रवचन संदोहवृत्तिः .... ।
९१. सिद्धपञ्चाशिकासूत्र-वृत्ती तपाश्रीदेवेन्द्रसूरीये–७१० ।
९२. योनिप्राभृतं वीरात् ६०० धारसेनम् ।
९३. पिण्डविशुद्धिसूत्रं जैनवल्लभम्—गाथा–१०३ ।
(१) वृत्तिः ११७६ वर्षे यशोदेवी–२८०० ।
(२) दीपिका लघुउदयतिलका–५५० ।
(३) *अवचूर्णिः ११६० वर्षे श्रीचन्द्रसूरीया ४४०० ।

---

*प्रत्यन्तरे 'अनुवृत्तिः ११७६ वर्षे यशोदेवी–२८०० । वृत्तिः ११६० वर्षे श्रीचन्द्रसूरीया ४४०० ' ।

९४. कर्मप्रकृतिसूत्रम्-गाथ -४७५ ।
(१) टीका मलयगिरीया ससूत्रा-८००० ।
(२) वेदनादि ८ करणवाच्या चूर्णि:-७००० ।
(३) कर्मप्रकृतिचूर्णिटिप्पनकं मुनिचन्द्रीयम् १९२० ।

९५. पञ्चसंग्रहस्य शतक-सप्ततिका-कषायप्राभृत-सत्कर्म-कर्मप्रकृति-संग्रहात्मकस्य वृत्तिः सूत्रकारचन्द्रर्षिकृता, पत्तनं विना न
(१) पञ्चसंग्रहवृत्तिर्मलयगिरीया ...... ।

९६ दीपकसंग्रहवृत्तिर्मलयदीपकम् (?), प्राक् तुल्य दैगम्बरम्, भृ० दे० विना न ।

९७. बृहत्कर्मविपाकवृत्तिः परमानन्दकृता-९६० ।

९८. बृहत्कर्मविपाकटिप्पनकम्—उदयप्रभसूरीयम् ४२० ।

९९. बृहत्कर्मस्तववृत्तिः श्रीगोविन्दाचार्यकृता १००९-१०९० ।

१००. बृहत्कर्मस्तवटिप्पनं वृत्तिरूपम् उदयप्रभसूरीयम् २९२ ।

१०१ बृहद्बन्धस्वामित्ववृत्तिः ११७२ वर्षे हरिभद्रीया-५६० ।

१०२. वस्तुविचारसाराख्यबृहत्षडशीतिकस्य जिनवल्लभस्य वृत्तिः प्राकृता रामदेवी ६०५ ।

१०३. आगमिकवस्तुविचारसाराऽपरनामकस्य जिनवल्लभीयस्य बृहत्षडशीतिकस्य वृत्तिर्मलयगिरी २१४० ।

१०४. बृहच्छतकवृत्तिर्मलधारि-हेमचन्द्रीया ३७४० ।

१०५. जिनवल्लभीयस्य सार्धशतकस्य सूक्ष्मार्थविचारसारापराख्यस्य वृत्तिः ११७२ वर्षे हरिभद्रीया ८५० ।

१०६ सूक्ष्मार्थविचारसारापरनामक-जिनवल्लभीयसार्धशतकवृत्तिः ११७१ वर्षे धनेश्वरीया ३७०० ।

१०७. शतकचूर्णिः २३८० ।

१०८. शतकटिप्पनकम्—उदयप्रभसूरीयम् ९७४ ।

१०९. आगमिकवस्तुविचारसारस्य 'बृहत्षडशीतिक' इति प्रसिद्ध नाम्नो जिनवल्लभस्य वृत्तिः-यशोदेवीभद्रसूरीया (?)—१६३० ।

११०. सूक्ष्मार्थविचारसाराऽपराख्यसार्धशतकवृत्तेः टिप्पनकम् १४०० ।

१११. सूक्ष्मार्थविचारसाराख्यसार्धशतकवृत्तिः प्राकृता ।

११२. आगमिकवस्तुविचारसाराख्यषडशीतिकवृत्तिः ११७२ वर्षे हरिभद्रसूरीया ८५० ।

११३. नव्यकर्मविपाकवृत्ति—नव्यकर्मस्तववृत्ति – नव्यबन्धस्वामित्वाऽवचूर्णि-नव्यषडशीतिकवृत्ति-नव्यशत-कवृत्तयः ५ सूत्रकारतपाश्रीदेवेन्द्रसूरीयाः, १८८२, ८३०, ३८५, २८००, ४३८० ।

११४. सप्ततिचूर्णिर्नास्ति ।

११५. सप्ततिटीका प्राकृता आनन्दगणिमहत्तरीया २३००, २३२८ ।

११६ सप्ततिटिप्पनकम्, खरतररामदेवगणिकृतम्, गाथा, ५४७ ।

११७. सप्ततिटीका मलयगिरीया...... ।

११८. सप्ततिभाष्यं नास्ति ।

११९. बृहत्संग्रहणीसूत्रं जिनभद्रगणिकृतम्, गाथा, ५३० ।
(१) बृहत्संग्रहणीवृत्तिः ११३९वर्षे शालिभद्री २८००-२५०० ।
(२) बृहत्संग्रहणीवृत्तिर्मालयगिरी ५००० ।
(३) लघुसंग्रहणीवृत्तिः, 'नमिउं अरिहंताई' त्ति, मलधारिदेवभद्रीया ३५०० ।

१२०. बृहत्क्षेत्रसमासवृत्तिर्मलयगिरी ७८८७ ।

१२१. बृहत्क्षेत्रसमासवृत्तिः सिद्धिसूरीया ११९२ वर्षे, ३००० ।

१२२. बृहत्क्षेत्रसमासवृत्तिः, १२३३ वर्षे देवभद्रीया १०००, स्तम्भने ।

१२३. बृहत्क्षेत्रसमासलघुवृत्तिर्नास्ति ।

१२४. लघुक्षेत्रसमासवृत्तिर्हरिभद्रसूरीया ५११ ।

१२५ क्षेत्रसमाससूत्रं संस्कृतमाह्निकचतुष्टयरूपम् उमास्वातिवाचककृतम्....... ।
(१) वृत्तिः, २८८० ।

१२६. जम्बूद्वीपसंग्रहणी वृत्तिः १५० ।

१२७. वीतरागस्तवाः० ......२० ।
(१) वृत्तिः प्रभानन्दी २१२५ ।

१२८. शोभनस्तुतयः ९६ ।
(१) वृत्तिः पं० धनपालकृता, ९५० ।

१२९. धनपालपञ्चाशिका ।
(१) धनपालपञ्चाशिकावृत्तिः प्रभानन्दसूरीया ६४०, ११०० ।

१३०. 'निम्मलनहे थि' इति वीरस्तवस्य पं० धनपालकृतस्य वृत्तिः सूराचार्यकृता २२५ ।

१३१. भक्तामरप्रदीपिका भृगुपुरं विना नास्ति ।

१३२. भक्तामरस्तववृत्तिः गुणाकराचार्यैः १४२६ वर्षे कृता, १५७२ ।

१३३. 'जनेन येन' स्तुतिवृत्तिः ३०५ ।

१३४. 'नमेन्द्रमौलि' इत्यादि समस्तजिनस्तवः ९६ ।
(१) वृत्तिः पद्मदेवकृता ७३५ ।

१३५. चक्राऽष्टक ५८, शंखेश्वर ४, अदबुदस्य २८ स्तुतयः, इत्यादि कल्या ४, पूर्वे पूर्वतः ४, देवेन्द्रैरनिशम् सोऽस्तुवन्, सप्तिसप्तस्तवं १५३, जैनसमागः ३८३, श्रीजैनेन्द्र, इत्यादिस्तवनानि च श्रीसोमतिलकीयानि ११००-७०-६००-४५०-२१८ १५८० ।

१३६. श्रीजिनकान्तिस्तववृत्तिः, श्रीसोमतिलकीया ३०० ।

१३७. श्री अजितशान्तिस्तववृत्तिः देवः विना न ।

१३८. जयतिहुअणवृत्तिः २५० ।

१३९. भक्तिभरति-मरुदेव-उवसग्ग-नमि उवस-लिमन्त नव-नवपहिं-उज्जितसेल-नमस्याकर्तुः १३६५ वर्षे जिनप्रभीया ५२३० ।

१४०. उपसर्गहर-भयहरस्तववृत्ती, उपसर्ग० वृत्तिः ३०० भयहर० वृत्तिः १६० । देवपत्तनं विना न ।

१४१. 'पुरुदेव' इत्यादि लघुस्तववृत्तिः ३०० ।

१४२. सप्ततिस्तववृत्तिः ।

१४३. सिद्धसेनकृताः ३० द्वात्रिंशिकाः ८५० ।

१४४. २४ जिनस्तवाः २४, ६, ६ गाथामितास्तवनादि-२५ बप्पभट्टीयाः ।

१४५. २४ जिनस्तवाः २४, ८, ८ गाथाः, स्तवनानि ३९ शोभना मलधारिदेवप्रभीयाः ।

१४६. चतुरशीतिजिनशतकवृत्तिः आमदेवेन लघ्वा १०२५ वर्षे कृता जम्बूद्वीपिका, अत्र ऋषभ-सुविधि-शान्ति-वर्धमान-नेमि-पार्श्वाः ४ परिच्छेदाः, मूलकाव्यानि १०० वृत्तिः १५५० ।

१४७. समस्तजिन-'सिद्धेभ्यः सुखाद्वैत सूते भवभयद्' इत्यादि २४ जिनस्तवाः २४, वृत्तयः जिनप्रभसाधुसूरीयाः १५४९ ।

१४८. अष्टसप्ततिका अनेकधा श्रीसोमधर्माविपरीकृताः ।

१४९. [1]कलशमागधा आचार्यकृता ६३१ ।

१५०. पूर्वक्तसिद्धिका गाथा ३२ ।

१५१. कूर्मचैत्यवन्दनिका २०४ ।

१५२. वृषभदेविका ११२ ।

१५३. स्तुतिदेवनिका गाथा १७२ ।
डैवं तु योगसाधनिकाः ।

---

१ प्रत्यन्तरे 'जम्बू' शब्दो नास्ति ।

१५४. चतुर्विंशति ६३ तीर्थकल्पाः श्रीजिनप्रभकृताः, १३८९ वर्षादौ जिनप्रभसूरिकृताः श्रीदेवतीर्थैतिह्यकल्पाः ३५०३ ।

१५५. शत्रुञ्जयमाहात्म्यं, ललितमादन, आबुजिकयर्नेप्रतिष्ठ ।

१५६. शत्रुञ्जयकल्पः, पालित्तसूरिकृतः, पत्तनं विना न ।

१५७. शैवमतादिनादि काव्यानि ४२ प्राकृतानि ।

१५८. विवेकविलासो जिनदत्तसूरिकृतो द्वादशोल्लासात्मकः

१५९. योगनीतिः सोमदेवसूरिकृता ।

१६०. शतपदी ११७ पद्यमयी आचार्यविरचिता १२०४ वर्षे महेन्द्रसिंहाचार्यकृता ५४५० ।

१६१. जितशत्रुकथाचरित्रकृतनामकदशकवर्णन-करणं हरिभद्रीयम् आचार्यदेवचन्द्रगणिकृतं ५०४० ।

१६२. आत्मप्राकृतं चरणसत्तोदयविवरणं कृतपदीपूर्व-पक्षवृत्तम् ।

१६३. अवचूर्णिसमाचारीवृत्तिर्देवगुप्ताचार्यीया १२०० ।

१६४. प्रवचनसारोद्धारादि २५ अधिकारप्रतिपत्तिः आलापकाः १४४३ वर्षे श्रीकुलमण्डनसूरीयाः ।

१६५. तपासामाचारी ७०० ।

१६६. सामाचारी १३६ अधिकारा नलवादिदेवप्रभसूरीया ।

१६७. सामाचारी प्रबोधा वर्धमानसूरिशिष्यचन्द्रशिष्य-श्रीचन्द्रीया १४५०-१२२१ ।

१६८. सामाचारी अनेकविधा गच्छान्तरीया ।

१६९. उपधानस्वरूपं श्रीदेवसूरिकृतम् ।

१७०. उपदेशमालावृत्तिः प्राकृता कर्णसिंहजयसिंह-सूरिकृता ९१३ वर्षे ।

१७१. उपदेशमालावृत्तिः सिद्धर्षीया हेयोपादेयाभिधा टीका ।

१७२. हेयोपादेयावृत्तिः केनापि अवचूर्णिता ग्रं० १५००, १५०० ।

१७३. उपदेशमालाकर्णिका १२९९ वर्षे श्रीउदयप्रभीया लघ्वी १२२७४, अनुष्टुप्-१५४१९ ।

१७४. दोघट्टी उपदेशमालावृत्ति रत्नप्रभीया सं० १२३८ वर्षे लघ्वी ११९५०, बृहत् ११८२९ ।

१७५. उपदेशमालालघुवृत्तिः सिद्धर्षीया ३५८६ ।

१७६. उपदेशमालावृत्तिर्हेयोपादेयाभिधाना श्रीसिद्धर्षीया ४३६० ।

---

१ प्रत्यन्तरे 'जिन्न' ।

१७७. पुष्पमालावृत्तिर्मलधारि-सूत्रकृत्-हेमचन्द्रैः ११७५ वर्षे कृता १३८६८।
१७८. धर्मोपदेशमालावृत्तिः ११९० वर्षे मुनिदेवीया ६८००।
१७९. धर्मोपदेशमालालघुवृत्तिः ९१५ वर्षे जयसिंहीया।
१८०. धर्मोपदेशमालाविवरणं स्तम्भतीर्थे विना न।
१८१. भवभावनावृत्तिः, सूत्रकृत्-मलधारी-हेमचन्द्रीया ११७० वर्षे १३०००।
१८२. दिनकृत्यवृत्तिः तपाश्रीदेवेन्द्रीया १२८२०।
१८३. धर्मरत्नवृत्तिः तपाश्रीदेवेन्द्रीया श्राद्ध २१ गुणादिवाच्या ९७००-९६६२।
१८४. हितोपदेशमालावृत्तिः सूत्रकार-प्रभानन्द-भ्रातृ पं० परमानन्दीया १३०४ वर्षे ९५००।
१८५. सम्यक्त्ववृत्तिः सूत्रकार-चन्द्रप्रभसूरि-संतानीय-श्रीतिलकीया १२७७ वार्षिकी ८०००।
१८६. सम्यक्त्ववृत्तिः प्राकृतकथागर्भा १२०००।
१८७. दर्शनशुद्धिवृत्तिर्देवभद्रसूरिकृता ३८००।
१८८. दर्शनशुद्धिः संदेहविषौषधीनाम्नी गाथा २६२।
१८९. 'माणुस्सखित्ते' ति विवेकमञ्जरीवृत्तिः १२२३ वर्षे अकलङ्कदेवीया।
१९०. विवेकमञ्जरीवृत्तिर्बालचन्द्री ८०००।
१९१. उपदेशकन्दलीवृत्तिर्बालचन्द्री ७६००।
१९२. शीलोपदेशमालावृत्तिः १२९४ वर्षे रुद्रपल्लीयश्रीसोमतिलकीया।
१९३. योगशास्त्र १२ प्रकाशवृत्तिर्हैमी १२००—१२३००।
१९४. योगशास्त्र केवल ४ प्रकाशवृत्तिः
१९५. उपदेशपदसूत्रं हारिभद्रम् १०४०।
(१) उपदेशपदवृत्तिः ११७४ वर्षे मौनिचन्द्री सूत्रगर्भिता १५५००।
१९६. संवेगरंगशाला ११७५ वर्षे नवांगाऽभयदेववृन्दभ्रातृजिनचन्द्रीया १००५३।
१९७. वन्दनकुलकवृत्तिः श्रीजिनकुशलसूरिकृता ४३७० पावात्र न (?)।
१९८. विषयविनिग्रहकु० वृत्तिः १३३७ वर्षे मालचन्द्री १०००८ स्तम्भतीर्थ विना न।
१९९. नवपदवृत्तिर्देवगुप्ताचार्यादिभिः १०७३ वर्षे कृता २१७०।
२००. नवपदवृत्तिः १०७३ वर्षे जिनचन्द्रागण्याद्यैः कृता-२२१०।
२०१. नवपदवृत्तिः कुलचन्द्रादिकृता १०७३ वार्षिकी २६००।
२०२. नवपदवृत्तिः ११६५ वर्षे यशोदेवोपाध्यायकृता ९५००।
२०३. अभिनवनवपदवृत्तिः ११८२ वर्षे सूत्रकारदेवेन्द्रीया ९०००।
२०४. भगवतीद्वादशशतकगततृतीयउद्देशसत्कजयन्तीप्रश्नोत्तरसंग्रहप्रकरणस्य मानतुंगीयस्य वृत्तिर्जयन्तिचरित्रवाच्या प्राकृतमूला १२६० वर्षे मालयप्रभी ६६००।
२०५. ठाणवृत्तिर्हेमसूरिगुरुदेवचन्द्रीया, तत्सूत्रं प्रद्युम्नसूरिकृतम् १३००० (वृत्तिमानम्)।
२०६. धर्मोपदेशप्रकरणं प्राकृतमूलं-बहुकथासंग्रहं १३०५ वर्षे यशोदेवीयम् ८३३२।
२०७. पवज्जाविहाणवृत्तिः १३३८ वर्षे प्रद्युम्नीया ४५००।
२०८. पवज्जाविहाणवृत्तिः जैनधर्मी २४८।
२०९. धर्मविधिप्रकरणवृत्तिः जयसिंहसूरिकृता ११११४२।
२१०. धर्मविधिप्रकरणवृत्तिः १२९६ वर्षे उदयसिंहाचार्यीया ५५२०।
२११. ऋषिमण्डलस्तवः संस्कृते मेरुतुंगसूरिकृतः कारिका ७०।
२१२. 'इसिमंडल' इत्याद्यऋषिमण्डलस्तवः गाथा २७१।
२१३. 'इसिमंडल' इति ऋषिमंडलवृत्तिः ४६१४।
२१४. 'भत्तिभर' इति ऋषिमण्डलसूत्रम् २०८।
(१) अस्य वृत्तिः आंचलिकभुवनतुंगीया।
२१५. गौतमपृच्छावृत्तिः खरतरश्रीतिलकोपाध्यायकृता५६००।

कथानुयोगग्रंथाः।

२१६. कथाकोशसूत्रम् गाथा २३९।
(१) कथाकोशवृत्तिः ११०८ वर्षे जैनेश्वरी ६०००।
२१७. कथामणिकोशवृत्तिर्नेमचन्द्रकृत ४१ अधिकारसूत्रव्याख्याकृत ११९० वर्षे आम्रदेवी।
२१८. शीलभावनावृत्तिः १२२९ वर्षे रविप्रभी ९५७०।
२१९. कथारत्नकोशः सम्यक्त्वादि ५० अधिकारः ११५८ वर्षे देवभद्रसूरीयः १२३००।
२२०. धर्माख्यानककोशवृत्तिः प्राकृतबहुकथामयी पत्तनं विना न।
२२१. दानोपदेशमालावृत्तिः पत्राणि ७१।

२२२. प्रश्नोत्तरमालावृत्तिः १४२९ वर्षे देवेन्द्रसूरिकृता।

२२३. उपदेशचिन्तामणिः १४३६ वर्षे आंचलिकजयशेखर-सूरिकृता १२०९३।

२२४. श्रीआदिनाथचरित्रं प्राकृतम्, जयसिंहदेवराज्ये ११६० वर्षे वर्धमानसूरिरचितम्, ११०००, १२०००।

२२५. श्रीआदिनाथचरित्रं संस्कृतं संप्रति न।

२२६. श्रीअजितचरितं सं० न।

२२७. श्रीअजितचरितं प्राकृतं न।

२२८. श्रीसंभवच० सं० न।

२२९. अभिनन्दनच० सं० न।

२३०. अभिनन्दनच० प्रा० न।

२३१. सुमतिचरितं सं० न।

२३२. सुमतिचरितं प्रा० मुख्यं सोमप्रभीयं कुमारपालराज्ये कृतम् ९६२१।

२३३. पद्मप्रभचरित्रं प्राकृतं न।

२३४. सुपार्श्वचरितं संस्कृतं न।

२३५. सुपार्श्वचरितं ११९९ वर्षे लक्ष्मणगणिकृतम् गाथा ८७०० श्लोकाः १०१३८–१०९८८।

२३६. चन्द्रप्रभचरितम्, सं० १३०२ वर्षे सर्वानन्दम् ६१४१।

२३७. चंद्रप्रभचरितं सं० प्रा० १२६४ वर्षे देवेंद्रसूरीयम् ५३२५।

२३८. चंद्रप्रभचरितं प्रा० यशोदेवम् ६४००।

२३९. चंद्रप्रभचरितं प्रा० श्रीकुमारपालराज्ये हारिभद्रम् ८०३२।

२४०. सुविधिचरितं प्रा० न।

२४१. सुविधिचरितं सं० न।

२४२. शीतलचरितं सं० न।

२४३. शीतलचरितं प्रा० न।

२४४. श्रेयांसचरितं सं. १३३२ वर्षे मानतुंगाचार्यैः कृतम्, ५१२४, स्तम्भतीर्थे विना न।

२४५. श्रेयांसचरितं प्रा० देवभद्रीयम् ११०००, स्तम्भतीर्थे विना न।

२४६. श्रेयांसचरितं प्रा. श्रीजयसिंहदेवराज्ये हरिभद्राचार्य-कृतम्. गाथा ६५८४, स्तम्भतीर्थे विना न।

२४७. वासुपूज्यचरितं सं० ११९९ वर्षे वर्धनानाचार्यकृतम् ५४९४।

२४८. वासुपूज्यचरितं प्रा० चांद्रप्रभम्, हेमसूर्यादिशोधितम् ८०००; स्तम्भतीर्थे विना न।

२४९. विमलचरितं सं० न।

२५०. विमलचरितं प्रा० न।

२५१. अनंतचरितम् प्रा० गाथाबद्धं १२१६ वर्षे श्रीनेमिचन्द्र-सूरीयम् गाथाः १२०००।

२५२. धर्मचरितं सं० नेमिचंद्रीयं न।

२५३. धर्मचरितं प्रा० न।

२५४. शांतिचरितं सं० † १३३२ वर्षे मौनिदेवम् ४८८५।

२५५. शांतिचरितं सं० माणिक्यसूरीयम् ५५७४।

२५६. शांतिचरितं सं० पौर्ण-अजितप्रभसूरिभिः १३१७ वर्षे कृतम् ४९११।

२५७. शांतिचरितं प्रा० गद्यपद्यमयम् ११६० वर्षे श्रीहेमसू-रिगुरुदेवचन्द्रसूरीयम् १२१००।

२५८. श्रीशांतिचरितं सं० श्रीमणिभद्रसूरिणा १४०२ वर्षे कृतम् ६२७२।

२५९. कुंथुचरितं सं० विबुधप्रभसूरिकृतम् ५५५५।

२६०. कुंथुचरितं प्रा० न।

२६१. अरचरितं प्रा० न।

२६२. अरचरितं सं० न।

२६३. मल्लिचरितं प्रा० ११७५ वर्षे जैनेश्वरम् ५५५५।

२६४. मल्लिचरितं सं० श्रीविनयचन्द्रीयम्।

२६५. मल्लिचरितं बहुप्राकृतं हरिभद्रीयं कुमारपालराज्ये कृतं गाथाकाव्यमयं ग्रन्थाग्रम् ९०००।

२६६. मुनिसुव्रतचरितं सं. पौर्ण० मुनिरत्नसूरिकृत २० स्थानककथाकलितम् ५१८५।

२६७. मुनिसुव्रतचरितं प्रा. ११९३ वर्षे चंद्रसूरिइयं गाथा १०९९४।

२६८. मुनिसुव्रतचरितं बहुकथानकं ९ भवं विनयचंद्रसूरीयम् ४५५२।

२६९. नमिचरितं सं. न।

२७०. नमिचरितं प्रा. न।

२७१. नेमिचरितं प्रा. १२१६ वर्षे हरिभद्राचार्यैः कृतम् ८०३२।

२७२. नेमिचरितं प्रा. भवभावनावृत्त्यन्तर्गतमन्तरंगवक्तव्यतामिश्रम् ५१०२।

२७३. नेमिचरितं प्रा. गद्यपद्यमयं १२३३ वर्षे देवसूरिशिष्य-रत्नप्रभीयम् १३६००।

२७४. पार्श्वचरितम् सं. सर्वानंदसूरिकृतम्।

---

† प्रत्यन्तरे १३२२ वर्षे।

२७५. पार्श्वचरितं सं. १२१८ वर्षे भावदेवसूरिकृतम् ६७७४–६४०० ।

२७६. पार्श्वचरितं सं. माणिक्यचन्द्रसूरिकृतं १२७६ वर्षे ५२७८ ।

२७७. पार्श्वचरितं प्रा० ११६५ वर्षे नवांग-अभयदेवप्रथमशिष्यदेवभद्राचार्यैः कृतम् ९००० ।

२७८. पार्श्वचरितं प्रा० दशभववाच्यं गाथा २५६४ ग्रंथाग्रम् ३२०० ।

२७९. महावीरचरितं सं० न ।

२८०. वीरचरित्रं प्रा. ११३९ वर्षे गुणचन्द्रगणिकृतम् १२००० ।

२८१. वीरचरित्रं प्रा० ११३९ वर्षे नेमिचंद्रसूरिकृतम् १२०००

२८२. वीरचरित्रं प्रा० ११३९ वर्षे नेमिचंद्रसूरिकृतं २८१०–२४०० ।

२८३. महापुरुषचरितं मु० प्रा० शलाकापुरुषवृत्तवाच्यं ९२५ वर्षे शीलाचार्यैः कृतम् १०००० ।

२८४. महापुरुषचरित्रं प्रा० ६३ शलाकापुरुषवृत्तवाच्यं आम्रकृतम् गाथा ८७९०, श्लोकाः १००५० ।

२८५. कथावलीप्रथमपरिच्छेदः, प्रा० मु० २४ जिन–१२ चक्रयादिहरिभद्रसूरिपर्यंतसत्पुरुषचरित्रवाच्यो भाद्रेश्वरः २३८०० ।

२८६. त्रिषष्टिः श्रीऋषभादि ६३ महापुरुषवृत्तप्रतिबद्धा श्रीहेमसूरीया संपूर्णा ।

२८७. त्रिषष्टीयं श्रीआदिचरितं केवलं ५००० ।

२८८. त्रिषष्टीयं रामायणं पृथक् ३७१८ ।

२८९. त्रिषष्टीयं नेमिचरितं ४९६५ ।

२९० त्रिषष्टीयं पार्श्वचरितं १६०० ।

२९१. त्रिषष्टीयं महावीरचरितं ३४९२ मतान्तरे ५१६१ देवगिरि ।

२९२. परिशिष्टपर्व जम्बूप्रमुखाऽऽर्यरक्षितान्तपुरुषवाच्यं ३४६० ।

२९३. त्रिषष्टिगतं नलचरित्रं ११७७ ।

२९४. पद्मानन्दमहाकाव्यं २४ जिनवृत्तरूपं पं०अमरचन्द्रकविकृतं १८ सर्गरूपं ८१९१ ।

२९५. श्रीपार्श्व १० गणधरचरित्राणि प्रा० मुख्यानि ४३५०

२९६. अममजिनस्य भाविनश्चरित्रं मुनिरत्नसूरिभिः १२५२ वर्षे कृतम् ।

२९७. पुण्डरीकचरित्रं सं० १३७२ वर्षे कमलप्रभं, कदाचिद् अनागमिकार्थं ३३०० ।

२९८. ११ गणधरचरित्रं सं० खरतर देवमत्युपाध्यायीयं ६५०० ।

२९९. हरिवंशचरितं सं० नेम्यादियदुवृत्तवाच्यमाद्यन्तरहितं श्लोकाः ९००० ।

३००. हरिवंशचरितं सं० चन्द्रकविकृतं पुराणभाषानिबद्धं नेम्यादिवृत्तवाच्यं ९००० ।

३०१. पद्मचरितं प्रा० वीरात् ५३० वर्षेषु गतेषु विमलसूरिभिः कृतं मुख्यैवराज्यरसं १०५५० ।

३०२. सीताचरितं प्रा० ३१०० ।

३०३. सीताचरितं धर्माऽधर्मशास्त्रगतं प्राकृतं ३४०० ।

३०४. प्रत्येकबुद्धचरितं १२६१ वर्षे श्रीतिलकीयं ६०५० ।

३०५. जम्बूस्वामिचरितं प्रा० ८२ (?) वर्षे गाथा १६४४ ।

३०६. जम्बूस्वामिचरितं प्रा० संध्यादियन्थे १०१६ वर्षे सं० सागरदत्तेन कृतं २६०० ।
   (१) तस्य टिप्पनं ११०० ।

३०७. पृथ्वीचन्द्रचरितं प्रा० मुख्यं गार्यादिमयं ११७१ वर्षे शान्तिसूरिभिः कृतं ७५०० ।
   (१) पृथ्वी० टिप्पनं १२२६ वर्षे कानकचन्द्रं ११०० ।
   (२) पृथ्वी० चरित्रसंकेतो विषमपदव्याख्यारूपो रत्नप्रभसूरिकृतः ५९५ ।

३०८. समरादित्यचरित्रं प्रा० मूल हारिभद्रं गाथा १०००० ।

३०९. समरादित्यचरित्रं सं० १३२४ वर्षे प्रद्युम्नीयं ४८७४ ।

३१०. पाण्डवचरित्रं सं० मलधारि देवप्रभसूरीयं ९८८४ ।

३११. प्रभावकचरितं सं० वज्रस्वामिप्रमुखप्रभावकाचार्यवृत्तवाच्यं १३३४ वर्षे प्राभाचन्द्रं ५७७४ ।

३१२. कुमारपालप्रतिबोधः बहुप्रा० शतार्थिसोमप्रभसूरिभिः १२४१ वर्षे कृतः ८८०० ।

३१३. कुमारपालप्रतिबोधः सं० १५७५ ।

३१४. मुनिपतिचरित्रं प्रा० ११७२ वर्षे हारिभद्रीयं गाथा १४४ श्लो० ८०५ ।

३१५. मुनिपतिचरित्रं सं० १००५ वर्षे जम्बूनागमुनिकृतं ३२०० उद्धृ० २७०० ।

३१६. महीपालचरित्रं स्तम्भतार्थं विना न ।

३१७. उपमितभवप्रपञ्चोद्धारः सं० देवसूरिकृतः २३७० ।

३१८. उपमितभवप्रपञ्चासारसमुच्चयो वार्धमानः १४६० ।

३१९. उपमितसारोद्धारः सं० १२९८ वर्षे श्रीचन्द्रशिष्यदेवेन्द्रसूरीयः ५७३० ।

३२०. कुवलयमाला प्रा० मु० ८३५ वर्षे उद्द्योतनसूरीया १३००० ।
३२१. कुवलयमाला सं० रत्नप्रभसूरीया ३८९४ ।
३२२. भुवनसुन्दरीचरित्रं प्रा० गाथाबद्धं नाइलकुलश्रीविजयसिंहाचार्यैः ९७५ वर्षे कृतं गाथा ८९११ ।
३२३. हरिविक्रमचरित्रं सं० आगमिकजयतिलकसूरीयं ।
३२४. सुलसाचरित्रं सं० आगमिकजयतिलकसूरीयं ।
३२५ मलयसुन्दरी कथा सं० आगमिकजयतिलकीया २४३० ।
३२६. मलयसुन्दरी कथा प्रा० न ।
३२७. मनोरमाचरित्रं प्रा० मु० गाथामयं च ११४० वर्षे श्रीअभयदेवसूरीशिष्य-वर्धमानसूरीयं १५००० ।
३२८. सप्तक्षेत्रीनामकथा ११७८ वर्षे गुणाकरीया ७२०० ।
३२९. सुदर्शनाचरित्रं प्रा० तपाश्रीदेवेंद्रीयं गाथा ४०५२ ।
३३०. मृगावतीचरित्रं मलधारि देवप्रभसूरीयं १८७३ ।
३३१. सुरसुन्दरीकथा १६ परिच्छेदा धनेश्वरमुनिकृता संवत् १०९५ वर्षे गाथा ४००० ।
३३२. बृहत्पूजाष्टकं रत्नचूडकथयांऽकितम् ।
३३३. रत्नचूडकथा पूजाफलवाच्या नेमप्रभाचार्यीया ३५०० ।
३३४. पूजाष्टककथा प्रा० १०६० ।
३३५. पूजाष्टककथा सं० न ।
३३६. विजयचन्द्रकेवलिकथा प्रा० पूजाष्टककथागर्भा ११२७ वर्षे चन्द्रप्रभसूरीया ४७०० गाथा ३९१० ।
३३७. विजयचन्द्रकेवलिकथारहितास्तद्गताः पूजाष्टककथाः प्रा० ।
३३८. कौमुदीकथा जैनकृता १६०० ।
३३९. पञ्चमीकथा दशकथानकात्मिका प्रा० महेश्वरसूरीया २००४ ।
३४०. नर्मदासुन्दरीकथा १७०० ।
३४१. जयसुन्दरीकथा प्रा० न ।
३४२. सर्वांगसुन्दरीकथा प्रा० २६७५ ।
३४३. ऋषिदत्ताचरित्रं प्रा० न ।
३४४. कुसुमसारकथा नेमिचंद्राचार्यैः १०९९ वर्षे कृता गाथा १७०० ।
३४५. दमयन्ती कथा २, ५० (?)
३४६. सौभाग्यसुन्दरी कथा ।
३४७. जिनदत्तकथा १२०० ।
३४८. कथारत्नसागरः १५ तरंगात्मको मलधारिनरचन्द्रसूरीयः १५ कथः ।
३४९. धन्यशालिभद्रचरित्रं पूर्णभद्रगणिना १२८५ वर्षे कृतं श्लोकाः-१४६० ।
३५०. स्थूलिभद्रचरित्रं तपाजयानन्दसूरिकृतं श्लोकाः ६८४ ।
३५१. पञ्चाख्यानकं पूर्णभद्राचार्यैः १२५५ वर्षे शोधितम् ४६०० ।
३५२. प्रद्युम्नचारित्रं शाम्बचरित्रं १०७० ।
३५३. प्रबन्धचूडामणिर्मेरुतुङ्गसूरीयः ३५०४ ।
३५४. २४ प्रबन्धाः ८४ कथाश्च राजशेखरसूरीयाः ।
३५५. लीलावतीकथा भूषणभट्टसुतकृताऽऽद्यरसमिश्रिता च परसमयगता गाथाः-१४३९ ।
३५६. कथापुस्तिका अनेकविधकथाभिरनिर्दिष्टनामिकाभिरुपेताः ।
३५७. कथापुस्तिका विविधाः ।

न्याय-तर्कग्रन्थाः ।

३५८. सम्मतिसूत्रं सिद्धसेनदिवाकरकृतम् गा० १७० ।
(१) सम्मतिवृत्तिर्मल्लवादिकृता-७०० ।
(२) सम्मतिवृत्तिः काण्डत्रयोपेता प्रद्युम्नशिष्यअभयदेवीया २५००० ।
(३) सम्मतिवृत्तिरन्यकर्तृका ।
३५९. प्रमाणकलिकाख्यवार्तिकसूत्र-वृत्ती शान्त्याचार्यीये, सू० ६०, वृ० २८७३ ।
३६०. नयचक्रवालवृत्तिर्मल्लवादीयद्वादशारनयचक्रतुम्बसूत्रव्याख्यारूपा ससूत्रा १८००० ।
३६१ अनेकान्तजयपताकासूत्रं हारिभद्रं सदसदादि ४ धिकारं-३६००-३५०० ।
३६२ अनेकान्त० वृत्तिर्हारिभद्री ८२५० ।
(१) तट्टिप्पनकं मौनिचन्द्रम् २००० ।
३६३. स्याद्वादरत्नाकरसूत्रं ८ परिच्छेदं वादिश्रीदेवसूरिकृतम् ।
३६४. स्याद्वादरत्नाकर आछाणिया वादिश्रीदेवसूरिकृतः ३६०००, प्रथमखण्डं विना ।
(१) रत्नाकरावतारिकाऽऽख्या तल्लघुटीका रत्नप्रभीया ५००० ।
(२) तट्टिप्पनकं न ।
३६५. न्यायावतारसूत्रं सिद्धसेनीयम् ।
(१) तद्वृत्तिर्हारिभद्री च, सू० ३२, वृत्तिः २०७३ ।
(२) न्यायावतारवृत्तिः सिद्धव्याख्यानिककृता ।

३६६. आप्तमीमांसाऽलंकारनामाऽष्टसहस्रीतर्को विद्यानन्दसूरीयः ८००० ।
३६७. प्रमाणमीमांसासूत्र–वृत्ती हेमसूरीये सू०...वृ०.... ।
३६८. अनेकान्तवादप्रवेशो हारिभद्रः—७००–७३० ।
३६९. सर्वज्ञसिद्धिप्रकरणं हारिभद्रम् ३०० ।
३७०. द्रव्यालंकारस्तर्कः पं० रामचन्द्रगुणचन्द्र कृतः ४०० ।
३७१. प्रमाणसंग्रहप्रकरणं ९ प्रस्तावं जैनं ७१२ ।
३७२. प्रमेयरत्नकोशः सर्वज्ञसिद्ध्यादि २३ वादस्थलः चन्द्रप्रभसूरीयः १६८० ।
३७३. षड्दर्शन दिङ्मात्रविचारः ।
३७४. षड्दर्शनसमुच्चयसूत्र–वृत्ती, सूत्र–८६, वृ. १२५२।
३७५. परिणामिवस्तुव्यवस्थापनं १८० ।
३७६. वेदिकानिषेधो वस्त्रव्यवस्थापनरूपः ।
३७७. सर्वार्थप्रमाभावाद्यभावनिरासवादस्थलानि ४,–३१० ।
३७८. केवलिभुक्ति–स्त्रीमुक्तिप्रकरणं शब्दानुशासनकृत्–शाकटायनकृतं, तत्संग्रहश्लोकाश्च ९४, प्रत्यन्तरे९० ।
३७९. हारिभद्रो नन्दिवृत्त्याद्यनमस्कारसंवद्धसर्वज्ञव्यवस्थापनावादः ।
३८०. सर्वज्ञव्यवस्थापनावादो योऽपि सोऽपि बहुरल्पो वा
३८१. अपशब्दनिराकरणं २१५ ।
३८२. भेदाभेदाद्यनेकान्तव्यवस्थापनं च–२०० ।
३८३. स्याद्वादमञ्जरी मल्लिषेणाचार्यैः १३४९ वर्षे कृता ३००० ।
३८४. समन्तभद्रकृत–श्रीवर्धमानस्तोत्रवृत्तिविषमार्थाः ।
३८५. अपौरुषेयवेदनिराकरणम् ।
३८६. प्रत्यक्षानुमानाधिकप्रमाणनिराकरणं च यशोदेवसाधुकृतम् ।
आद्यं तु त्रिवर्गपरिहारेण* । अपौ० पत्राणि ११, प्रत्यन्तरे प. १४ ।
३८७ श्वेताम्बरदर्शनसिद्धिः, प. १९ ।
३८८. लोकतत्त्वनिर्णयो हारिभद्रः–१७० ।
३८९. न्यायकुमुदचन्द्रसूत्र–वृत्ती दिगम्बरीय अकलङ्कदेव–प्रभाचन्द्रकृते सू० वृ. १६००० ।
३९०. प्रमेयरत्नमाला परीक्षामुखलघुवृत्तिरपरनाम्नी, तत्सूत्रं च—वृ. १५६७, सू. १४० ।
३९१. न्यायविनिश्चयवृत्तिः—अनन्तवीर्यकृता दैगम्बरी ।

* कवर्ग–चवर्ग–टवर्ग–इति वर्गत्रयगतव्यञ्जनानि परिहृत्यान्यैर्व्यञ्जनैरेतत् प्रकरणं रचितम् ।

३९२. आप्तपरीक्षावृत्तिस्तत्त्वार्थसूत्राद्यश्लोकव्याख्यारूपा ।
३९३. पत्रपरीक्षा च पत्रवाक्यप्रकारव्याख्या ।
३९४. प्रमेयकमलमार्तण्डो दिगम्बरीयप्रभाचन्द्रीयः ११००० ।
३९५. अध्यात्मतरङ्गिणीटीका दिगम्बरीयतर्करूपा ।
३९६. हेतुबिन्दुटीका तर्करूपा ।
३९७. प्रमाणवार्तिकाऽऽद्यपरिच्छेदसूत्रं बौद्धीयम्, (१)तद्वृत्तिश्च आद्यपत्र. २–३ रहिता ।
३९८. तर्कभाषा टीका बौद्धमतवाच्या बालावबोध ३ परिच्छेदा ८४० ।
३९९ न्यायबिन्दुसूत्रं बौद्धमतवाच्यम् ।
(१) तट्टीका च धर्मोत्तराचार्यकृता सू. टी. १४७७ ।
४००. न्यायप्रवेशकटीका च हारिभद्री सू. टी. ५९७ ।
४०१. न्यायप्रवेशकटिप्पनं ११६९ वर्षे श्रीचन्द्रीयम् ।
४०२. तत्त्वसंग्रहः प्रकृतीश्वरादिनिरासवाच्यो बौद्धः—३७१६ ।
४०३. न्यायकुसुमाञ्जलितर्कः ५०४६ मितः ।
४०४. न्यायतर्कसूत्रं (१) भाष्य, (२) वार्तिक, (३)तात्पर्यटीका, (४) तत्परिशुद्धि, (५)न्यायालंकारवृत्ति, (६) पञ्चप्रस्थानन्यायतर्काणि (क्रमशः)–अक्षपाद–वात्स्यायन–भारद्वाज–वाचस्पति–उदयन–श्रीकण्ठ–अभयातिलकोपाध्यायकृतानि षडपि ५३००० ।
४०५. न्यायकलिकाटीका नैयायिकीय १६ पदार्थतत्त्ववाच्या ४०५ ।
४०६. सारसंग्रहो नैयायिकीय १६ पदार्थवाच्यः ।
४०७. न्यायभूषणसूत्रं न्यायसारापरनामकं ४०० ।
(१) न्यायसारटीका जायसिंही २९०० ।
(२) न्यायसारटीका न्यायसारविचाराख्या ।
(३) न्यायसारपञ्जिका ।
४०८. मतमनोहरग्रन्थगतहेतुसाध्यगताशेषविशेषनिरूपणसूत्रव्याख्यारूपं ७४० ।
४०९. षट्पदार्थप्रवेशप्रकरणं वैशेषिकीयं–५५० ।
४१० भास्करभूषणः सृष्ट्यादिवाच्यः ।
४११ किरणावली ।
४१२. न्यायतन्त्रटीका व्याख्याखण्डम् ।
४१३. किरणावलीटिप्पनके द्रव्यपदार्थः २३७३ ।
४१४. कन्दली–किरणावल्योः सूलम् ७७७ ।

४१५. न्यायकन्दलीटीका श्रीधरेण १०४८ वर्षे कृता वैशे-(षि)कमता ३००० ।

४१६. कन्दलीटिप्पनकं पं. नरचन्द्रकृतम् २५०० ।

४१७. कन्दलीपञ्जिका १३८५ वर्षे [illegible] राजशेखरीया ४००० ।

४१८. न्यायलीलावती ।

४१९. [illegible]-वृत्ति, [illegible] ...... ।

४२०. वृद्धवादस्मरणार्थं [illegible] भट्ट श्रीविलस-कृतं ५०० ।

४२१. [illegible] ।

४२२. [illegible] परिच्छेदाः ४, ५००० ।

(१) [illegible]

व्याकरण-कोश-ग्रन्थाः ।

४२३. हैमशब्दानुशासनसूत्राणि ११०० ।

४२४. उणादि ३०० ।

४२५. लिङ्गानुशासनं, २०० ।

(१) [illegible] हैमलघुवृत्तिः, [illegible] १८००० ।

(२) १—३—४—५—६—७—८—१२—१३ पादे बृहन्न्यासः [illegible] ।

४२६. [illegible]—५००० ग्रं ।

४२७. [illegible]—५३००० ग्रं ।

४२८. [illegible]—४००० ।

४२९. हैमलघुवृत्तौ [illegible] २८ पाद-[illegible] ।

४३०. [illegible] हैमबृहद्वृत्ति [illegible] ।

४३१. हैमबृहद्वृत्ति [illegible] २—३—३ [illegible] ।

४३२. हैमप्राकृत पाद ४ वृत्तिः २४८५ ।

(१) [illegible] १५०० ।

(२) [illegible]—हैम [illegible] पं. नरचन्द्रकृता [illegible] १६०० ।

४३३. हैम चतुष्क [illegible] लघुवृत्तिः ३००० ।

४३४. [illegible] हैमलघुवृत्ते १ चतुष्क—२ [illegible]—३ [illegible]—४ [illegible] ।

४३५. हैमलघुवृत्ति [illegible] ३३३३ ।

४३६. हैम [illegible] ३६८४ ।

४३७. हैमधातुपारायणम् ।

४३८. हैमोणादिवृत्तिः ३२५० ।

४३९. हैमन्यायवृत्तिः १२५ ।

४४० हैमनाममाला १८०० ।

(१) हैमनाममालावृत्तिः [illegible] प्रभुश्रीहेमसूरि-कृता ११११ ।

४४१. हैमानेकार्थनाममालासूत्रं [illegible] १८२५ ।

(१) हैमानेकार्थनाममाला [व्याख्या] स्वरकान्तक्रमेण, [illegible] श्रीमहेन्द्रसूरिकृता १०६६० ।

४४२. हैमदेशीनाममालासूत्रम् ।

(१) हैमदेशीनाममालाया रत्नावली-इति नाम्नी वृत्ति-[illegible]—३३३०—३५०० ।

४४३ [illegible] हैमसंग्रहम् ।

४४४. हैमविभ्रमसूत्र-वृत्ती पं. गुणचन्द्रकृते सू. २१, ग्रं. ३०० ।

४४५. [illegible] १२८० वर्षे श्रीप्रभसूरिकृतः [illegible] ।

४४६. [illegible] ।

४४७. [illegible] ।

४४८, [illegible]—त्रिलोचनदासकृता [illegible] ।

४४९. [illegible] ग्रं. ३६ ।

४५० [illegible] ।

४५१. [illegible] २१००, ८००० ।

४५२. [illegible] त्रिलोचनदासीयम् ।

४५३. [illegible] यावत् ३२५ ।

४५४. [illegible] ।

४५५. [illegible] ३१० ।

४५६. [illegible] ।

४५७. [illegible] ३४ ।

४५८. [illegible] ।

४५९. [illegible] ३२५ ।

४६०. [illegible] ५०० ।

४६१. कातन्त्रोत्तरं विद्यानन्दापरनामकं समासप्रकरणं यावत् विद्यानन्दसू० कृ० व्या० ।
४६२. लिङ्गानुशासनममरकृतं अमरकोशसंबद्धकाण्डत्रये १४७० ।
४६३. लिङ्गानुशासन ३४ आर्यामितं वामनकृतं ३४ ।
४६४. अमरकोशशेषः ।
४६५. अमरकोशटिप्पनकम् ।
४६६. स्यादिसमुच्चयः पं० अमरकविकृतः ।
४६७. स्यादिसमुच्चयः अमरकविकृतः ।
४६८. लौकिकस्यादिप्रक्रिया सर्वधरकृता ।
४६९. सारस्वतव्याकरणं १२२० ।
४७०. सारस्वतटिप्पनकं १२०० ।
४७१. सारस्वतव्याकरणप्रक्रिया ।
४७२. गणरत्नमहोदधिः पं० वर्धमानेन ११९७ वर्षे कृतः ।
४७३. शाकटायनव्याख्या बहूव्यः ।
४७४. शब्दप्रभेदानुयायिनाममाला महेश्वरकविकृता ।
४७५. काशिकावृत्तिः पाणिनिकृता । (?)
४७६. व्याकरणरत्नकोशः पाणि० लघुवृ० ।
४७७. रूपावतारकसंक्षिप्तव्याकरणं पाणिनीयसंप्रदायात्मकं समासान् यावत् ।

छन्दः-साहित्यग्रन्थाः ।

४७८. हलायुधच्छंदोवृत्तिर्भट्टहलायुधकृता १२३३ ।
४७९. छन्दःप्रदीपो विप्रकृतः ९०० ।
४८०. वृत्तरत्नाकरो भट्टकेदारकृतः १५० ।
(१) तद्वृत्तिः श्रीकण्ठकृता ८२० ।
४८१. जयदेवच्छन्दःशास्त्रवृत्तेः टिप्पनकं श्रीचन्द्रसूरिकृतम् ।
४८२. नन्दिताढ्यप्राकृतछन्दोवृत्तिः श्रीदेवाचार्यशिष्यप्रकरणसु (ज्ञात ?) कारिरत्नचन्द्रगणिकृता ।
४८३. छन्दोऽनुशासनाऽपरनामकच्छन्दश्चूडामणिवृत्तिर्हेमसूरिकृता ४१००-२९९९ ।
४८४. गाथारत्नकोशो गाथालक्षणादिवाच्यः ७१ ।
४८५. काव्यप्रकाशसूत्र-वृत्ती १० उल्लासे सू० १४१ वृ० १७३० ।
४८६. जयन्तीदीपिका जयन्तपुरोधःकृता ४७३० ।
४८७. काव्यप्रकाशसंकेतः १२१६ वर्षे माणिक्यचन्द्रीयः ३२४४ ।
४८८. काव्यप्रकाशविकाशः ...।
४८९. काव्यप्रकाशावचूर्णिः १२५० ।
४९०. काव्यप्रदीपिका सूत्र-वृत्तिगर्भा पाल्हदेवकृता ६००० ।
४९१. काव्यानुशासननामालंकारचूडामणिवृत्तिः श्रीहेमसूरीया ८ अध्याया २८००—४२०० प्रत्यन्तरे ।
४९२. अलङ्कारचूडामणिवृत्तिविवेको हेमसूरीयः ४००० ।
४९३. दण्डयऽलङ्कारः ...।
४९४. अलंकारमहोदधिटीका मलधा० नरेन्द्रप्रभीया १२८० वर्षे कृता ४५०० ।
४९५. कविशिक्षा नाम काव्यकल्पलता सू० ५०० ।
(१) सूत्रवृत्तिः पं० अमरकविकृता वृ० ३३५७ ।
४९६. वाग्भटालङ्कारवृत्तिः ६०० ।
४९७. रुद्रटालङ्कारः ६ अध्यायः ।
४९८. कविशिक्षा बप्पभट्टशिष्यविनयचन्द्रकृता ।
४९९. अलङ्कारसर्वस्वं राजानकश्रीरुचककृतं १६०० ।
५००. काव्यकल्पलतापरिमलः, पं० अमरकविकृतः ।
५०१. श्रीभोजराजकृताऽलङ्कारस्य वृत्तिः पदप्रकाशनाम्नी । आजडकृता काव्यबन्धादिवाच्या......।
५०२. चन्द्रालोकालङ्कारः पं० अमरकविकृतकाव्याम्नायः प० २० ।

गद्यपद्य काव्यग्रन्थाः ।

५०३. श्रीद्व्याश्रय महाकाव्यं श्रीहेमसूरीयं २० सर्ग संस्कृतं २८२८-३०२८ ।
५०४. द्व्याश्रयकाव्यपाद २८ वृत्तिः, १३१२ वर्षे खरतर-अभयतिलकीया १७५७४ ।
५०५. प्राकृतद्व्याश्रयसूत्रं है ९५० ।
५०६. प्राकृतद्व्याश्रयपाद ४ वृत्तिः, खरतरपूर्णकलशीया १३०७ वर्षे कृता ४२३० ।
५०७. धर्माभ्युदयकाव्यं वस्तुपालचरित्रवाच्यं, उदयप्रभीयं ५२००—५०४० ।
५०८. श्रीशालिभद्रं काव्यं शालिभद्रचरित्रवाच्यं पं० धर्मकुमारकृतं १३३४ वर्षे १२२४ ।
५०९. श्रीधर्मनाथमहाकाव्यं २१ सर्ग दिगम्बरीयकाव्यादिबन्धकवि-हरिचन्द्रकृतम् ।
५१०. श्रीनेमिचरित्रं महाकाव्यं संस्कृतं गद्य-पद्यमयं बहुखण्डितं १०९० वर्षे भोजराजराज्ये सूराचार्यकृतम् ।
५११ श्रीनेमिमहाकाव्यटिप्पनकं १४०० ।
५१२. श्रीनेमिनिर्वाणकाव्यं वाग्भटकृतं १५ सर्ग १३६० ।

५१३. नेमिदूतकाव्यं विक्रमकृतम् ।
५१४. कुट्टिनीमतकाव्यं सं० दामोदरकृतं १२९० ।
५१५. विक्रमांकाभ्युदयकाव्यम् ।
५१६. बालभारतं ४३ सर्ग अमरकविकृतं परसमयवाच्यं ६७७४ ।
५१७. अभिनन्दकाव्यं रामचरितं वा ३६ सर्गम् ।
५१८. सोमपालविलासकाव्यम् ।
५१९. जल्हणकविकृतकाव्यम् १००० ।
५२०. नरनारायणनन्दकाव्यं मन्त्रिवस्तुपालकृतं १६०० ।
५२१. तिलकमञ्जरीकथा, धनपालकृता चम्पूरूपा वर्णनसारा ।
 (१) तिलकमञ्जरीटिप्पनकं शान्त्याचार्यीयं १२०० ।
५२२ तिलकमञ्जरीसारोद्धारो लघुधनपालकृतः—१२०० ।
५२३. कादम्बरीकथा बाणकविकृता पुलिंद्रकृतसंधाना ।
५२४. सौभाग्यमंजरीकथा सं० गद्यपद्यमयी, परतीर्थ पं० महेंद्रकृता ३१०० ।
५२५. वासवदत्तकथा सुबंधुकविकृता ।
 (१) वासवदत्ता० टीका नारायणकविकृता ।
५२६. चम्पूकथा ७ उल्लासा त्रिविक्रमभट्टकृता दमयन्तीकथाऽपरनाम्नी २५०० ।
 (१) चम्पूकथादिटिप्पनकं चण्डपालकृतं १९०० ।
५२७. शातवाहनकृतगाथासप्तशती......।
 (१) टीका भुवनपालकृता ४५०० ।
 (२) शात० गाथावृत्तिः, श्रीआजडेन कृता ।
 (३) शात० गाथावृत्तिः, जल्हणदेवकृता ।
५२८. रघुकाव्यं २० सर्ग १५७२ ।
५२९. माघकाव्यं २० सर्ग २७०० ।
 (१) माघकाव्यटीका वल्लभदेवकृता १२००० ।
५३०. कुमारसंभवकाव्यं ८ सर्ग ६१५ काव्यानि ।
 (१) कुमारसंभवकाव्यवृत्तिर्दिगम्बरीयधर्मकीर्तिकृता ।
५३१. मेघदूतकाव्यम् ।
 (१) मेघदूतवृत्तिः ।
५३२. किरातकाव्यं १८ सर्ग भारविकविना ... . वर्षे कृतम् ।
 (१) किरातकाव्यस्य भारवीयस्य वृत्तिः प्रकाशवर्षकृता ।
 (२) किरातार्जुनीयकाव्यटीका लोकानन्दकृता ।
५३३. गोडवधकाव्यं गाथाः ११६८ ।
५३४. नैषधमहाकाव्यं श्रीहर्षकविकृतं २२ सर्ग काव्यानि ४००९ ।
 (१) नैषधटीका चाण्डर्षी ।
 (२) नैषधटीका गादाधरी ।
 (३) नैषधीटीका विद्याधरी ।
५३५. दशरूपालोकम् ।
५३६. भारतशास्त्रम् ।
५३७. धनुर्विद्या च ।

नाटकानि ।

५३८. रघुविलासनाटकं पं० रामचंद्रकृतम् ।
५३९. नलविलासनाटकं पं० रामचन्द्रकृतम् ।
५४०. चाणाक्यनाटकम् ।
५४१. मोहपराजयनाटकं मन्त्रियशःपालकृतं श्रीकुमारपालनृपप्रतिबद्धं प्रायोऽन्तरङ्गवाच्यं १३२० ।
५४२ मानमुद्राभञ्जननाटकं सनत्कुमारचक्रि-विलासवतीसंबन्धप्रतिबद्धं देवचन्द्रगणिकृतं १८०० ।
५४३. प्रबुद्धरौहिणेयं रामचन्द्रीयं १००० ।
५४४. मुद्रितकुमुदचन्द्रनाटकं यशश्चन्द्रकृतं ५३५ ।
५४५ प्रबोधचन्द्रोदयनाटकं १०१० ।
५४६. दूतांगनाटकम् ।
५४४. शृंगारतिलकनाटकम् ।
५४८. मुरारिनाटकम् ।
 (१) मुरारिटिप्पनकं देवप्रभसूरिकृतं ७५०० ।
 (२) मुरारिटिप्पनकं मल० नरचन्द्रसूरीयं २३५० ।
५४९. अनर्घ्यराघवनाटकम् ।
५५०. मुद्राराक्षसनाटकं चन्द्रगुप्त-चाणाक्यसंबद्धं विशाखदेवकृतं ।
५५१. सुकृतमण्डनं वस्तुपालसंबद्धम् ।
५५१. राघवाभ्युदयनाटकं पं. रामचन्द्रकृतं १० अंकम् ।
५५२. चन्द्रलखाविजयनाटकम् ।
५५३. विक्रमोर्वशीनाटकं कालिदासकृतं ७७० ।
५५४. कर्पूरमंजरी नाटकम् ।
५५५. रत्नावलीनाटिका हर्षदेवकृता ७३३ ।
५५६. वनमालानाटिका पं. अमरचन्द्रकृता ।

ज्योतिः—शकुन—योगाम्नाय—मन्त्र—कल्प—सामुद्रिक—शास्त्राणि ।

५५७. आयज्ञानतिलकसूत्र-वृत्ती वोसिरिकृते सू. गा. ७५० ।
५५८. आयसद्भावः १९५ । वृत्तिः १६०० ।

५५९. कूरपर्वतः (?) ।
५६०. प्रश्नव्याकरण ज्योतिर्वृत्तिः ।
५६१. चूडामणिग्रन्थः २३०० ।
५६२. चूडामणिसारग्रन्थः४१ प्रकरणो लक्ष्मणभट्टकृतः६७२।
५६३. त्रिशती श्रीधरीया।
५६४. गणितशास्त्रम् ।
५६५. चन्द्रोन्मीलनचूडामणिसारशास्त्रम् ।
५६६. ज्ञानमञ्जरी ।
५६७. वस्तुसार १, ज्योतिषसार २, द्रव्यपरीक्षा ३, रत्नपरीक्षा ४, त्रिंशती तद्वृत्तयः ६ ग्रन्थाः १३७२ वर्षे ठ. फेरुकृताः ।
५६८. गणिततिलकग्रन्थवृत्तिः सिंहतिलकसूरीया ।
५६९. प्रश्नप्रकाशो नरचन्द्रसूरिकृतः २० प्रकाशः ३६० ।
५७०. नरपतिजयचर्या एकाशीतिकादि ८४ चक्रा ।
५७१. नरपतिजयचर्या गतग्रहा ।
५७२. नयनपूर्वाङ्कपञ्चाङ्गतिथिविवरणं करणशेखरवृत्तिनामकं १९० ।
५७३. वाराहीसंहिता सूत्र-वृत्ती—४००० ।
५७४. भाद्रबाहवीसंहिता सूत्रम्......।
५७५. सारावलीज्योतिष्कं २७०० ।
५७६. ज्ञानदर्पणज्योतिष्कं त्रैलोक्यप्रकाशं हेमप्रभसूरिकृतं ११४१ ।
५७७. भुवनदीपकः पद्मप्रभः १६७ ।
(१) वृत्तिः सिंहतिलकीया १७०० ।
५७८. रत्नकोशज्योतिष्कम् ।
५७९. रत्नमालाज्योतिः ।
५८०. षष्टिसंवत्सरादिदैवग्रन्था अनेकविधा इह अनिर्दिष्टनामकाः ।
५८१. हर्षप्रकाशज्योतिष्कं हर्षदेवगणिकृतम् ।
५८२. चन्द्रार्कग्रहसारज्योतिष्कम् ।
५८३. आशाधरीयपद्धतिः, यन्त्राणि च ।
५८४. बृहज्जातकं २५ अध्यायरूपं वराहमिहिरीयम् ४०० ।
५८५. श्रीधरीयजातकपद्धतिटीका ।
५८६. षट्पञ्चाशिकावृत्तिः सप्ताध्याया ५५० ।
५८७. प्रश्नज्ञानपद्धतिः भट्टोत्पलकृता १६० ।
५८८. विद्वज्जनवल्लभाख्यप्रश्नज्ञानं १९ अध्यायं श्रीभोजीयम् ।
५८९. पुस्तकेन्द्रग्रन्थः गा. ११५ ।
५९०. स्वज्ञानं पाशा केवलीविशेषरूपं श्लो. २१५ ।
५९१. मातृकाकेवली ५० ।
५९२. देवतादि ११ द्वारैः कालज्ञानम् ।
५९३. प्राकृतं पिपीलिकाज्ञानम् ।
५९४ नाडीसंचारज्ञानं च ।
५९५. सिद्धाज्ञापद्धतिः ।
५९६. नायपुस्तिका योगिनामाम्नायग्रन्थसत्का हरीमेखलाजनाश्चर्यकराञ्जनसिद्धयादियोगादिवाच्या, खेलवाडि माहुयाकृता, गाथा १३९७ ।
५९७ अर्घकाण्डं दुर्गदेवीयं अ० १०-१४७ ।
५९८. मन्त्रमहोदधिः प्रा. दिगम्बर श्रीदुर्गदेवकृतः, मं. गा. ३६ ।
५९९. भैरवपद्मावतीकल्पः श्रीमल्लिषेणसूरिकृतः ४०० ।
६००. रुद्राक्षकल्पः ७५ ।
६०१. श्वेतार्ककल्पः ।
६०२. कामरूपपञ्चाशिका निमित्तवाच्या तद्वृत्तिः सू. वृ. ८८ गा. (?) ।
६०३. वसन्तराजो लावशर्मणः २३५० ।
६०४. शकुनसारोद्धारो माणिक्यसूरीयः १३३८ वार्षिकः ५०८ ।
६०५. शकुनशास्त्रं प्राकृतं वार्तामयं ग. १४ ।
६०६. सामुद्रिकम् ६७ ।

प्रकीर्णकग्रन्थाः ।

६०७. श्रीशान्तिनाथचरितं दिगम्बरीयं गा. २१९६ ।
६०८. यशोधरचरितं दिगम्बरीयम् ।
६०९. यशोधर काव्यपञ्जिका ।
६१०. प्रतिक्रमणटीकासूत्रं दिगम्बरीयम् ।
६११. आनन्दसमुच्चयः ।
६१२. अध्यात्मशास्त्रं बहुप्रकरणमयम् ।
६१३. पातञ्जलियोगशास्त्रवृत्तिः सूत्रयुता श्रीभोजराजकृता ।
६१४. आत्मावबोधो मलधा. देवप्रभसूरिकृतः ५५० ।
६१५. ज्ञानार्णवोऽध्यात्मवाच्यः श्रीशुभचन्द्रसूरीयः हैमयोगशास्त्रतुल्यवाच्यो बहुवैराग्यः ४००० ।
६१६ ज्ञानदीपिका पिण्डस्थादिध्यानवाच्या ।
६१७ तत्त्वार्थसाराख्यं मोक्षशास्त्रं अमृतचन्द्रसूरीयम् ।
६१८. संवेगद्रुमकन्दली विमलाचार्यकृता, कारिका ५२ ।
६१९. ज्ञानार्णवशुद्धोपयोगसूत्रम् ।

६२०. ज्ञानाङ्कुशः का. २८ ।

६२१. योगकल्पद्रुमः ।

६२२. अमृतसिद्धिः ।

६२३. विरूपाक्षयोगशतं गा. १०१, अ. ६१ ।

६२४. साम्यशतं विजयसिंहीयं १०४ ।

६२५. शमभावशतं अन्तरङ्गकथावाच्यं श्रीधर्मघोषसूरिकृतम् १०२ ।

६२६. गीता भारते भीष्मपर्वगता ७१६ ।

६२७. धर्मपरीक्षा परसमयाऽसंबद्धतावाच्या दिगम्बरीयाऽमितगतिकृता ।

६२८. वज्रसूची विप्रजात्यादिनिरासवाच्या ।

६२९. भविष्योत्तरोद्धारः परसमयबहुस्वरूपवाच्यो जैनकृतः परसमयज्ञानाय ।

६३०. द्विजवदनचपेटा विप्रजात्यादिनिराकरणवाच्या ।

६३१. वनस्पतिसत्तरी (१)
६३२. पाक्षिकसत्तरी (२)
६३३. अङ्गुलविचारा (३)
} श्रीमुनिचन्द्रसूरिकृता. (प्रत्येकं) गा. ७०

६३४. सम्यक्त्वस्वरूपं जिनचन्द्रगणिकृतं, गा. १०४ ।

६३५. जिनप्रतिष्ठा ।

६३६. यतिप्रतिष्ठास्थापनस्थलं जिनदेवसूरिकृतं, ११८५ वर्षे, प. २६ ।

६३७. श्रीशान्तिवेतालीया पर्वपञ्जिका स्नपनविध्यादिवाच्या ।

६३८. श्रीशीलाचार्यीया धूमावल्यादिवृत्तिः ।

६३९. कुसुमाञ्जल्यादिवाच्या समुद्राचार्यकृता २५० ।

६४०. ग्रहदोषज्ञानाध्यायः (१)
दोषशान्तिकं जैनं (२)
,, लौकिकं (३) च
त्रयमपि सिंहतिलकसूरिकृतं त्रयाणां ग्रंथाग्रम् १२४ संख्या पत्र ५ ।

६४१. आलोचनाविधान–आलोचनपदसंग्रहादयोऽनेके संग्रहाः ।

६४२. सूक्तरत्नाकर–सुभाषितसमुद्रप्रमुखाः सुभाषितग्रन्था अनेकविधाः सर्वे धर्मकुमारीयाः ।

६४३. शुभावली ।

६४४. दानादिप्रकरणं सं. सूराचार्यकृतं सप्तावसरं काव्यादिग्रन्थं प. ३४ ।

६४५. सुधाकलशाख्यसुभाषितकोशः पं. रामचन्द्रकृतः, पत्र...... ।

६४६. दीपालीकल्पः १४४ ।

६४७. दीपोत्सवकल्पः, सं. १३८९ वर्षे विनयचन्द्रकृतः २७४ ।

६४८. दृष्टान्तशतं १०४ ।

६४९. तत्वबिन्दुः ७१ ।

६५० बोधप्रदीपिका ५२ ।

६५१. सिन्दूरप्रकरः ९८ ।

६५२. इष्टोपदेशः ५१ ।

६५३. सर्वेऽपि सूक्तरूपाः ग्रन्थाग्रम् ३८५ ।



Publishr—Bechardas Jivaraj Pandit,-Jain Sahitya Sanshodhaka Samaj,
Fergusson College Road, Poona City,
Printer—Laxman Bhaurao Kokate 'Hanumn Press' Sadashiv, 300 Poona City.